JAYAMAL VANSA PRAI

OR

THE HISTORY OF BADNORE

VOLUME I

BY

THAKUR GOPAL SINGH RATHOD

MERTIA OF BADNORE.

PRINTED BY

Babu Chandmal Chandak, Manager,

at the Vedic Yantralaya, Ajmer.

FIRST EDITION

1932.

Price Rs. 3/-

राष्ट्रकूट-कुल-भूषण वीर-श्रेष्ठ राव श्री दूदाजी मेड़ताधीश

समर्पण

मेरतिया कुल के मूल पुरुष

वीर-श्रेष्ठ

क्षात्रधर्म-प्रतिपालक

धर्मशील

राव दूदाजी

की

पवित्र स्मृति

को

यह उनके वंशजों के वीरतापूर्ण कार्यों का

पूर्वार्द्ध भाग

सादर समर्पित है.

भूमिका

भारतवर्ष में इतिहास लेखन-कला का प्रचार जैसा कि चाहिये अन्य देशों की भाँति अति प्राचीन-काल से नहीं रहा हो, तथापि अवतक जितनी सामग्री प्राप्त है उसके आधार पर कहा जासकता है कि यहां के निवासी इतिहास लेखन-कला से अनभिज्ञ न थे। उन लोगों को ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रह करने की अभिरुचि अवश्य थी, किन्तु इतिहास की कैसी रूप-रेखा होनी चाहिये, इस ओर उनका ध्यान नहीं था।

मौर्य्यवंशी राजाओं के पूर्व भारत का इतिहास 'वाल्मीकीय-रामायण', 'महाभारत', 'श्रीमद्-भागवत' प्रभृति ग्रंथों पर ही निर्भर है; परन्तु ये ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं लिखे जाकर कथानक रूप से लिखे गये हैं तथा उनमें धार्मिक भावों को प्रधानता दी गई है। इसके पश्चात् लेखन-शैली में परिवर्त्तन आरंभ हुआ और कितने ही नवीन ग्रंथों की रचना हुई, जैसे 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' आदि; परन्तु यह विकास नाममात्र का था, यहां के पंडित लोग अलङ्कार ही को अपनी रचना में मुख्य स्थान देते थे। यह संस्कृत की उन्नति का युग था, अस्तु, उस समय के जितने भी ग्रंथ, शिलालेख और दान-पत्र आदि मिलते हैं, वे प्रायः संस्कृत में ही मिलते हैं; विशेषतः काव्य में। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के आस पास भाषा-काव्यों की उन्नति होने लगी और अनेकों रचनाएं हुईं, पर बहुधा उनमें भी 'उपमा और अलंकार' को ही महत्ता दी गई है। इतना होने पर भी उन्होंने इतिहास की प्रचुर सामग्री तैयार करली, किन्तु यह देश लड़ाइयों का केन्द्र होने से विजेताओं द्वारा कई वार यहां की ऐतिहासिक सामग्री नष्ट करदी गई। यहां के निवासियों की अज्ञानता से अनेकों शिलालेख तोड़ फोड़ कर इमारतों में लगा दिये गये। कई ग्रंथ पड़े पड़े सड़ कर दीमकों के घर होगये और कितने ही पंसारियों की हाटों पर रद्दी के भाव बेच दिये गये। यही कारण

(ई० स० ११६३) में कन्नौज के प्रतापी महाराजा जयचन्द्रजी पर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने चढ़ाई की, जिसमें वह वीरगति को प्राप्त हुए । इस विषम स्थिति में यदि महाराजा जयचंद्रजी के वंशज सुलतान के अधीन रह कर कन्नौज के राज्य का उपभोग करना चाहते तो उनको पुनः उनका पैतृक-राज्य मिल सकना असम्भव नहीं था। जिस भाँति कि सुलतान ने चौहान महाराजा पृथ्वीराजजी के पुत्र गोविंदराजजी को पुनः अजमेर का राज्य दे दिया था। किन्तु उस समय राष्ट्रकूट जाति में स्वतंत्रता की आभा और स्वाभिमान की मात्रा विद्यमान थी, इसलिये उन्होंने सुलतान के अधीन रह कर राज्य-भोग करना पाप समझा । वे सुलतान के आश्रय-भूत बनने की अपेक्षा वहां से हट जाने में ही गौरव समझ राजपूताने की ओर चल दिये । अंत में उन्होंने वीरभूमि राजपूताने के पश्चिमी और उत्तरी प्रदेश मरुभूमि में आकर निवास किया और विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में राव सीहाजी ने मारवाड़ के वर्त्तमान राज्य की नींव डाली ।

अपने क्षात्र-तेज और अद्भुत शौर्य से क्रमशः उनके वंशजों ने समय समय पर शत्रु-वर्ग को नीचा दिखला कर राज्यवृद्धि करना आरंभ किया और कुछ ही समय में वे फिर शक्तिसंपन्न होगये । फलतः राजपूताने के वर्त्तमान राज्यों में आज भी राष्ट्रकूटों के समान राज्य-विस्तार में दूसरा कोई राज्य नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रकूट जाति के वीरोचित कार्य सगर्व स्मरण करने योग्य हैं और जबतक संसार में इतिहास रहेगा, उनके नाम अचल रहेंगे । उनकी अमिट धार्मिक भावना एवं नीतियुक्त शासन-सत्ता के कारण प्रजाजनों का आशीर्वाद सफल हुआ और शीघ्र ही उनके वंश का अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विकास होकर विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में प्रसिद्ध मेरतिया शाखा का उदय हुआ, जो सूर्य के समान देदीप्यमान है ।

प्रसिद्ध मेरतिया वीरों ने अपने बाहुबल से मेरते का स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर देश और स्वतंत्रता की रक्षा के लिये अनेकों बार अपने प्राण उत्सर्ग किये हैं, जिसका साक्षी इतिहास है । उन्होंने सदा क्षात्र-धर्म का पालन कर अधर्माचरण द्वारा राज्य-प्राप्ति की लालसा न की और धर्मपथ का अवलंबन कर कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ रहे । उन्होंने अपने वंश की मान-मर्यादा एवं सुयश

को स्वप्न में भी कलंकित न होने दिया। विविध इतिहास-लेखकों ने उनके इन सद्गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उसही इतिहास-प्रसिद्ध कुल के वीर-शिरोमणि राव जयमलजी ने मेरते का राज्य छिन जाने की कुछ भी परवाह न कर उस समय के महान् बलशाली मुगल सम्राट् अकबर के कोपभाजन मिर्ज़ा शरफुद्दीन को शरण रख अभयदान दिया। केवल क्षमा मांगने पर ही पुनः मेरते का स्वतंत्र राज्य दे देने का, अकबर की ओर से बारबार अनुरोध होने पर भी इस वीरता के पुजारी ने विजातियों के अधीन रह जीवन बिताना बुरा समझा और अपने सजातीय मेवाड़ के महाराणा उदयसिंहजी के आग्रह से मेवाड़ में आकर रहना श्रेष्ठ समझा।

इतिहासप्रेमी जानते होंगे कि मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंहजी (सांगाजी) ने जब पुनः हिन्दू साम्राज्य की स्थापनार्थ मुगल बादशाह बाबर से लड़ाई के लिये प्रस्थान किया था, उस समय मेरतिया राव वीरमदेवजी और उनके भाई रत्नसिंहजी अपने चार सहस्र अश्वारोही और उतने ही पदातियों को लेकर महाराणा की सेना में सम्मिलित हुए थे। उक्त युद्ध के अवसर पर मारवाड़-राज्य की ओर से महाराणा की सहायतार्थ चार सहस्र सवार पृथक् आये थे, उनके सेनाध्यक्ष राव वीरमदेवजी के सब से कनिष्ट भ्राता रायमलजी थे। जिस समय विपक्षी सेना ने भीषण रूप से आक्रमण किया, इन मेरतिये वीरों ने अपूर्व शौर्य प्रकट किया और रत्नसिंहजी तथा रायमलजी आदि कई मेरतिये वीर सदा के लिये अपनी जाति का मुखोज्ज्वल कर स्वर्गगामी हुए। उस समय स्वयं महाराणा के एक तीर लगा, जिससे वह मूर्छित होगये तब राव वीरमदेवजी ने महाराणा को युद्ध-क्षेत्र से हटा कर सुरक्षित स्थान में पहुंचाया। उपरोक्त युद्ध में राव वीरमदेवजी भी अत्यन्त घायल हुए थे, परंतु उन्होंने अपने घायल होने की कुछ भी चिंता नहीं कर अचेतनावस्था में महाराणा की रक्षा करना ही अपना परम-धर्म समझा। मेवाड़ के महाराणाओं और इन मेरतिये वीरों के पारस्परिक वैवाहिक संबंध होने से एक दूसरे की अवसर विशेष पर सहायता करना भी कर्त्तव्य ही था। अस्तु, इस परस्पर के सौहार्द से प्रेरित होकर मेरतिये वीर जब जब आवश्यकता हुई मेवाड़ के महाराणाओं के लिये प्राणों की बाज़ी लगा देने

में ही अपना गौरव समझते रहे। इस बात को स्मरण कर महाराणा उदयसिंहजी ने राव जयमलजी को आग्रहपूर्वक मेवाड़ में बुला कर पूर्ण सम्मान के साथ ग्रहण किया। फिर क्या था, इस स्वर्ण अवसर पर वीर-श्रेष्ठ राव जयमलजी ने भी क्षात्रधर्म को संपूर्ण रूप से निभाते हुए मेवाड़ की स्वतंत्रता के हेतु अपने प्राणों की आहुति देदी, जो उनके जातिप्रेम का उच्च उदाहरण है। जब वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में क्षत्रिय जाति के पवित्र तीर्थ चित्तौड़गढ़ पर अपूर्व बलशाली मुगल सम्राट् अकबर ने चढ़ाई की, उस समय महाराणा उदयसिंहजी सरदारों की सलाह के अनुसार दुर्ग रक्षा का भार वीरवर जयमलजी को सौंप कर पहाड़ों में चले गये, उस समय उस नर-शार्दूल ने शत्रुओं से निरन्तर ६ मास तक युद्ध कर अपनी वीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे। यद्यपि उस समय मेवाड़ के अधीश वहां पर विद्यमान नहीं थे तो भी उन्होंने अपने साहस में कमी नहीं की। प्रत्युत् दुर्ग-रक्षा का भार उन्हीं को सौंप कर महाराणा के पधार जाने से अपनी ज़िम्मेदारी का विचार कर द्विगुणित वेग से शत्रु-समूह से युद्ध करने लगे, जिससे वे लोग भी चकित होगये। उस वीरपुंगव ने अपनी वीरता के अद्भुत जौहर बतला कर शत्रुओं को विचलित कर दिया था, जबतक उनके शरीर में प्राण रहे, तबतक शत्रुवर्ग को दुर्ग में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। दुर्ग प्राकार की मरम्मत को निरीक्षण करते समय बादशाह अकबर द्वारा छोड़ी जाने वाली बंदूक की गोली से लंगड़े हो जाने पर भी उस वीर ने अंतिम युद्ध के समय अश्वारूढ़ होने में असमर्थता के कारण अपने भाई नर-श्रेष्ठ कल्ला के कंधे पर सवार हो भयङ्कर युद्ध किया और अंत में असिधारा में स्नान करते हुए वह परलोकवासी हुए। उनके आत्मोत्सर्ग की विजातीय शत्रु स्वयं सम्राट् अकबर ने भी प्रशंसा कर उनकी तथा उनके सहयोगी वीरवर पत्ताजी चूंडावत की गजारूढ़ सङ्गमर्मर की प्रतिमाएं बनवा कर आगरे में स्थापित कीं। क्या इससे बढ़कर वीरता का और कोई उदाहरण हो सकता है? उसही वीर कुल में स्वनामधन्य, परमविदुषी, महिलारत्न श्री० मीरांबाई ने जन्म लेकर भगवद्-भक्ति की अनुपम धारा बहादी, जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है।

जब कि भारतीय विद्यालयों में केवल भारत के ही नहीं, सुदूरवर्ती देशों

के इतिहास भी विद्यार्थियों को अध्ययन कराये जाते हैं, तब आवश्यक होता है कि हमारे घर के इतिहास को भी एक बार अवश्य ही आंख उठा कर देखें और अपने पूर्वजों के उज्ज्वल चरित्रों से शिक्षा लें। सच पूछा जाय तो इतिहास ही एक ऐसी वस्तु है जो गत महापुरुषों की कीर्ति को अजर अमर बना देता है। जिस जाति का इतिहास न हो उसका अस्तित्व नष्ट होने में कुछ भी संदेह नहीं है। विद्वानों का कथन है कि यदि किसी राष्ट्र को सदैव पराधीन बनाये रखना हो तो उसका इतिहास नष्ट कर दिया जाय, वास्तव में बात बहुत ठीक है। विजेता लोग पहले इसही वाक्य का अक्षरशः पालन करते थे, किंतु यह शांति का युग है, प्रयास करने पर हमको लुप्तप्राय: इतिहास भी मिल रहा है। आज का युग तो हमें अपने पूर्वजों के वीर-चरित्रों को सुनने के लिये आगे बढ़ा रहा है, फिर भी समय की गति से हम शिक्षा न लें तो कितनी बुरी बात होगी। एकमात्र इतिहास ही भावी संतानों के हृदय में नवजीवन का संचार कर स्फूर्ति पैदा करेगा। उन वीरात्माओं की वीर गाथाएं जादू का सा काम करेंगी और उनके उज्ज्वल चरित्रों की महिमाओं को सुन कर चाहे कैसा ही शुष्क-स्वभाव का मनुष्य क्यों न हो, उसका हृदय फड़के बिना नहीं रहेगा। पाश्चात्य देशवासी इतिहास की कद्र करते हैं तथा वहाँ वीरपुरुषों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की जाती है, किंतु हमारे यहां विपरीत ही देख पड़ता है। हम लोग प्रतिदिन हमारे इतिहास को भूलते जाते हैं, जो इस बात को प्रमाणित करता है कि हमारे यहां इतिहास नहीं है अथवा हमको इतिहास के प्रति प्रेम नहीं है।

अबतक इस प्रसिद्ध मेरतिया-वंश का इतिहास प्रकाश में नहीं लाना विद्वानों की दृष्टि में खटकता था, परंतु करते क्या, सामग्री का अभाव था। उदयपुर राज्य का बृहत् इतिहास 'वीर-विनोद' लिखा गया, उन दिनों कविराजा श्यामलदासजी के प्रेरणा करने पर वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में बदनोर के भूतपूर्व ठाकुरां राजश्री केसरीसिंहजी ने ख्यातों आदि के आधार पर इस बदनोर के राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास लिखवा उसका नाम 'जयमल-जश-प्रकाश' रक्खा था; परन्तु वह अपूर्ण था; क्योंकि उसमें अन्य ग्रंथों का आशय नहीं लिया गया था। स्वर्गीय पिताजी श्री० ठाकुरां राजश्री गोविंदसिंहजी ने इस

कार्य को और भी आगे बढ़ाया, तथा अपने ऐतिहासिक ज्ञान की विस्मृति न हो इस दृष्टि से इस राजस्थान के संबंध की और भी जितनी सामग्री मिली संग्रह कर, उसके आधार पर 'गोविन्दकुल-रत्नाकर' नामक हस्तलिखित पुस्तक तैयार करवाई, जो कम प्रशंसनीय नहीं है। पूज्य पिताजी के तत्वाविधान में रह कर शिक्षा प्राप्त करने और उनके अधिकार में इतिहास का कार्य होते रहना देख मेरी भी भावना जाग उठी। साहित्यसेवियों के निरंतर समागम से बाल्य-जीवन से ही मेरे हृदय पर इतिहास-प्रेम अंकुरित होगया और इच्छा हुई कि इस इतिहासप्रसिद्ध वंश की महत्ता, जो लुप्तप्राय: होती जाती है, अविच्छिन्न रूप से बढ़ाई जावे। भावनाओं का दिन प्रतिदिन विकास होने लगा और ज्योंही दैव ने सं० १९७८ में इस राज्य का भार मेरे पर डाला, मैंने अपने पूर्वजों के कीर्तिरूपी भंडार को प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया। आधुनिक दृष्टि से पूज्य पिताजी का संग्रह भी अधूरा ही था, इसलिये प्रथम मैंने उनके बनाये हुए संग्रह को बढ़ाना आरंभ किया। कई हस्तलिखित पुरानी ख्यातों, काव्य की पुस्तकों, पट्टे-परवानों, खास रुक्कों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, हिंदी, अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़ारसी की अनेक प्रामाणिक पुस्तकों, पुरानी बहियों और कागज़ातों, बड़वों, राणी-मंगो और कुल-गुरुओं की ख्यातों आदि को अवलोकन कर उनके आधार पर मेरतिया कुल का इतिहास निर्माण करने का कार्यारंभ किया। लगभग दस वर्ष के परिश्रम से अब इसका पूर्वार्द्ध भाग समाप्त होकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। इस इतिहास में मुख्यत: वीरवर राव जयमलजी के वंशजों का ही वर्णन है। अतएव मैंने इसका नाम 'जयमलवंशप्रकाश' रखना ही उचित समझा है।

यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इतिहास-लेखनकला साधारण कार्य नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे भूल करते हैं। प्रत्येक कार्य संपादन में अटूट परिश्रम और समय की आवश्यकता होने के साथ ही अपरिमित अर्थ व्यय होता है, तब ही सफलता होती है। जो लोग निरंतर साहित्यसेवा करते हैं, उन्हीं को परिश्रम आदि का अनुभव होता है। इसही प्रकार मुझको भी समयाभाव तथा राज्य कार्य आदि में व्यस्त रहने के कारण इस पूर्वार्द्ध भाग को ही प्रकाशित करने में आवश्यकता से अधिक विलम्ब हुआ है। फिर भी प्रसन्नता

है कि विलम्ब होने पर भी अपने पूर्वजों की कीर्ति का भंडार सुयोग्य पाठकों के सम्मुख रख सका हूं। मेरे जैसे अल्पज्ञ-व्यक्ति द्वारा इस इतिहासप्रसिद्ध वंश का विस्तृत इतिहास लिखा जाना बड़ा ही दुःसाध्य कार्य है, इस पर भी ऐसा साहस करना धृष्टता है, किसी ने कहा है कि—

'अकरणात् मंदकरणं श्रेष्ठम्'

जगदीश्वर की कृपा से अब यह पूर्वार्द्ध भाग समाप्त होकर उपस्थित किया जारहा है, सो इसे अवश्य ही अपनाया जावेगा।

इस 'जयमलवंशप्रकाश' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ को प्रकाशित करने का पाठक यह अभिप्राय न समझें कि मैं कोई इतिहासवेत्ता बनने का इच्छुक हूं। मेरा तो यही लक्ष्य है कि मेरतिया जाति अपने पूर्वजों के इतिहास को जानने का प्रयत्न करे। अस्तु, हार्दिक-उमङ्ग की प्रेरणा से प्रेरित होकर यह छोटासा ग्रंथ उपस्थित कर रहा हूं। ग्रंथ के विस्तृत हो जाने के भय से मैंने इसको दो भागों में विभक्त किया है। पूर्वार्द्ध में मरहटों का मेवाड़ में आगमन होने के पूर्व तक का वृत्तांत दिया जाकर आरंभ में बदनोर की भौगोलिक परिस्थिति, राठोड़ों से पूर्व बदनोर का इतिहास, राठोड़-वंश का प्राचीन इतिहास, मेरतिया कुल के राव दूदाजी तथा वीरमदेवजी का चरित्र लिख कर राव मालदेवजी से विरोध होने पर मेरता छूटने और पीछा प्राप्त होने; अकबर के कोपभाजन मिरज़ा शरफुद्दीन को शरण में रखने से नाराज़ होकर बादशाह का मेरते पर अधिकार हो-जाने पर राव जयमलजी का मेवाड़ में आने तथा चित्तौड़ की चढ़ाई के समय वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में स्वर्गवास होने, उनके पुत्र वीरवर ठा० मुकुंददासजी के उत्तराधिकारी होने तथा हमारे वीर-पूर्वजों व मेरतिया भाइयों के वीरोचित कार्य एवं युद्ध में वीरगति प्राप्त करने का वर्णन होकर ठाकुर सुलतानसिंहजी तक का वृत्तान्त दिया गया है। उत्तरार्द्ध में मरहटों के आक्रमण से मेवाड़ को महान् क्षति उठानी पड़ी और बदनोर के स्वामियों ने किस प्रकार मेवाड़ के हित के लिये समय समय पर वीरता-सूचक कार्य किये, जिसका परिचय देकर वर्तमान समय तक का संक्षिप्त इतिहास देने के साथ ही मेवाड़ तथा मारवाड़ के अन्य मेरतिया वंशी ठिकानों का संक्षिप्त-परिचय देने के अनन्तर इस

भाग को समाप्त किया जायगा। मारवाड़ से मेरतिये सरदारों के वृत्तान्त मंगवाये गये, उनमें से कुछ जगह से आचुके और कतिपय जगह से आना बाक़ी है, यदि समय पर आगये तो उनमें से उपयोगी विषय दिये जा सकेंगे। अंत में कुछ परिशिष्ट रहेंगे, जिनमें मेरता, परमविदुषी श्री० मीरांबाई का पुनीत-चरित्र और बड़ी रूपाहेली मेवाड़ के मेरतिया-कुल के वयोवृद्ध, इतिहासरसिक ठाकुर बाबाजी चतुरसिंहजी की भेजी हुई इस इतिहास के शोध-स्वरूप कुछ आवश्यक सूचनाएं, जो स्थानाभाव से पहले नहीं दी गई हैं, वो दी जाकर प्रभावोत्पादक कविताएं एवं जिन जिन ग्रंथों से इस पुस्तक के निर्माण में सहायता मिली है उनकी सूची, नामानुक्रमणिका, शुद्धिपत्र तथा अन्य कोई नवीन बात होगी वह दी जावेगी।

उपसंहार में यह वर्णन करना उचित है कि यह मेरा प्रथम प्रयास है। ऊपर बतलाया जाचुका है कि भारत में पहले शांतिमय साम्राज्य नहीं था और निरंतर लड़ाई झगड़े बने रहते थे। इस कारण से अनेकों ऐतिहासिक साधन, कई उपयोगी कागज़ात, पुस्तकें आदि नष्ट होगये। जो कुछ भी बचा है, उसमें से भी अधिकांश दबे हुए हैं। प्रयत्न करने पर भी मेरतिया-कुल और यहां के संबंध का वृत्तांत कम ही प्राप्त हुआ है, इस अवस्था में शुद्ध इतिहास लिखा जाना बड़ा ही कठिन कार्य है। अस्तु, यह 'जयमलवंशप्रकाश' नामक ग्रंथ भी अपूर्ण ही समझना चाहिये। शोध से कई स्थल परिवर्त्तन होंगे तथा और भी कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा। इतना होने पर भी यह संग्रह पथप्रदर्शकता का काम अवश्य देगा; क्योंकि इसमें राष्ट्रकूट जाति का प्राचीन इतिहास, मेरतिया-शाखा का विकास, मेवाड़ के वीर महाराणा तथा अन्य राज्यों, मुग़ल बादशाहों का यथा-प्रसङ्ग वर्णन हुआ है और इतिहाससंबंधी प्रत्येक घटनाओं पर प्रकाश डाला जाकर विवेचना की गई है।

संवतों, ग्रामों और नामों के संबंध में भी संभव है कई स्थल पर त्रुटियां हों, क्योंकि समय क्रम मिलाने के लिये बहुधा संवत् ख्यातों के अनुसार दिये गये हैं और ग्रामों के नाम आदि भी ख्यातों के अनुसार ही हैं। मनुष्यमात्र से त्रुटियां होती ही हैं, अतएव इस 'जयमलवंशप्रकाश' में भी कई स्थलों पर त्रुटियां होना स्वाभाविक है। आशा है उदार सज्जन मुझको इसके लिए क्षमा

करेंगे और पूर्वार्द्ध भाग को अवलोकन कर अवश्यमेव सूचना देंगे कि जिससे जो जो त्रुटियां रह गई हों उत्तरार्द्ध में उनका संशोधन हो सके। मुझे विश्वास है कि अब दूसरा खंड शीघ्र ही प्रकाशित हो जावेगा।

अन्त में मैं महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा क्यूरेटर राजपूताना म्यूज़ियम अजमेर का हृदय से कृतज्ञ हूं, जिनसे इस ग्रंथ के संपादन में आवश्यक सामग्री मिली है। इसके अतिरिक्त जयपुर निवासी पं० रामचंद्रजी शास्त्री एम० ए० एलएल० बी० जिन्होंने सामग्री एकत्रित करने में प्रयत्न किया तथा उन पुस्तकों के कर्त्ताओं का जिनसे इस ग्रंथ के संकलन में सहायता मिली आभारी हूं।

सम्मतियाँ

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशंकरजी हीराचंदजी श्रोझा क्यूरेटर राजपूताना म्यूजियम श्रजमेर लिखते हैं कि—

······एक विद्वान् के हाथ से जैसी एक तवारीख लिखी जानी चाहिये, वैसी बन गई जो बड़े आनंद की बात है। मेवाड़ के किसी दूसरे ठिकाने की इतने शोध से लिखी हुई तवारीख मेरे पास नहीं पहुँची है·········।

परम इतिहासज्ञ सुयोग्य ठा० चतुरसिंहजी बड़ी रूपाहेली (मेवाड़) लिखते हैं कि—

यह 'जयमल-वंश-प्रकाश' नामक ग्रंथ बड़ा ही उत्तम, प्रामाणिक और समस्त ऐतिहासिक गुणों से युक्त है। इसमें मेरतिया राठोड़ों के विशाल-राजकुल के मुख्य वंशधरों का इतिहास दिया गया है और आजतक की शोध द्वारा जितने वृत्तान्त ज्ञात हुए हैं, उन सब का न्यूनाधिक उल्लेख कर दिया गया है। कोई भी प्रामाणिक विषय छूटने नहीं पाया। फिर टिप्पणियों में शतशः प्रमाण देकर इसका महत्व बढ़ा दिया है, जो इस ग्रंथ की विशेषता है। इस दृष्टि से राजपूताना भर के सामन्तों के सब ठिकानों में इसकी समता करने वाला इतिहास मिलना कठिन है।

दूसरी विशेषता यह भी है कि इस ग्रंथ के निर्माता प्रसिद्ध वीरशिरोमणि मेरता नरेश राव जयमलजी के ही मुख्य उत्तराधिकारी हैं। जो हम सब मेरतिया राठोड़ों के पाटवी (टीकाई) वर्द्धनपुराधीश (बदनोर के स्वामी) ठाकुर राज-श्री गोपालसिंहजी हैं, जिन्होंने अपनी तरुणावस्था के अरुणोदय काल में ही पुरातत्त्वानुरागी होकर इस विषय में बड़ी योग्यता प्राप्त करली है और इस ग्रंथ की रचना करके अपने राजवंश का परम उपकार किया है।

विषय-सूची

चित्र-सूची

—:o:—

———

बदनोर राज्यवंश के शासकों का ग्रूप फोटो
(ठाकुर जोधसिंहजी तक)

जयमलवंशप्रकाश

पहला प्रकरण

राजस्थान वदनोर का भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

राजस्थान वदनोर मेवाड़-राज्य में प्रथम श्रेणी का एक ठिकाना है। लगभग चारसौ वर्षों से यह राजस्थान राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की प्रसिद्ध मेड़तिया शाखा के अधीन चला आरहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति मेवाड़ राज्य के उत्तर पश्चिमी भाग में है। हासिल, लगान तथा वसूली प्रभृति माली विभाग के पूर्ण इख़्तियार के अतिरिक्त इस राजस्थान को दीवानी फ़ौजदारी विभागों के भी उच्च अधिकार हैं। प्रवन्ध के लिए यह राजस्थान निम्नलिखित सात तहसीलों में विभक्त है—

परिचय

(१) वदनोर और मगरा-इस तहसील के २६ गांव इन्तज़ाम के लिए वापस देने की शर्त पर अंग्रेजी सरकार के सुपुर्द हैं और इस समय अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्त के अन्तर्गत हैं, (२) चैनपुरा, (३) कासोला, (४) चांदरास, (५) टूंकरवाड़, (६) आकड़सादा, (७) पाटन। चांदरास और टूंकरवाड़ की तहसीलों तथा कासोला तहसील के कतिपय ग्रामों के अतिरिक्त इस राजस्थान का शेष भूमि-भाग परस्पर मिला हुआ है।

इस मुख्य भाग के उत्तर, पश्चिम तथा ईशान कोण में अजमेर-मेरवाड़े का प्रान्त तथा पूर्व और दक्षिण में मेवाड़ राज्य के खालसे और जागीरों के ग्राम हैं। चांदरास और टूंकरवाड़ की तहसीलें और कासोला तह-

सीमा

पर्वत

अरवली पर्वतश्रेणी का इस राजस्थान में चैनपुरा ग्राम के समीप प्रवेश होता है और यहां से उत्तर-पूर्व में इन पर्वतों का सिलसिला इस राजस्थान में फैला हुआ है। राजस्थान में इन पर्वतों का सर्वोच्च शिखर समुद्र की सतह से २८०६ फ़ुट ऊंचा है जहां गीधन (गिरिधन) माता नामक प्रसिद्ध देवी का प्राचीन मन्दिर है। दूसरे उच्च शिखर पर, जो बदनोर से क़रीब एक ही मील के अन्तर पर है चामुंडा देवी (बैराट माता) का प्राचीन मन्दिर है। यह शिखर समुद्र की सतह से २१४५ फ़ुट ऊंचा है। इन उच्च शिखरों से दूर दूर के प्रदेश दिखाई देते हैं। बैराट नामक शिखर से ब्यावर शहर अच्छी तरह दिखाई पड़ता है। इसके निकट एक विस्तृत प्रदेश पर्वत के ऊपर आगया है; जहां बैराटगढ़ नामक प्रसिद्ध दुर्ग बना हुआ है। इस दुर्ग का विस्तार अनुमानं ५ वर्गमील है। मौके मौके पर यहां अनेक बुर्जे और मोर्चे भी बने हुए हैं। दुर्ग पर बारह जलाशय हैं। इन जलाशयों के अतिरिक्त एक गहरा कूप भी है। इसका जल अत्यन्त मधुर तथा स्वास्थ्यप्रद है। इस कुए के पास ही एक गुफा है, जिसके विषय में यह जनश्रुति है कि महात्मा भर्तृहरिजी ने यहां तपस्या की थी। दुर्ग पर अनेक राजप्रासादों के भग्नांश विद्यमान हैं। इस मुख्य पर्वत-माला के अतिरिक्त राजस्थान में भिन्न भिन्न स्थानों में अनेक छोटी छोटी पहाड़ियां हैं।

नदियां

इस राजस्थान में खारी, कोठारी, मानसी और नेगाडी नामक चार नदियां हैं जो केवल वर्षाऋतु में ही बहती हैं। खारी नदी दीवेर के पर्वतों से निकलकर देवगढ़ इलाके में होती हुई इस राजस्थान के कासोला और आकड़सादा तहसीलों के कई गांवों के समीप उत्तर-पूर्व की तरफ़ बहती है। अन्त में यह नदी कुछ फ़ासले तक अजमेर और मेवाड़ की सीमा बनकर देवली के निकट बनास नदी में मिल जाती है। कोठारी नदी दीवेर के पूर्ववर्ती पर्वतों से निकलकर मेवाड़ राज्य के सहाड़ां और बागोर के परगनों में होती हुई चांदरास तहसील के गोड़ास ग्राम के निकट पूर्व की तरफ़ बहती है। यहां से यह नदी भीलवाड़ा और मांडलगढ़ प्रांतों में बहती हुई नन्दराय ग्राम के पास बनास नदी में जा मिली है। मानसी नदी करेड़ा के समीप

से निकलकर कासोला और डूंकरवाड़ की तहसीलों के कुछ ग्रामों के पास होकर बहती है। यहां से यह मेवाड़ राज्य के हुरड़ा प्रांत में होती हुई शाहपुरा राज के फूलिया गांव के निकट खारी नदी में मिल जाती है। नेगाडी नदी अजमेर मेरवाड़े के भीम ग्राम के पास से निकलकर चैनपुरा तहसील के गांवों के पास बहती हुई कासोला तहसील के दड़ावट गांव के समीप खारी नदी में जा मिलती है।

इन नदियों के अतिरिक्त यहां कई बड़े बड़े नाले हैं। वर्षाऋतु में जल से परिपूर्ण होकर प्रबलवेग से बहते हुए इन नालों का दृश्य देखनेयोग्य होता है।
नाले बड़े नाले विशेषतः बदनोर, पाटन, डूंकरवाड़ तथा चांदरास की तहसीलों में हैं।

अरवली पर्वतमाला के पूर्ववर्ती प्रदेशों में जो वृक्ष उपलब्ध होते हैं वही बहुधा इस राजस्थान में भी पाये जाते हैं। यहां बड़, पीपल, नीम, बबूल, सालर,
वनस्पति खेजड़ा, धोकड़ा, पलाश, खिरनी, गूलर, हिंगोटा, खैर, गूगल, बेल, शीशम, बांस, सेमल, फ़ालसा, किरमाला, कड़ाया, कालियासिरस (शिरीष), गून्दी, बेर, जाल, कैर, इमली, आंवला, बहेड़ा आदि के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। चांदरास में खजूर के वृक्ष अधिकता से हैं। बागों में आम, केले, आडू, नारंगी, अनार, पपीता, जामुन, अमरूद, नींबू, सीताफल, कचनार, शहतूत, अशोक, केवड़ा, मौलसिरी प्रभृति वृक्ष, दाखों की बेलें तथा मेंहदी और रेलिया के पौधे भी लगे हुए हैं। गुलाब, मोगरा, हज़ारा, चंपा, चमेली, सदाबहार, गुलदावदी, गुलमेंहदी, गुलखैरू, कनेर आदि पुष्पों के पौधे तथा बेलें उद्यानों में लगी हुई हैं। यहां की भूमि के उर्वरा होने से फल-पुष्पों की पैदावार बहुत अच्छी होती है। जङ्गलों में शहद, लाख और गोंद की पैदावार भी अच्छी होती है। खेती की पैदावार में खास तौर से गेहूं, जौ, मक्का, चना, मूंग, मोठ, उड़द, चौला, कुलथ, जवार, ज़ीरा, धनिया, लहसुन, सरसों, तिल, मेथी और कपास हैं। कहीं कहीं ईख की भी काश्त होती है। बदनोर और मगरा तहसील के पर्वती प्रदेश के ग्रामों में चावल भी पैदा होता है। शाकों में आलू, अरवी, रतालू, अदरक, शकरकन्द, पेठा, कूष्मांड (कोल्हा), प्याज़, मूली, गाजर, गोभी, टमाटर,

बैंगन, भिंडी, तुरई, करेला, ग्वार की फली, श्राल (घिया), करौंदा, मिर्च, ककड़ी, काचरा, मटर, चौलाई, बथुआ, मेथी, पालक, पोदीना, वगैरह की पैदाइश होती है। ग्रीष्मऋतु में तरबूज़ और खरबूजे भी पैदा होते हैं। तालावों में सिंघाड़े भी उत्पन्न होते हैं।

यहां जङ्गली जानवरों में बघेरा (अश्वेसरा), भेड़िया (ल्याळी), जरख (लकड़बग्घा), सूअर, साहगोश, लोमड़ी, गीदड़, सेही (सेळी), वनबिलाव, हिरन, रोझ, खरगोश प्रभृति अधिकता से उपलब्ध होते हैं। पर्वती प्रदेशों में बन्दर बहुतायत से पाये जाते हैं। कभी कभी शेर (सुनहरी नाहर), रीछ और सांभर भी यहां के जंगलों में आ जाते हैं। पक्षियों में गिद्ध, शिकरा, बाज़, चील, उल्लू, कुरज, गुंजन, कौआ, तीतर, बटेर, मोर, तोता, कोयल, पपीहा, फ़ाख़्ता, गुरसल, नीलकंठ, कबूतर, हरियल तथा अनेक प्रकार की रंग बिरंगी चिड़ियां हैं। जल के समीपवर्ती पक्षियों में मुख्यतः सारस, बतक, बगुला, घरट, टींच, हंजा, टिटिहरी, भाटिया, आड़, गुंजाव, छुरदा तथा जलमुर्ग इत्यादि हैं। जल-जन्तुओं में मगर, कछुआ, मेंढ़क, केकड़ा, जलमानुष तथा विविध प्रकार की मछलियां यहां के तालावों में पाई जाती हैं।

जंगली जानवर, पक्षी और जलजन्तु

यहां वर्षा की औसत १८ इंच है। पिछले वर्षों में तो यहां साधारण वर्षा हुई, परन्तु ईश्वर की कृपा से गत तीन वर्षों से लगातार अच्छी वर्षा हो रही है। इलाक़े भर में समस्त तालाव, कुंड, कूप और बावड़ियां खूब भरी हुई हैं। इन वर्षों में वर्षा उत्तम होने से कई नये ग्राम और खेड़े भी बसे हैं। यहां का जलवायु उत्तम और आरोग्यप्रद है।

वर्षा और जलवायु

इस राजस्थान में अब तक मनुष्यगणना पांच बार हुई है। वि० सं० १९३७ (ईसवी सन् १८८१) में प्रथमबार जो मनुष्यगणना हुई उसमें यहां की जनसंख्या २०७६१ थी। वि० सं० १९४७ में २७५१६, वि० सं० १९५६ के घोर दुष्काल के कारण वि० सं० १९५७ में यहां की जनसंख्या केवल १५२४२ ही रह गई, फिर वि० सं० १९६७ में २१९७० हो गई और वि० सं० १९७७ में और भी अधिक बढ़ती, परन्तु प्लेग और इनफ्लुएंज़ा के कारण हज़ारों मनुष्यों के मर

जनसंख्या

आने से २०३४१ रह गई। वि० सं० १६७७ के पश्चात् अब तक सुख-शान्ति रहने के कारण आगामी मनुष्य-गणना में यहां की जनसंख्या में लगभग चार हज़ार मनुष्यों की वृद्धि होने की संभावना है।

यहां के मनुष्यों में मुख्य धर्म सनातन (वैदिक) तथा जैन हैं। मुसलमानों की संख्या केवल ४४५ है। हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, चारण, खत्री, साधु, गुसाईं, दादूपन्थी, नाथ, दरज़ी, सुनार, तेली, तंबोली, लुहार, सिकलीगर, खाती, दरोगा, कुम्हार, कलाल, खारोल, लखेरा, नाई, छीपा, जाट, गूजर, अहीर, माली, कीर, डाकोत, खटीक, रैगर, चमार, मेर (रावत), मेरात, नायक, ढोली, ओड़, कहार, बावर, मोची, धोबी, भांभी, खांट, भील, बलाई, मेहतर प्रभृति जातियां हैं। मुसलमानों में शेख़, पठान, शोरगर, रंगरेज़, उस्ता, क़ायमख़ानी और पिनारा आदि हैं। मुसलमान अधिकतर सुन्नी फ़िरक़े के अनुयायी हैं। जैनधर्मावलंबी विशेषतः श्वेतांबर संप्रदाय के अनुगामी हैं। यहां के निवासियों में से अधिकांश खेती करते हैं, शेष पशु-पालन, व्यापार, जागीर, नौकरी, दस्तकारी और मज़दूरी से अपना निर्वाह करते हैं।

धर्म और जातियां

यहां के पुरुष सामान्यतः पगड़ी, कुर्ता, अंगरखी और धोती पहनते हैं। कोई कोई साफ़ा बांधते और कोई टोपी भी पहनते हैं। राज-कर्मचारी अंगरखी के ऊपर कमरबन्दा भी बांधते हैं। मुसलमान पाजामा भी पहनते हैं। स्त्रियां घाघरा (लहंगा) साड़ी और कांचली (चोली) पहनती हैं। मुसलमानों की स्त्रियां बहुधा पाजामा पहनती हैं।

पहनावा

यहां की भाषा मारवाड़ी और मेवाड़ी भाषाओं का मिश्रण है। कचहरियों तथा सर्वसाधारण में प्रचलित लिपि देवनागरी है।

भाषा तथा लिपि

इस राजस्थान का मुख्य नगर बदनोर अजमेर से ४२ मील दक्षिण पश्चिम तथा उदयपुर से लगभग १०० मील उत्तरपूर्व में है। इसका निकटवर्ती रेल्वे स्टेशन दिल्ली अहमदाबाद लाइन पर ब्यावर है। उदयपुर की तरफ़ जाने के लिए सब से नज़दीक रेल्वे स्टेशन अजमेर खंडवा लाइन पर सरेरी है। ये दोनों स्टेशन बदनोर से क़रीब २६ मील के

प्रसिद्ध स्थान बदनोर

फ़ासिले पर हैं। बदनोर का अक्षांश २५°, ४०', ३८" है और देशान्तर ७४°, १७', २३" है। बदनोर के चारों तरफ़ पक्का शहरपनाह बना हुआ है। नगर में प्रवेश करने के लिए पूर्व दिशा में सूरजपोल और रेवतजी का दरवाज़ा तथा पश्चिम में चांदपोल नामक द्वार हैं। बस्ती से लगी हुई एक छोटी सी पहाड़ी है, जिसके ऊपर बड़े सुन्दर और विशाल राजमहल बने हुए हैं। महलों तथा कस्बे के तीन तरफ़ तीन बड़े सुन्दर तालाब हैं, जो विनोदसागर, अक्षयसागर तथा जैतसागर के नाम से प्रसिद्ध हैं। विनोदसागर में सैर करने के लिए किश्तियां रहती हैं। इसके तट पर जलमहल नामक भवन बना हुआ है, जहां से इसका दृश्य बड़ा ही रम्य दिखाई देता है। इस तालाब का जल बहुत गहरा है। इसके नीचे गोविन्दनिवास नामक सुन्दर बाग़ लगा हुआ है। इस उद्यान में अनार, नारंगी, नींबू, केले, एरंडककड़ी, आम, कचनार, अमरूद प्रभृति फलों के वृक्ष तथा गुलाब, बेला, चमेली, चम्पा, हज़ारा आदि विविध प्रकार के पुष्पों की लताएँ और पौधे लगे हुए हैं। जगह जगह लताभवन भी बने हुए हैं। इस बाग़ में सफ़ेद पत्थर का एक रमणीय कुंड तथा ग्रीष्मनिवास नामका भवन बना हुआ है। ग्रीष्मनिवास महल के सामने एक पक्का टेनिस कोर्ट है, जिसके चारों तरफ़ लताएं छाई हुई हैं। बाग़ में पक्की सड़कें बनी हैं और रोशनी के लिये स्तम्भों पर लालटेनें लगी हुई हैं।

बदनोर में दो चौड़े बाज़ार हैं, जिनमें से एक तो सूरजपोल दरवाज़े और महलों के बीच में है और दूसरा रेवतजी दरवाज़े से महलों तक है। पहला बाज़ार 'बड़ा बाज़ार' और दूसरा 'नयाबाज़ार' के नाम से प्रसिद्ध है। बड़े बाज़ार में श्री-चतुर्भुजजी महाराज का प्राचीन मंदिर, डाकख़ाना, कोतवाली तथा कोर्ट-हाउस (कांजीहौस) हैं। इस बाज़ार में दो बावड़ियां भी हैं। नयेबाज़ार में गोविन्द-स्कूल, गोविन्दहास्पिटल, गोविन्दधर्मशाला तथा [illegible] धर्मशाला की सुन्दर इमारतें और शुतरख़ाना है। गुलाब धर्मशाला के समीप ही श्री सत्यनारायण का मंदिर है। गोविन्दस्कूल में मिडिल तक पढ़ाई होती है और व्यायाम आदि का भी उचित प्रबन्ध है। गोविन्दहास्पिटल में चीरफाड़ (Operation) की भी व्यवस्था है। इसमें रोगियों (Indoor-patients) के रहने के लिए मकान,

बदनोर के आराम-भवन श्रोलेट का दृश्य

बदनोर में गोविन्दनिवास बाग के अतिरिक्त 'केसरबाग' और 'आराम-भवन-आखेट' नामक दो उद्यान और हैं। केसरबाग नगर के बाहर रैवतजी दरवाज़ा और सूरजपोल दरवाज़े के बीच में शहरपनाह से बिल्कुल मिला हुआ है। इस उद्यान के विस्तृत होने से दोनों ही दरवाज़ों से आने जाने वाले मनुष्यों को इसकी मनोहर छटा दिखाई देती है और उनको दोनों तरफ़ भिन्न भिन्न उद्यानों के होने का भ्रम होता है। इस बाग में अनेक प्रकार के फलों और पुष्पों के वृक्षादि लगे हुए हैं। इनके अतिरिक्त इस बाग में विविध प्रकार के शाक भी पैदा होते हैं। यहां दो लतावेष्टित बंगले बने हुए हैं। इस उद्यान के समीप ही सूरजपोल दरवाज़े के बाहर एक विशाल बापी है, जिसे 'बड़ी बावड़ी' कहते हैं। इस बावड़ी के पास ही लक्ष्मीनारायण का पुराना शिखरबन्द मन्दिर है।

तीसरा उद्यान 'आरामभवन' बदनोर से पश्चिम दिशा में एक मील के अन्तर पर है। बदनोर से इस बाग तक सूरजपोल दरवाज़े के बाहर की तरफ से एक पक्की सड़क बनी हुई है, जो अक्षयसागर तालाब के किनारे किनारे पहाड़ियों के बीच में से अनेक घुमाव खाती हुई चली गई है। आरामभवन बाग में फल, पुष्पों के वृक्षादि की बहुतायत है। इसमें एक सुन्दर राजभवन भी है, जिसके चौक के बीच में संगमरमर का एक हौज़ है। उसमें अनेक फ़व्वारे भी लगे हुए हैं। महलों के पीछे उससे बिल्कुल लगा हुआ सूअर और बघेरे की लड़ाई के लिए एक स्थान बना है जिसे 'बाड़िया' कहते हैं। यहां प्रतिदिन सायंकाल के समय मक्का खाने के लिए समीप के जंगल से अनेक सूअर एकत्र होजाते हैं। मक्का खाते समय सूअरों का कौतुक बड़ा ही दिलचस्प होता है। महलों के पास ही ऊंचे ऊंचे पर्वत हैं, जिनका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीय है। इन महलों में बैठे बैठे ही आसानी से सूअर और बघेरेरे का शिकार किया जासकता है। बाग के समीपवर्ती पर्वतों पर, विजयमूल, भवानीकुञ्ज इत्यादि अनेक शिकार के स्थान बने हुए हैं जो 'ओदियां' या 'मूल' कहलाते हैं। इस जंगल के आगे एक और बड़ा बन है, जो बड़े मगरे के नाम से मशहूर है। यहां भी शिकार के लिए अनेक ओदियां और मूल बने हुए हैं। इस रक्षित जंगल (रखत) में घास बहुत पैदा होती है। आरामभवन बाग के सामनेवाले

अक्षयसागर तालाब में पहाड़ियों पर से बहता हुआ जो नाला आता है उसकी प्राकृतिक शोभा देखने योग्य है। यह नाला इस राजस्थान की मगरा तहसील के भादसी गांव की समीपवर्ती पहाड़ियों से निकलता है।

यहां की मशहूर शिकारगाह 'शाहमाला' है। शाहमाले का रखत जंगल बदनोर से पूरब में क़रीब १ मील की दूरी पर है। इसके चारों तरफ़ लगभग ५ मील के घेरे में थूहर की बाड़ लगी है। इस रखत जंगल में वृक्ष और झाड़ियां बहुत घनी हैं और घास भी बहुत पैदा होती है। इसमें बघेरे, सूअर, हिरन, खरगोश आदि शिकार के जानवर अधिकता से मिलते हैं। इस शिकारगाह में मोटर, बग्गियां आदि सवारियों के आने जाने के लिए सड़कें बनी हुई हैं। यहां मोटर आदि सवारियों में बैठे बैठे ही आसानी से बघेरे, सूअर, हिरन आदि जानवरों का शिकार होजाता है। यहां जगह जगह पहाड़ियों पर अनेक सुन्दर मूल और ओदियां बनी हुई हैं जिनमें विशेषतः अवलोकनीय मूल नासिकनिकास, शेरमूल, सूरबुर्ज, मझमूल, फ़तहमूल, राणामूल, सूरजमूल, सिंहमूल, गजमूल, जंगमूल, बजरंगमूल, नावहौदा, चन्द्रमूल और सुन्दरमूल हैं। इन मूलों तक सड़कें बनी हैं, जहां मोटर, बग्गी आदि सवारियां आसानी से जासकती हैं। दूर से पहाड़ियों के शिखरों पर बने हुए मूलों का दृश्य बड़ा ही सुंदर दिखाई देता है। मझमूल नामक मूल के अतिरिक्त, जो तीन मंज़िल का है, शेष मूल प्रायः दो मंज़िले हैं। शाहमाला प्रातःकाल और सायंकाल सैर करने के लिए बड़ा ही रम्य स्थान है। यहां सूरजकुंड नामक एक जलाशय और एक कूप भी है, जहां जानवरों के पानी पीने का स्थान है। इनके अतिरिक्त इस शिकारगाह के बाहर समीप ही मीठे जल की एक बावड़ी और एक कुआ है।

साधु महात्माओं के रहने के लिए बदनोर के पास ही पूर्व दिशा में पहाड़ी पर 'आंजना' नामक स्थान है। यहां पर गोपालजी महाराज का मन्दिर और साधुओं के विश्राम करने के लिए कुछ मकान बने हुए हैं तथा एक प्राकृतिक जलाशय भी है, जिसमें बारहों महीने पानी रहता है। इस स्थान में अनेक प्रसिद्ध योगी महात्माओं ने निवास किया है, जिनके समाधि-

स्थान अद्यावधि यहां मौजूद हैं। कंगालदासजी नामक एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा यहां निवास करते थे। श्रीमान् मेदपाटेश्वरों की तरफ़ से उनका भंडारा किया गया था, जैसा कि वहां के शिलालेख से विदित होता है। साधुओं के विश्राम के लिए दूसरा स्थान रेवतजी का मंदिर है। यहां पर भी महात्माओं के ठहरने के लिए मकान बने हुए हैं। इस मंदिर के समीप ही 'मान-तलाई' नामक एक छोटा जलाशय है।

बदनोर से उत्तर की तरफ़ क़रीब ½ मील की दूरी पर पहाड़ियों के बीच में कुशलामाताजी का प्रसिद्ध और प्राचीन शिखरबन्द मन्दिर है। विनोदसागर तालाब का जल इस मन्दिर के नीचे तक पहुंच जाता है। यहां की प्राकृतिक शोभा अत्यन्त मनोहर है।

बदनोर में सभी ऋतुएँ बड़ी अनुकूल रहती हैं। विशेषतः वर्षाऋतु में तो यहां की शोभा बहुत ही चित्ताकर्षक हो जाती है। नगर के पास चारों तरफ़ विनोदसागर, अक्षयसागर, जैतसागर, सबलसागर, बड़ा तालाब (बड़गाण), पुरा का तालाब प्रभृति समस्त विशाल जलाशयों के भर जाने तथा अनेक पहाड़ी नालों के अत्यन्त तीव्र वेग के साथ बहने से एक अद्भुत प्राकृतिक दृश्य दृष्टिगोचर होता है। अक्षयसागर तालाब के भर जाने पर जब उसकी चद्दर चलने लगती है और पानी की धारा ऊंचाई से गिरकर आरामभवन की सड़क के पुल के नीचे होकर बड़े वेग से बहती है, उस समय का दृश्य दर्शक को मुग्ध कर देता है।

बदनोर में राजकर्मचारी तथा कृषकजनों के अतिरिक्त अनेक शिल्पियों और कारीगरों की भी अच्छी आबादी है। यहां के सिकलीगर बहुत उम्दा उस्तरे, चाक़ू, कैंची, छुरियां वग़ैरह बनाते हैं, जो बिक्री के लिए बाहर भी बहुत जाती हैं। हाथीदांत का काम भी यहां उम्दा होता है। सुनारों के यहां गढ़ाई का काम भी अच्छा होता है। भांभी लोग रेज़े बहुत उत्तम बुनते हैं। रंगाई का काम भी अच्छा होता है। यहां के उस्ते (बन्दूक़ बनानेवाले) अच्छे कारीगर हैं। यहां के खाती लकड़ी के पलंग, कुरसी, चौकियां वग़ैरह अच्छी बनाते हैं। शोरगर बहुत अच्छी आतिशबाज़ी बनाते हैं, जो बाहर भी जाती है।

चैत्र के शुक्ल पक्ष में बदनोर में बड़े समारोह के साथ गणगोर का उत्सव मनाया जाता है। सायंकाल के समय राज के समस्त लवाज़मे और मरातिब के साथ महलों से खेतजी के मंदिर को सवारी जाती है। यहां दरीखाने में सब भाई बेटे, सरदार, कामदार वगैरह उपस्थित रहते हैं। गणगोर माताजी की दिव्य अलंकृत मूर्त्ति भी विराजमान रहती है। दरीखाने में मनोहर संगीत होता है। सामने के मैदान में घोड़े दौड़ाये जाते हैं। फिर आतिशबाज़ी और तोपें छूटती हैं। तत्पश्चात् सवारी वहां से रवाना होकर महलों में दाखिल होती है। इस सवारी के जुलूस को देखने के लिए बीस बीस कोस के स्त्री पुरुष इकट्ठे हो जाते हैं। यहां गणगोर के अतिरिक्त दूसरे प्रसिद्ध उत्सव-विजयदशमी, दीपमालिका और फाग—हैं। फाग का उत्सव चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को होता है। इस उत्सव में यहां ग्रामों के तथा मेरवाड़ा प्रांत के गांवों के रावत, मेर, गूजर वगैरह कौमों के सहस्रों मनुष्य उपस्थित होते हैं। हिन्दुओं के अन्य त्यौहार भी बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। ऐसे मौक़ों पर जब जलमहलों में रोशनी होती है और विनोदसागर तालाब के तट पर आतिशबाज़ी चलती है तो दीपकों और आतिशबाज़ी का प्रतिबिम्ब पड़ने से जल में एक निराली छटा दिखाई देती है।

बदनोर के अतिरिक्त बदनोर और मगरा तहसील में अन्य बड़े गाँव भादसी, रतनपुरा, बड़ाछ और खेड़ेला हैं। भादसी और रतनपुरे में कलालों की बस्ती अधिक है।

आकड़सादा तहसील में सब से बड़ा गाँव आकड़सादा है, जो बदनोर से पूरब की तरफ़ लगभग ६ मील के फ़ासले पर है। यहां तहसील की कचहरी के लिए मकान बने हुए हैं, जिन्हें कोटड़ी कहते हैं। इस गाँव के पास शिवसागर नामक विशाल तालाब है। इस तालाब के

आकड़सादा

निकट ही एक पुराना शिव-मन्दिर है जिसका निर्माणकाल पाषाण की चौखट पर खुदे हुए लेख से वि० सं० १५८५ निश्चित होता है। खारी नदी के पास होने से यहां की भूमि बहुत उपजाऊ है। इस ग्राम के समीप भी रखत जंगल है और यहां घोड़े पर से सूअरों का शिकार करने के लिए अच्छा मैदान है। इसमें घास बहुत पैदा होती है। भाद्रपद शुक्ला ११ को इस गाँव में रामदेवजी

का एक बड़ा मेला होता है। यहां रंगाई और लकड़ी का काम बढ़िया होता है तथा व्यापार भी यहां अच्छा है। इस तहसील में अन्य बड़े गाँव बालापुरा, गजसिंहपुरा, सवाईगढ़, मोठी, करमा का बाड्या, ओजाणा, मोगर, बीछूदड़ा और फ़तहगढ़ है। आकड़सादे और मोठी में ख़रबूजे और ककड़ियां बहुत होती हैं। गजसिंहपुरा तथा उससे लगी हुई सारी भूमि भौम है। ओजाणे में पहाड़ी के ऊपर एक पुरानी गढ़ी बनी हुई है। फ़तहगढ़ में घास का अच्छा 'बीड़' है।

पाटन

पाटन तहसील में सबसे बड़ा गाँव पाटन है, जो बदनोर से अनुमान ७ मील पूर्वोत्तर है। यहां कोटड़ी में अच्छे दुमंज़िले पक्के मकान बने हुए हैं। कोटड़ी के बाहरी भाग में तहसील की कचहरी होती है। और उसके सामने एक बड़ा तालाब है, जिसकी पाल पर कई पुरानी छतरियां हैं। पाटन में विशेषतः गूजरों की बस्ती है। पहले इस गाँव में बहुत अधिक आबादी और अनेक देवालयों के होने का अनुमान होता है, क्योंकि प्राचीन मूर्तियों के भग्नांश अभी तक यहां बहुत अधिकता से उपलब्ध होते हैं। यहां रेज़े तथा दरियां अच्छी बनती हैं और मिट्टी के बरतन भी सुन्दर बनते हैं। यहां के नीलगर रंगाई का काम अच्छा करते हैं। भाद्रपद शुक्ला सतमी के दिन यहां महावीर (हनुमानजी) का मेला होता है। इस ग्राम के समीप एक बड़ा नाला है, जहां पानी को रोकने के लिए जगह जगह ओटे (बान्ध) बन्धे हुए हैं। इस तहसील में दूसरे बड़े गांव गायराखेड़ा, गोपालपुरा, अखैगढ़, गैनपुरा, उरार, चतरपुरा और प्रतापपुरा है। चतरपुरा और प्रतापपुरा में बड़े तालाब हैं। गोपालपुरा (दुपटा नामक ज़मीन पर) अभी हाल में आबाद हुआ है।

टूंकरवाड़

टूंकरवाड़ तहसील में सब से बड़ा ग्राम टूंकरवाड़ है। यह गाँव बदनोर से पूर्व लगभग २० मील पर है। पहले यह ग्राम बहुत आबाद था, परन्तु कुछ दिनों से खेतों के पास रहने के लिए किसानों ने पृथक् पृथक् खेड़े बसा लिए हैं, जिससे इसकी आबादी पहले से कम होगई है। यहां एक विशाल गढ़ है, जिस पर सुंदर महल बने हुए हैं। तहसील की कचहरी भी इसी गढ़ में है। इसके चारों तरफ़ गहरी खाई है। उक्त ग्राम में वैष्णव तथा जैन सम्प्रदाय

के कई प्राचीन मन्दिर हैं। यहां से कुछ अन्तर पर गोविन्दसागर नामक एक बहुत विशाल और रमणीय तालाब है, जिसको मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय ठाकुर गोविन्दसिंहजी ने निर्माण कराया था। तालाब का दृश्य बड़ा सुन्दर है। इसकी पाल पर बड़े बड़े वृक्ष लगे हुए हैं और इस तालाब के बीच में उन्नत स्थानों के आजाने से दो टापू से बन गए हैं, जहां अनेक बड़े बड़े वृक्ष हैं। टापुओं का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुहावना है। इस तालाब में सिंघाड़ों की पैदावार अच्छी होती है। इसकी पाल की ऊंचाई २६ फुट और लंबाई ५५२० फुट है। इसकी चद्दर १२०० फुट लंबी है और पानी की गहराई २० फुट है। घेरा इसका ५ मील तथा ५३० गज़ और रक़बा अंग्रेज़ी ज़रीब से २६६६ बीघा है। इसके जल से सहस्रों बीघा ज़मीन की सिंचाई होती है और सिंचाई के वास्ते स्थान स्थान पर मोरियां तथा नहरें बनी हुई हैं। टूंकरवाड़ में रंगाई और छपाई का काम अच्छा होता है। इस तहसील में अन्य बड़े गाँव चोरखेड़ा, केसरपुरा, जालखेड़ां, सोडार, हाज्यास और भाड़ल्यास हैं। यहां घास के अनेक छोटे बड़े बीड़ें हैं। गोविन्दसागर तालाब के पास जो बीड़ है उसमें सूअर अधिकता से पाये जाते हैं। यह एक अच्छा शिकारगाह है।

चांदरास तहसील में सबसे बड़ा गाँव चांदरास है। यह ग्राम बदनोर से दक्षिण में लगभग २८ मील की दूरी पर है। आबादी के हिसाब से इस राजस्थान में बदनोर से दूसरे नम्बर का गाँव यही है। इसके चारों तरफ़ का प्रदेश बहुत उपजाऊ है। यहां भी एक विशाल और सुदृढ़ प्राचीन गढ़ बना हुआ है। गढ़ के चारों तरफ़ गहरी खाई है, जो जल से भरी रहती है। इसके बाहरी हिस्से में तहसील की कचहरी है। यहां वैष्णव और जैन सम्प्रदाय के दो प्राचीन मन्दिर हैं। इस गांव के समीप जैतसागर और केसरसागर नामक दो तालाब हैं। खजूर के वृक्ष यहां बहुतायत से हैं। यहां खजूर के पत्तों की चटाइयां अच्छी बनती हैं। रंगाई और लकड़ी का काम भी अच्छा होता है। चांदरास के अतिरिक्त इस तहसील में अन्य बड़े गाँव बैनाका खेड़ा, गोविन्दपुरा और गोड़ास हैं। गोड़ास में एक अच्छा तालाब है और चांदरास तथा गोड़ास में घास के बड़े बीड़ें भी हैं।

चांदरास

कासोला तहसील में सबसे बड़ा गाँव कासोला है, जो बदनोर से दक्षिण पूर्व में क़रीब १० मील के अन्तर पर है। यहां भी राज की कोटड़ी है, जहां तहसील का दफ़्तर है। इस गांव में मिट्टी के बरतन अच्छे बनते हैं। यहां एक अच्छा तालाब है। इस तहसील में अन्य बड़े गांव भ्रूवरक्या, रायरा, चोट्यास, दड़ावट, ऊदल्यास और कलियारा हैं। भ्रूवरक्या और रायरा में अच्छे तालाब हैं। इस तहसील में खारी, मानसी और नेगाडी इन तीन नदियों के होने से गाँवों को जल (सेजा) का बहुत सुबीता है।

कासोला

चैनपुरा तहसील में मुख्य गांव चैनपुरा है, जो बदनोर से दक्षिण-पश्चिम में क़रीब ८ मील के फ़ासले पर है। इस ग्राम के समीप होकर नेगाडी नदी के निकलने से यहां भी सेजे का लाभ है। यहां राज की दुमंज़िली कोटड़ी है, जहां तहसील की कचहरी है। यहां गेहूं, घी वग़ैरह का व्यापार होता है। कपड़े भी अच्छे रंगे जाते हैं। इस तहसील में अन्य बड़े गांव पुरा, भ्ररड़ का खेड़ा, गढ़वाई, गायला का खेड़ा, भोजपुरा और बाजून्दा हैं। पुरा में, जो बदनोर से दक्षिण-पूर्व में ४ मील के अन्तर पर है, एक बड़ा विशाल और बहुत पुराना तालाब है। गढ़वाई और बाजून्दे में भी तालाब हैं। गढ़-वाई में नदी के तट पर महल भी बने हुए हैं। इस तहसील में तालाब अधिक होने के कारण खस बहुत पैदा होता है। यहां खरबूज़ों की पैदावार भी अच्छी होती है। इस गांव की सीमा में 'श्याई का मन्ड' नाम का एक अच्छा बीड़ है, जहां घास की पैदावार अच्छी होती है। भ्ररड़ का खेड़ा और चोट्यास के गांवों के मध्य में मारूधोरा नामी एक रखत जंगल है। घास की पैदावार यहां भी अच्छी होती है।

चैनपुरा

राजस्थान में ऊपर लिखे हुए गाँवों के अतिरिक्त और कई छोटे बड़े गांव, खेड़े और भौम[1] हैं, जिनकी नामावली विस्तारभय से दर्ज नहीं की गई है।

---

१. भौम से तात्पर्य वंश परंपरागत भूमि है। इसपर कर नहीं लिया जाता। आवश्य-कता होने पर केवल सैनिक-सेवा में भौम के अधिकारी को भाग लेना पड़ता है। राजपूताने में भौम का स्वत्व इतने अधिक महत्त्व का समझा जाता है कि अपने अधिकार की जागीर के गाँवों में भी उसे प्राप्त करने के निमित्त बड़े बड़े सरदार उत्सुक रहते हैं। साधारण जागीर

राजस्थान की भौम

इलाक़े के बाहर भी कितने ही गाँवों में यहां की भौम हैं। दौलतगढ़ पट्टे के बराणा गांव में, जो यहां की भौम है, उसमें आमों का एक बाग़ है जहां आम बहुतायत से होते हैं। इस गाँव में यहां की एक कोटड़ी भी है। मेवाड़ राज्य के हुरड़ा ज़िले के भाटीखेड़ा गांव और मगरा-मेरवाड़ा के अजीतगढ़[1], जैतगढ़ और भैंरूखेड़ा गाँवों में भी यहां की भौमें हैं।

की अपेक्षा भौम के अधिक स्थायी होने का यह निश्चित प्रमाण है (टॉड राजस्थान, जिल्द १, पृ० १८२ ।

१. अजीतगढ़ गांव में यहां की जो भौम है उसका वृत्तान्त आगे ठाकुर जैतसिंहजी के प्रकरण में दिया जायगा।

दूसरा प्रकरण

राठोड़ों से पहले का बदनोर का इतिहास

राजपूताने के अन्य स्थानों के सदृश यहां का भी प्राचीन इतिहास यद्यपि पूर्णतः उपलब्ध नहीं हो सका है तथापि जो कुछ ज्ञात हुआ है वह पाठकों के अवलोकनार्थ लिखा जाता है—

प्राचीन वृत्तान्त

बदनोर एक प्राचीन स्थान है। मगरा-मेरवाड़ा नामक प्रान्त अजमेर से कुम्भलगढ़ (मेवाड़ में) तक लम्बा चला गया है। इस पहाड़ी प्रदेश की पूर्वकाल में मुख्य राजधानी बदनोर या बैराटगढ़ ही पाई जाती है। बड़वा भाटों की ख्यातों से ज्ञात होता है कि बदना नामी एक परमारवंशी राजा ने विक्रम संवत् ९०२ (ईसवी सन् ८४५) में अपने नाम से बदनपुर नामक नगर बसाया, जो पीछे से बदनोर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह वृत्तान्त सत्य भी हो सकता है, परन्तु ख्यातों की अनेक बातों पर विचार करने से इसकी सत्यता में बहुत कुछ संशय होता है, क्योंकि बड़वा भाटों की ख्यातों में विक्रम संवत् की चौदहवीं शताब्दी से पूर्व के राजपूत नरेशों के जो वृत्तान्त लिखे हुए हैं वे आधुनिक शोध से बहुधा कपोलकल्पित ही सिद्ध हुए हैं।

बदनोर के वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के एक शिलालेख तथा हम्मीर महाकाव्य में इस नगर का नाम वर्द्धनपुर लिखा है, जो शुद्ध प्रतीत होता है। महाराणा कुम्भाजी के कीर्त्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में इस नगर के समीपवर्ती विशाल पर्वत का नाम वर्द्धन-गिरि लिखा हुआ है। इसी पर्वत पर बैराटगढ़ नामक प्रसिद्ध प्राचीन दुर्ग विद्यमान है। यद्यपि बदनोर के बसानेवाले का निश्चितरूप से कुछ भी पता नहीं लगता, तथापि अनेक पुराने लेखों और ग्रन्थों में इस नगर का उल्लेख मिलने तथा यहां के अनेक प्राचीन लेखों से इसका बहुत प्राचीन होना सिद्ध होता है। इस आधार पर यह भी अनुमान किया

शिलालेखों में बदनोर के प्राचीन नाम

जा सकता है कि कदाचित् कन्नौज के परम प्रतापशाली महाराज हर्षवर्द्धन (वि० सं० ६६३ से ७०५=ई० स० ६०६=६४८) ने अपने नाम पर इसे बसाया हो[1]। यहां पर मेवाड़ राज्य का अधिकार स्थापित होने से पूर्व मेरवाड़े के मेरों[2] का आधिपत्य था, परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि इन मेरों का राज्य पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं, किन्तु कभी स्वाधीन और कभी किसी समीप के बड़े राजा के अधीन रहा होगा। मगरा-मेरवाड़ा और बदनोर के पास तीन बड़े विशाल राज्यों की सीमा मिलती थी। पूर्वोत्तर दिशा में तो सब से निकटवर्ती अजमेर और सांभर के चौहानवंशी राजाओं का विशाल राज्य था, जो मांडलगढ़, जहाजपुर और बिजोलिया तक फैला हुआ था। बदनोर से ईशान कोण में ७ कोस की दूरी पर इसी वंश के महाराज अर्णोराज (वि० सं० ११९१ से १२०६=ई० स० ११३४ से ११५२) ने अपने नाम से खारी नदी के दक्षिण तट पर अरण्या नामक एक ग्राम बसाया, जिसके चिह्न अब भी शम्भुगढ़ के निकट पाये जाते हैं। इसी प्रकार बदनोर से दक्षिण में मालवे के परमारों का विशाल राज्य था और महाराज मुंज (वाक्पतिराज), सिन्धुराज तथा भोजराज का अधिकार चित्तोड़ से भी आगे उत्तर की तरफ़ था। यहां से पश्चिम में गुजरात के सोलङ्कियों का विस्तृत राज्य था, जैसा कि उस समय के शिलालेखों से पाया जाता है। इन तीनों राज्यों में परस्पर युद्ध होता रहता था। इसी कारण अनुमान होता है कि उनमें से बलवान् राष्ट्र इस मध्यवर्ती प्रदेश पर अपना

---

(१) महाराज हर्षवर्धन के बांसखेड़ा के दानपत्र से विदित होता है कि उस दानपत्र को प्रदान करते समय महाराज हर्ष अपने साम्राज्य में दौरा करते हुए वर्धमानकोटि नामक स्थान में थे। यह स्थान कहां था यद्यपि इसका निश्चय नहीं हो सका है, तथापि वर्धमान पर्वत, वर्धनीगिरि प्रभृति बदनोर के प्राचीन नामों को देखने से अनुमान यह बदनोर का ही नाम प्रतीत होता है।

(२) मेर लोग पश्चिमी क्षत्रपों के वंशज हैं। इनके प्राचीन नाम शिलालेखों में मिहिर, मेर, मेव आदि मिलते हैं। जिसप्रकार मेर नाम से इनका निवासस्थान मेरवाड़ा कहलाने लगा उसी प्रकार मेद और मेव इन नामों से मेदपाट और मेवाड़ के नाम प्रसिद्ध हुए। कितने एक विद्वान् मेरों को गणना हूणों में करते हैं।

अधिकार कर लेता होगा और अवसर पाकर यहां के मेर स्वतन्त्र भी हो जाते होंगे।

इसके पश्चात् जब मुसलमानों ने अजमेर, गुजरात और मालवा के राज्यों को नष्ट कर दिया तब अजमेर के साथ मेरवाड़ा भी उनके हस्तगत हो जाने से विक्रम संवत् की तेरहवीं शताब्दी के अन्त में बदनोर पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। लगभग एक शताब्दी तक बदनोर मुसलमानों ही के अधिकार में रहा। वि० सं० १३५० (ई० स० १२९३) के आसपास रणथंभोर के प्रसिद्ध चौहान राजा हंमीर ने अपनी विजययात्रा में आबू से लौटते हुए वर्द्धनपुर और चांग को लूटा था[1]। उस समय यहां मुसलमानों का अधिकार था। वि० सं० १३७३ (ई० स० १३१६) में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के मरने पर मुसलमानों के निर्बल हो जाने से जब अनेक छोटे बड़े राज्य स्वतन्त्र हो गये उस समय मेरवाड़े के मेरों का भी स्वतन्त्र होना सम्भव प्रतीत होता है।

बदनोर पर मुसलमानों का अधिकार

इस घटना के लगभग ७० वर्ष पश्चात् वि० सं० १४५० (ई० स० १३९३) के आसपास चित्तोड़-नरेन्द्र महाराणा लाखाजी ने मेरों को जीतकर उनके वर्द्धन नामक पहाड़ी प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुम्भलगढ़ के शिलालेख और चित्तोड़ के कीर्त्तिस्तम्भ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उग्रतेजवाले महाराणा लाखाजी ने मेरों पर अतिभीषण आक्रमण किया। महाराणा का रणघोष सुनते ही मेदों (मेरों) का धैर्य नष्ट हो गया। बहुत से मारे गये और उनका वर्द्धन नाम का उच्च पर्वत छीन लिया गया[2]।

महाराणा लाखाजी का बदनोर को जीतना

---

(१) ततोऽवतीर्य वर्यश्रीनिर्धनं वर्धनं पुरम् ।
चंगामपि मलद्रंगां चक्रे चक्रेरिविक्रमः ॥
(नयचन्द्रसूरिरचित हम्मीरमहाकाव्य)

(२) मेदानाराद्गलसादुल्लसत्तद्भेरीधीरध्वानविध्वस्तधैर्यान् ।
कारं कारं यो महीदुग्रतेजा दग्धारातिर्वर्द्धनाख्यं गिरीद्रम् ॥
(चित्तोड़ के कीर्त्तिस्तम्भ की प्रशस्ति)
कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति में भी २१२ वां श्लोक यही है।

सरदारगढ़ (लावा) के डोडिया सामन्तों के इतिहास से विदित होता है कि उनके पूर्वज धवलसिंहजी को महाराणा लाखाजी ने गुजरात से बुलवाकर बदनोर, मसूदा और नन्दराय आदि परगने जागीर में प्रदान किये थे। बदनोर के पास महाराणा लाखाजी का गयासुद्दीन के साथ युद्ध हुआ, जिसमें धवलसिंहजी और उनके पुत्र नरेन्द्र दोनों मारे गये।

बदनोर का डोडिया राजपूतों को जागीर में दिया जाना

कर्नल टॉड ने बदनोर की लड़ाई में महाराणा लाखाजी का मुहम्मदशाह लोदी को परास्त करना लिखा है, परन्तु उसका यह लिखना कुछ संदिग्ध प्रतीत होता है; क्योंकि प्रथम तो दिल्ली के लोदी सुलतानों में मुहम्मद नाम का कोई सुलतान ही नहीं हुआ, दूसरे उस समय तक दिल्ली में लोदियों का राज्य संस्थापित भी नहीं हुआ था। सम्भव है कि टॉड साहब ने भूल से मुहम्मदशाह तुगलक़ को, जो वि० सं० १४४६ (ई० स० १३८६) में दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, मुहम्मद लोदी लिख दिया हो।

बदनोर के समीप महाराणा लाखाजी का मुसलमानों से युद्ध करना।

महाराणा मोकलजी के राज्यकाल के अन्तिम वर्ष अर्थात् वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में मेरों ने फिर स्वतन्त्र होकर उपद्रव करना प्रारम्भ किया। इसलिए उनको दंड देने के लिए उन्होंने मेरवाड़े की तरफ़ प्रस्थान किया, परन्तु वे मार्ग में ही मदारिया गाँव में चाचा व मेरा (महाराणा खेताजी की पासवान के पुत्र) के हाथ से मारे गये। इस दुर्घटना के कारण मेरों पर चढ़ाई नहीं की गई और उनके उपद्रव बराबर जारी रहे, परन्तु मोकलजी के उत्तराधिकारी महाराणा कुंभकर्णजी ने कुछ वर्षों के पीछे मेरों पर बड़ा प्रबल आक्रमण कर उनके मुख्य स्थान बर्धमान पर्वत को पुनः विजय किया और मेरों की शक्ति का समूल नाश कर दिया। ऐसी जनश्रुति प्रसिद्ध है कि बर्धमान पर्वत को कुशलपूर्वक विजय करने की स्मृति में महाराणा कुंभाजी ने बदनोर में श्री कुशलामाता का मंदिर तथा कुशलसागर तालाब (जो आजकल विनोदसागर कहलाता है) निर्माण कराये।

बदनोर पर कुंभाजी का आक्रमण

जब लल्लाखाँ पठान ने सोलंकियों से टोडा (जयपुर राज्य में) और उसके आसपास का प्रदेश छीन लिया तब वहां के अधिपति राव सुरताणजी

सोलङ्की राव सुरताणजी का बदनोर पर अधिकार

सोलङ्की चित्तोड़-नरेश महाराणा रायमलजी के पास चले आये। महाराणा ने उनको बदनोर का परगना जागीर में देकर अपना सामन्त बनाया। राव सुरताणजी की पुत्री तारादेवी के सौन्दर्य का वृत्तान्त सुनकर महाराणा रायमलजी के छोटे राजकुमार जयमलजी ने राव सुरताणजी को कहलाया कि आपकी पुत्री के रूप की बड़ी प्रशंसा सुनी है, यदि एक बार आप उसे मुझको दिखला दें तो मैं उससे विवाह कर लूं। इसपर सुरताणजी ने कहलाया कि राजपूत की पुत्री दिखलाई नहीं जाती, यदि आप विवाह करना चाहें तो हमें स्वीकार है। राजकुमार जयमलजी ने अभिमान के कारण सुरताणजी की बात का कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी इच्छा के अनुसार उनकी पुत्री को देखने का ही आग्रह किया, जिसपर राव सुरताणजी ने अपने साले रत्नसिंहजी सांखले के द्वारा राजकुमार को कहलाया—'हम विदेशी राजपूतों के साथ आप ऐसा अनुचित व्यवहार क्यों करते हैं ? हमने तो विपत्ति पड़ने के कारण आपके पिता के राज्य में शरण ली है,' परन्तु राजकुमार पर इस बात का कोई असर न हुआ और उन्होंने अपनी ज़िद् पूरी करने के लिए बदनोर पर चढ़ाई कर दी।

महाराणा रायमलजी के छोटे राजकुमार जयमलजी का काम आना

इस वृत्तान्त को सुनकर राव सुरताणजी ने, जो महाराणा के आश्रित थे, राजकुमार जयमलजी से युद्ध करना उचित न समझा और बदनोर छोड़कर अन्यत्र चले जाने के विचार से अपना सामान गाड़ियों में भरवाकर समस्त परिवार-सहित वे वहां से रवाना हो गये। उधर से कुँवर जयमलजी भी अपनी सेना सहित बदनोर पहुंचे। वहां पर उनको राव सुरताणजी के कुटुम्ब-सहित अपनी सारी सम्पत्ति लेकर निकल जाने का वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उस समय रात्रि हो जाने से जयमलजी के साथवाले सरदारों ने कहा कि अभी तो यहीं ठहर जाइये प्रातःकाल रवाना होकर सुरताणजी से भिड़ जायेंगे, परन्तु जयमलजी ने क्रोध-वश उसी समय रवाना होने की आज्ञा दी और मशालें जलाकर उन्हें हाथियों पर रख लीं। जयमलजी भी रथ पर सवार होकर मशालों की रोशनी से आगे बढ़े और बदनोर से क़रीब सात कोस पर अंटाली ग्राम के पास सुरताणजी

प्रवेश करने का अवसर मिल गया। इस वीरता के उदाहरण से उनका उत्साह और भी बढ़ गया और उन्होंने बड़ी प्रचंडता से आक्रमण कर मुसलमानों की सेना को काट डाला। इस युद्ध में डूँगरसिंहजी बहुत घायल हुए थे। महाराणा रत्नसिंहजी के समय डूंगरसिंहजी गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के पास वकील होकर गये थे और महाराणा विक्रमादित्यजी के समय बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई में काम आये। डूंगरसिंहजी के पुत्र तेजसिंहजी महाराणा उदयसिंहजी और हाजीखां पठान के बीच की लड़ाई में मारे गये। फिर बदनोर पर से चौहानों का अधिकार उठ गया।

इसके अनन्तर वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में हमारे प्रसिद्ध पूर्वज मेड़ताधीश वीरशिरोमणि राव जयमलजी को प्रथमवार १००० गांवों सहित बदनोर प्रदान किया गया, परन्तु इसके दूसरे वर्ष वि० सं० १६१२ में पैतृक राज्य मेड़ता के पुनः प्राप्त हो जाने से उन्होंने बदनोर का परित्याग कर दिया। वि० सं० १६१३ में उनके अधिकार से मेड़ता निकल गया, तब महाराणा उदयसिंहजी ने फिर उनको पूर्वानुसार बदनोर का राजस्थान प्रदान किया, परन्तु वि० सं० १६१६ में जोधपुराधीश राव मालदेवजी ने बदनोर पर अधिकार कर लिया। तीन वर्ष पर्यन्त उसपर जोधपुर का अधिकार रहा। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में राव मालदेवजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् उसपर पुनः मेवाड़ राज्य का आधिपत्य हुआ। इसके दूसरे वर्ष वि० सं० १६२० में बदनोर का परगना फिर राव जयमलजी को प्रदान किया गया तब से अभी तक यह प्रान्त उन्हीं के वंशजों के अधिकार में चला आता है।

बदनोर पर राव जयमलजी का अधिकार

प्राचीन काल में इस स्थान पर शासन करनेवाले सोलङ्की, पंवार तथा चौहानवंशी जागीरदार या भोमिये तो अब इस परगने में नहीं हैं, परन्तु यहां के प्राचीन निवासी मेर लोग, जो प्रायः कृषि का व्यवसाय करते हैं, आसपास के सभी ग्रामों में आबाद हैं।

तीसरा प्रकरण

राठोड़-वंश का प्राचीन इतिहास

राठोड़ शब्द केवल भाषा में प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों में बहुधा इसके स्थान में राष्ट्रकूट शब्द मिलता है। प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्ठऊड' होता है, जिससे 'राठऊड' या 'राठोड़' शब्द बनता है, जैसे चित्रकूट का 'चित्तऊड' और उससे 'चित्तोड़' बनता है।

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति

मेवाड़ राज्य के घोसुंडी गाँव की बावड़ी में विक्रम संवत् १५६१ (ई० सं० १५०४) का एक शिलालेख लगा है। यह बावड़ी मेवाड़ के महाराणा रायमलजी की राणी शृंगारदेवी की बनवाई हुई है। शृंगारदेवी के मारवाड़ के राठोड़ नरेश राव जोधाजी की पुत्री होने के कारण उक्त शिलालेख में मारवाड़ के अधिपति राव रिड़मलजी और राव जोधाजी का भी वर्णन है। उसमें राष्ट्रकूट शब्द के स्थान में 'राष्ट्रवर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। राष्ट्रवर्य और राष्ट्रकूट इन दोनों शब्दों का अर्थ एक है। राष्ट्रवर्य शब्द का प्राकृत रूप 'रट्ठवर' और उस पर से 'राठवड़,' 'राठवर,' 'राठउर,' 'राठउड,' 'राठोर' और 'राठोड़' शब्द बनते हैं।

मारवाड़ में नाडोल गाँव के महाजन पंचों के पास चौहाण राजा कीर्तिपाल (कीतू) का ताम्रपत्र वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का है। उसमें कीर्तिपाल के पिता आल्हण के वर्णन में लिखा है—'इस राजा ने राष्ट्रोड-वंश के सहुल की पुत्री अन्नल्लदेवी से विवाह किया था' (अनेन राज्ञा जनविश्रुतेन राष्ट्रोडवंशजवरा सहुलस्य पुत्री। अन्नल्लदेविरिति शीलविवेकयुक्ता रामेण वै जनकजेव विवाहितासौ)। यहां पर राष्ट्रोड शब्द लिखा है, जो राठोड़ शब्द से अधिक मिलता हुआ है, परन्तु यह शुद्ध संस्कृत रूप नहीं है। यह 'राष्ट्र' और 'ऊड' इन दो शब्दों के मिलने से बना है, जिनमें 'राष्ट्र' तो शुद्ध संस्कृत रूप का है और 'ऊड' प्राकृत रूप का, जिसका संस्कृत रूप 'कूट' है। इस वास्ते 'राष्ट्रोड'

प्रवेश करने का अवसर मिल गया। इस वीरता के उदाहरण से उनका उत्साह और भी बढ़ गया और उन्होंने बड़ी प्रचंडता से आक्रमण कर मुसलमानों की सेना को काट डाला। इस युद्ध में डूँगरसिंहजी बहुत घायल हुए थे। महाराणा रत्नसिंहजी के समय डूंगरसिंहजी गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के पास वकील होकर गये थे और महाराणा विक्रमादित्यजी के समय बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई में काम आये। डूंगरसिंहजी के पुत्र तेजसिंहजी महाराणा उदयसिंहजी और हाजीखां पठान के बीच की लड़ाई में मारे गये। फिर बदनोर पर से चौहानों का अधिकार उठ गया।

इसके अनन्तर वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में हमारे प्रसिद्ध पूर्वज मेड़ताधीश वीरशिरोमणि राव जयमलजी को प्रथमवार १००० गांवों सहित बदनोर प्रदान किया गया, परन्तु इसके दूसरे वर्ष वि० सं० १६१२ में पैतृक राज्य मेड़ता के पुनः प्राप्त हो जाने से उन्होंने बदनोर का परित्याग कर दिया। वि० सं० १६१३ में उनके अधिकार से मेड़ता निकल गया, तब महाराणा उदयसिंहजी ने फिर उनको पूर्वानुसार बदनोर का राजस्थान प्रदान किया, परन्तु वि० सं० १६१६ में जोधपुराधीश राव मालदेवजी ने बदनोर पर अधिकार कर लिया। तीन वर्ष पर्यन्त उसपर जोधपुर का अधिकार रहा। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में राव मालदेवजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् उसपर पुनः मेवाड़ राज्य का आधिपत्य हुआ। इसके दूसरे वर्ष वि० सं० १६२० में बदनोर का परगना फिर राव जयमलजी को प्रदान किया गया तब से अभी तक यह प्रान्त उन्हीं के वंशजों के अधिकार में चला आता है।

बदनोर पर राव जयमलजी का अधिकार

प्राचीन काल में इस स्थान पर शासन करनेवाले सोलङ्की, पंवार तथा चौहानवंशी जागीरदार या भोमिये तो अब इस परगने में नहीं हैं, परन्तु यहां के प्राचीन निवासी मेर लोग, जो प्रायः कृषि का व्यवसाय करते हैं, आसपास के सभी ग्रामों में आबाद हैं।

तीसरा प्रकरण

राठोड़-वंश का प्राचीन इतिहास

राठोड़ शब्द केवल भाषा में प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों में बहुधा इसके स्थान में राष्ट्रकूट शब्द मिलता है। प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्टऊड' होता है, जिससे 'राठऊड' या 'राठोड़' शब्द बनता है, जैसे चित्रकूट का 'चित्तऊड' और उससे 'चित्तोड़' बनता है।

राठोड़ शब्द की उत्पत्ति

मेवाड़ राज्य के घोसुंडी गाँव की बावड़ी में विक्रम संवत् १५६१ (ई० स० १५०४) का एक शिलालेख लगा है। यह बावड़ी मेवाड़ के महाराणा राय-मलजी की राणी शृंगारदेवी की बनवाई हुई है। शृंगारदेवी के मारवाड़ के राठोड़ नरेश राव जोधाजी की पुत्री होने के कारण उक्त शिलालेख में मारवाड़ के अधिपति राव रिड़मलजी और राव जोधाजी का भी वर्णन है। उसमें राष्ट्रकूट शब्द के स्थान में 'राष्ट्रवर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। राष्ट्रवर्य और राष्ट्रकूट इन दोनों शब्दों का अर्थ एक है। राष्ट्रवर्य शब्द का प्राकृत रूप 'रट्ठवर' और उस पर से 'राठवड़,' 'राठवर,' 'राठउर,' 'राठउड,' 'राठोर' और 'राठोड़' शब्द बनते हैं।

मारवाड़ में नाडोल गाँव के महाजन पंचों के पास चौहान राजा कीर्त्ति-पाल (कीतू) का ताम्रपत्र वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का है। उसमें कीर्तिपाल के पिता आल्हण के वर्णन में लिखा है—'इस राजा ने राष्ट्रोड वंश के सहुल की पुत्री अन्नलदेवी से विवाह किया था' (अनेन राज्ञा जनविश्रुतेन राष्ट्रोडवंशजवरा सहुलस्य पुत्री। अन्नल्लदेविरिति शीलविवेकयुक्ता रामेण वै जनकजेव विवाहितासौ)। यहां पर राष्ट्रोड शब्द लिखा है, जो राठोड़ शब्द से अधिक मिलता हुआ है, परन्तु यह शुद्ध संस्कृत रूप नहीं है। यह 'राष्ट्र' और 'ऊड' इन दो शब्दों के मिलने से बना है, जिनमें 'राष्ट्र' तो शुद्ध संस्कृत रूप का है और 'ऊड' प्राकृत रूप का, जिसका संस्कृत रूप 'कूट' है। इस वास्ते 'राष्ट्रोड'

शब्द भी 'राष्ट्रकूट' शब्द का अर्द्ध प्राकृत रूप है। इस प्रकार 'राष्ट्रकूट' और 'राष्ट्रवर्य' इन दो शब्दों से राठोड़ शब्द बन सकता है। राष्ट्रवर्य पाठ केवल घोसुंडी की प्रशस्ति में मिलता है और 'राष्ट्रकूट' शब्द संयुक्त प्रांत, बंगाल, राजपूताना, मालवा, गुजरात, मध्यप्रदेश और दक्षिण के शिलालेखों, ताम्रपत्रों, संस्कृत पुस्तकों तथा १७ वीं शताब्दी तक की राठोड़ों की जन्मपत्रियों में मिलता है। इस वास्ते सर्वत्र प्रचलित 'राष्ट्रकूट' शब्द से ही 'राठोड़' शब्द का निकलना सिद्ध होता है।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है 'राठोड़' शब्द संस्कृत 'राष्ट्रकूट' शब्द से बना है। 'राष्ट्रकूट' शब्द 'राष्ट्र' और 'कूट' इन दोनों शब्दों के मिलने से बना है। कोशों में राष्ट्र शब्द के अर्थ 'देश' और 'राज्य' मिलते हैं, किन्तु प्राचीन लेखों और ताम्रपत्रों से पाया जाता है कि 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रिक' एक क्षत्रिय वंश या जाति का भी नाम था, जिसका राज्य भारतवर्ष में बहुत पुराने समय से चला आता है। वि० सं० से २०० वर्ष पहले पाटलीपुत्र के मौर्यवंशी महाराज अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उस समय दक्षिण में 'राष्ट्रिक' वंशी क्षत्रियों का राज्य था। इनके अतिरिक्त 'रट्ठि', 'रट्ठि', 'राठि', 'रठि', 'राठ' आदि जातिवाचक शब्द जो प्राकृत लेखों और भाषा में पाये जाते हैं वे सब 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रिक' शब्द के प्राकृत रूप हैं। जैसे भोजवंशी राजा अपना बड़प्पन जतलाने के वास्ते पीछे से अपने को 'महाभोज' लिखने लगे वैसे ही दक्षिण में जाने के बाद ये राष्ट्र-वंशी राजा अपने को 'महाराष्ट्र' या 'महाराष्ट्रिक' लिखने लगे, जिसका प्राकृत रूप 'महारठि' दक्षिण में भाजा, बेडसा, कार्ली और नानाघाट की प्रसिद्ध गुफाओं में खुदे हुए प्राकृत लेखों में पाया जाता है।

राठोड़ शब्द का अर्थ

देशों के नाम बहुधा उनमें बसनेवाली या उनपर अधिकार जमाने-वाली जातियों के नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं, जैसे कि मालव जाति से अवन्ति देश 'मालव' कहलाया, गुर्जर जाति के कारण लाट, सुराष्ट्र आदि देशों का गुज-रात नाम पड़ा, वैसे ही सुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़) 'लाट' (नर्मदा और माही नदी के बीच का देश) और 'राठा' (गुजरात के ऊपर का सेंदूल

इंडिया का वह हिस्सा, जिसमें अलीराजपुर, झाबुआ वग़ैरह रियासतें हैं), देशों के नाम इस राष्ट्र (भाषा में राठ) जाति के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

इस वास्ते 'राष्ट्र' यह 'देश' और 'राज्य' शब्दों का पर्याय शब्द होने के अतिरिक्त एक क्षत्रिय जाति का नाम भी अवश्य था। राष्ट्रकूट शब्द का दूसरा हिस्सा 'कूट' है, जिसका अर्थ 'शिखर', 'उन्नत', 'उत्तम' या 'मुख्य' है। इस वास्ते 'राष्ट्रकूट' शब्द का अर्थ 'राष्ट्रवंशियों में मुख्य' या 'राष्ट्रवंशियों के अग्रणी' है। पीछे से इसी वंश का नाम 'राष्ट्रकूट वंश' (भाषा में राठोड़ वंश) हो गया और इस वंश का हरएक पुरुष अपने को 'राष्ट्रकूट' (भाषा में राठोड़) कहने लगा, लेकिन वास्तव में इस वंश का नाम 'राष्ट्र' (भाषा में 'राठ' या 'रट्ट') था और इस वंश के बड़े राजा ही अपने को 'राष्ट्रकूट' लिखते थे। दक्षिण के राठोड़ों के ताम्रपत्रों में 'रट्टवंश' 'रट्टराज्य' आदि असली रट्ट नाम बतलानेवाले शब्द बहुतसे स्थलों में मिलते हैं। 'राष्ट्रवर्य' शब्द 'राष्ट्रकूट' का पर्याय ही है और उसका अर्थ 'राष्ट्रवंशियों में श्रेष्ठ' है।

राठोड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसा भी प्रसिद्ध है कि 'राष्ट्रश्येना' देवी का उपासक एक क्षत्रिय वंश 'राष्ट्रश्येनीय' कहलाया। 'राष्ट्रश्येनीय' का संक्षिप्त रूप 'राष्ट्र' हुआ है। अतएव 'राष्ट्र' उक्त देवी के उपासक वंश का नाम था, जिसपर से राठोड़ शब्द बना है। राष्ट्रश्येना देवी की उत्पत्ति 'एकलिंगमाहात्म्य' के ग्यारहवें अध्याय में इस तरह दी है—

राठोड़ नाम की उत्पत्ति के विषय की दंतकथा

विन्ध्यवासा देवी ने अपने शरीर से राष्ट्रश्येना देवी को उत्पन्नकर उसे आज्ञा दी कि श्येन (बाज) का रूप धारणकर मेवाड़ की रक्षा करना।

स्वदेहाद्राष्ट्रश्येनां तां सृष्ट्वा स्थाप्याथ तत्र सा॥ १५॥ श्येनारूपं सम्यगास्थाय देवि राष्ट्रं प्राहि चाहतो वज्रहस्ता॥ १६॥ दुष्टग्रहेभ्योऽन्यतमेभ्य एवं श्येने त्राणं मेदपाटस्य कार्यं॥ १७॥ राष्ट्रश्येनेति नाम्नीयं मेदपाटस्य रक्षणं करोति न च भंगोस्य यवनेभ्यो मनागपि॥ २२॥

राष्ट्रश्येना देवी का मन्दिर मेवाड़ में एकलिंगजी के मन्दिर से डेढ़ कोस के अन्तर पर एक पहाड़ी की चोटी पर बना है। राठोड़ों के राष्ट्रश्येना

देवी के उपासक होने के प्रमाण भी मिलते हैं और वहां पर यह प्रसिद्ध है कि यह राठोड़ों की कुलदेवी है। प्राय: राठोड़ राज्यों के राज्यचिह्नों में 'बाज' पक्षी बने हैं। राष्ट्रश्येना की उत्पत्ति और नाम में इस देवी का रूप 'बाज' माना है, परन्तु राठोड़ों ने बाज के प्रतिनिधि चील को देवी का रूप माना है। आज तक राठोड़ों के जितने ताम्रपत्र मिले हैं उनमें सबसे पुराना ताम्रपत्र राजा अभिमन्यु का है। उसकी लिपि वि० सं० ५०० के आसपास की है, उसपर जो राजमुद्रा (मुहर) खुदी है उसमें देवी के वाहन शेर की मूर्ति बनी है, जिससे भी राठोड़ों का देवी-उपासक होना सिद्ध होता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जाचुका है राष्ट्रकूट राजाओं के सबसे पहले के अभिमन्यु के ताम्रपत्र में भगवती अम्बिका के वाहन सिंह की आकृति बनी है, परन्तु पीछे के ताम्रपत्रों में गरुड़ की मूर्ति पाई गई है। फरड़ा से मिले हुए कर्कराज (द्वितीय) के ताम्रपत्र में गरुड़ की जगह 'वृष' का चिह्न उपलब्ध होता है। इनके निशान में गंगा और यमुना के चिह्न बने रहते थे। सम्भवत: ये चिह्न इन्होंने बादामी के पश्चिमी चालुक्यों के अनुकरण में धारण किये हों। इनकी कुलदेवी लातना, मनसा, विन्ध्यवासिनी या राष्ट्रश्येना के नाम से प्रसिद्ध है। राष्ट्रकूटों के राज्यचिह्नों पर विचार करने से यह अनुमान होता है कि इस वंश के राजा यथासमय शाक्त, वैष्णव और शैव सम्प्रदायों के अनुयायी रहे थे। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजाओं के समय में पौराणिक मत की भी बहुत उन्नति हुई और शिव एवं विष्णु के बहुतसे मन्दिर इन्होंने निर्माण कराये। इनसे पहले पहाड़ों को काटकर जितनी गुफायें बनाई गई थीं वे बहुधा बौद्ध और जैन संप्रदायों ही की थीं। इन्हीं के समय में सबसे पहले इलोरा की गुफ़ा के कैलासभवन आदि सनातनधर्म के मन्दिर निर्माण कराये गये।

राष्ट्रकूटों का धर्म

राष्ट्रकूट क्षत्रिय सूर्यवंशी हैं। बदायूं के राष्ट्रकूट राजा लखनपाल के समय का जो लेख वहां से मिला है उसमें दी हुई वंशावली में प्रथम नाम चन्द्र का है, उसमें लिखा है कि पांचाल देश को भूषित करनेवाली वोदामयूता (बदायूं) नगरी का पहला राजा चन्द्र हुआ।

राष्ट्रकूटों का वंश

वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का कन्नौज के प्रसिद्ध महाराज जयचन्द्रजी के पुत्र हरिश्चन्द्र का जो ताम्रपत्र मिला है उसमें चन्द्रदेव को पांचाल देश का विजेता लिखा है। उपर्युक्त दोनों लेखों के समय और पांचाल देश की विजय पर विचार करने से स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि बदायूं के लेखवाला चन्द्र और कन्नौज के लेखवाला चन्द्रदेव दोनों एक ही थे और उसीसे कन्नौज और बदायूं की शाखाओं का प्रारम्भ हुआ। चन्द्रदेव का बड़ा पुत्र मदनपाल कन्नौज राज्य का अधिकारी हुआ और छोटे पुत्र विग्रहपाल ने बदायूं की जागीर प्राप्त की। इससे गहरवारों का राष्ट्रकूटवंश की ही एक शाखा में होना सिद्ध होता है। कन्नौज के गहरवार राजाओं के लेखों में उनको सूर्यवंशी लिखा है। इससे राठोड़ों का भी सूर्यवंशी होना भली प्रकार सिद्ध है।

गहरवारों के राष्ट्रकूट वंश के अन्तर्गत होने के अन्य भी अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह निर्विवाद प्रमाणित है कि गहरवार और राठोड़ दोनों एक ही वंश के शाखापरत्व भिन्न भिन्न नाम हैं जैसे कि चौहान, हाड़ा, खीची, देवड़ा, सोनिगरा तथा गुहिलोत और सीसोदिया। इनमें से कुछ प्रमाण संक्षेप से नीचे लिखे जाते हैं—

वि० सं० ११०७ (ई० स० १०५०) का लाट देश (गुजरात) के त्रिलोचनपाल के ताम्रपत्र में यह श्लोक लिखा है—

> कान्यकुब्जे महाराज राष्ट्रकूटस्य कन्यकाम्।
> लब्ध्वा सुखाय तस्यां त्वं चौलुक्याप्नुहि सन्ततिम्॥

अर्थात् हे चौलुक्य तुम कन्नौज के राष्ट्रकूट राजा की कन्या से विवाह कर सन्तति प्राप्त करो। इससे स्पष्टतः प्रमाणित है कि कन्नौज के गहरवार राष्ट्रकूटों की ही एक शाखा समझे जाते थे, क्योंकि अन्य किसी राठोड़ वंश का वहां राज्य करना पाया नहीं जाता।

वि० सं० की तेरहवीं शताब्दी में कश्मीर के पंडित कल्हण ने राजतरंगिणी नामक कश्मीर का इतिहास लिखा, जिसके सातवें तरंग में लिखा है—

> प्रख्यापयन्तः सम्भूतिं षट्त्रिंशति कुलेषु ये।
> तेजस्विनो भास्वतोऽपि सहन्ते नोधर्कैः स्थितिम्॥

इससे ज्ञात होता है कि उस समय क्षत्रियों के ३६ प्रसिद्ध वंश माने जाते थे, परन्तु कुमारपालचरित्र और पृथ्वीराजरासो आदि पुस्तकों में इन ३६ वंशों की जो नामावलियां दी गई हैं उनमें गहरवारों का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इससे यह स्पष्टतः प्रमाणित है कि उस समय गहरवार राष्ट्रकूटों के ही अन्तर्गत समझे जाते थे। इसीसे इनका पृथक् उल्लेख नहीं किया गया।

उत्तरी हिन्दुस्तान में आज भी जो गहरवार हैं, वे अपने को राठोड़ बतलाते हैं, केवल इतना ही नहीं, किन्तु राठोड़ों में विवाह भी नहीं करते। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि गहरवार राष्ट्रकूटों की ही एक शाखा है।

कितने ही विद्वान् राष्ट्रकूटों और गहरवारों के भिन्न भिन्न होने के सम्बन्ध में यह युक्ति उपस्थित करते हैं कि राष्ट्रकूटों और गहरवारों के गोत्र भिन्न भिन्न हैं। राष्ट्रकूटों का गोत्र गौतम और गहरवारों का काश्यप है। यदि ये दोनों एक ही वंश के होते तो इनका गोत्र भी एक ही होता, परन्तु यह युक्ति चल नहीं सकती, क्योंकि जैसा कि विज्ञानेश्वर ने लिखा है-'राजपूतों का गोत्र उनके पुरोहित के गोत्र के अनुसार होता है'। अतः सम्भव है कि कन्नौज की तरफ आने पर राष्ट्रकूटों के पुराने पुरोहित छूट गये हों और उन्होंने दूसरे पुरोहित बना लिये हों, जिससे उनका गोत्र गौतम के स्थान में काश्यप हो गया हो और मारवाड़ में आने पर उन्होंने गौतम गोत्र धारण कर लिया हो। कुछ विद्वान् गहरवालों को उच्च वंश के क्षत्रिय नहीं बतलाकर उनका राष्ट्रकूटों से भिन्न होना सिद्ध करते हैं, परन्तु इस कल्पना का भी कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्युत ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे गहरवारों का बड़े उच्च कुल के क्षत्रिय होना सिद्ध होता है।

कन्नौज के गहरवारवंशी युवराज गोविन्दचन्द्र का वि० सं० ११६६ (ई० स० ११०९) का एक लेख मिला है, जिसका भावार्थ यह है कि सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं के नष्ट हो जाने पर जब वैदिकधर्म का लोप होने लगा तब वैदिकधर्म और क्षत्रियवंशों का उद्धार करने के लिए गाहड़वाल वंश में चन्द्रदेव राजा के नाम से स्वयं ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया[1]। इससे सिद्ध होता है कि गहरवार वंश बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

(१) अस्तरते सूर्यसोमोद्भवविदितमहाक्षत्रवंशद्वये ऽस्मिन्

वि० सं० १६५० (ई० स० १५६३) का बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी का एक लेख मिला है, जिसमें मारवाड़ के राठोड़ों के मूलपुरुष राव सीहाजी को कन्नौज के परमप्रतापशाली महाराज जयचन्द्रजी का पौत्र लिखा है[1]। आईन-ए-अकबरी में भी राव सीहाजी को महाराज जयचन्द्रजी का वंशज लिखा है। इन सब प्रमाणों से गहड़वालों का राष्ट्रकूट वंश के अन्तर्गत होना भली प्रकार सिद्ध है।

मयूरगिरि के राजा नारायणशाह की सभा में रुद्र नाम का एक कवि था। उक्त राजा की आज्ञा से उस कवि ने शक सं० १५१८ (वि० सं० १६५३= ई० स० १५९६) में 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' नामक काव्य की रचना की। उसके पहले सर्ग में राष्ट्रकूट वंश की उत्पत्ति का जो वर्णन किया है, उससे भी राष्ट्रकूटों का सूर्यवंशी होना पूर्णतः सिद्ध है[2]।

उत्सन्नप्रायवेदध्वनिजगदखिलं मन्यमानः स्वयंभूः ।
कृत्वा देहमहाय श्रवणमिह मनः शुद्धबुद्धिर्धरित्र्याम्
उद्धर्तुं धर्ममार्गान् प्रथितमिह तथा क्षत्रवंशद्वयं च ॥
वंशे तत्र ततः स एव समभूद् भूपालचूडामणिः ।
प्रध्वस्तोद्धतवैरिवीरतिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः ॥

(१) तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत् ।
वरदायिसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः ॥
तदात्मजः सीतरामो रामभक्तिपरायणः ।
सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः ॥
राजा सीह इति ख्यातः शौर्यवीर्यसमन्वितः ।

राष्ट्रकूट क्षत्रिय अयोध्या के मर्यादापुरुषोत्तम महाराजा रामचन्द्रजी के पुत्र कुश की सन्तान हैं। क्षत्रियों के ३६ राजवंशों में राठोड़ वंश अति प्राचीन राजवंश है। इस वंश का नाम ईसामसीह से लगभग ३०० वर्ष पहले मौर्यवंशी सम्राट् अशोक के शिलालेखों में भी मिलता है। इन लेखों में इस वंश के 'रिस्टिक' 'रठिक' और 'लठिक' नाम मिलते हैं, जो 'राष्ट्रिक' शब्द के प्राकृत रूप हैं।

दक्षिण में राठोड़ों का राज्य

अशोक के समय से वि० सं० की पांचवीं शताब्दी तक इस वंश के इतिहास का कुछ पता नहीं चलता। वि० सं० की छठी शताब्दी के आसपास के अभिमन्यु नामक इस वंश के एक राजा के ताम्रपत्र से राठोड़ वंश के चार राजाओं—मानांक, देवराज, भविष्य और अभिमन्यु के नाम ज्ञात होते हैं। अभिमन्यु मानपुर में रहता था। मानपुर कदाचित् मान्यखेट का दूसरा नाम हो, जो दक्षिण के राठोड़ों की राजधानी थी।

दक्षिण में कलाड़गी प्रान्त के येवूर गाँव के पास सोमेश्वर के मन्दिर में लगे हुए चालुक्य (सोलंकी) राजाओं की वंशावलीवाले एक लेख में और सदर्न मरहटा प्रदेश के मीरज स्थान से मिले हुए ताम्रपत्र में उक्त वंश के राजा जयसिंह पहले के बाबत लिखा है—'उसने राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र इन्द्र को, जो अपनी सेना में ८०० हाथी रखता था, जीता और दूसरे ५०० राजाओं को बरबाद कर चालुक्य वंश की राजलक्ष्मी पीछी हासिल की'।[1] चालुक्य राजाओं के लेख और ताम्रपत्रों से पाया जाता है कि जयसिंह पहले के राज्य का प्रारंभ वि० सं० ५५० (ई० स० ४९३) के आसपास हुआ। अतएव राठोड़ों के विपक्षी चालुक्यों के लिखने से भी यह ज्ञात होता है कि वि० सं० ५५० के आसपास दक्षिण में राठोड़ों का राज्य बहुत प्रबल था, क्योंकि अपनी सेना में ८०० हाथी रखना सामान्य राजा का काम नहीं हो सकता। इस प्रकार वि० सं० ६५० (ई० स० ५९३) के पहले का राठोड़ वंश का इतिहास टूटा फूटा मिलता है, परन्तु

---

(१) यो राष्ट्रकूटकुलमिन्द्र इति प्रसिद्धं कृष्णाह्वयस्य सुतमष्टशतेभसैन्यं ।
निर्जित्य दग्धनृपपंचशतो बभार भूयश्चलुक्यकुलवल्लभराजलक्ष्मीम् ॥

वि० सं० ६५० के आसपास से वि० सं० १०३० तक का इस वंश का इतिहास शृंखलाबद्ध मिलता है, जो संक्षेप से नीचे लिखा जाता है—

वि० सं० ६५० (ई० स० ५६३) के आसपास से वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के क़रीब अर्थात् ३८० वर्षों तक राष्ट्रकूट वंश का दक्षिण में राज्य रहा। इन ३८० वर्षों में इस वंश के १९ राजा हुए, जिनका वंशवृक्ष उनके समय के साथ आगे दिया गया है। ये राजा बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रकूट वंश का राज्य स्थापित होने से दक्षिणी भारत का पश्चिमी भाग महाराष्ट्र कहलाने लगा। उक्त नाम से ही आज तक यह प्रदेश विख्यात है।

वि० सं० ६५० के आसपास राष्ट्रकूट वंश का दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग पहला) नामक राजा दक्षिण में राज्य करता था। यह राठोड़ राजा कृष्ण के पुत्र इन्द्र का वंशज था। दन्तिवर्मा के पीछे इन्द्रराज और इसके अनन्तर गोविन्दराज राठोड़ राज्य का स्वामी हुआ। गोविन्दराज चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी (द्वितीय) का समकालीन था। गोविन्दराज के पीछे कर्कराज और तदनन्तर इन्द्रराज (द्वितीय) राजगद्दी पर बैठा। इन्द्रराज की स्त्री चालुक्य वंश की कन्या थी। इससे अनुमान होता है कि उन दिनों राष्ट्रकूटों और चालुक्यों में कोई विशेष झगड़ा नहीं था। इन्द्रराज (द्वितीय) के पश्चात् उसका पुत्र दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग दूसरा) राज्य का स्वामी हुआ। इसने वि० सं० ८०४ और ८१० (ई० स० ७४७ और ७५३) के बीच सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (दूसरे) के राज्य के उत्तरी भाग (वातापी) को जीतकर दक्षिण में फिर राठोड़ वंश के राज्य की स्थापना की।

दन्तिवर्मा बड़ा प्रतापी राजा था। इसने पश्चिमी चालुक्यवंशी राजा कीर्तिवर्मा को जीतकर 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' की उपाधियां धारण कीं और थोड़ीसी रथवाहिनी सेना लेकर कांची, केरल, चोल और पांड्य देश के राजाओं को तथा कन्नौज के राजा श्रीहर्ष को और वज्रट को जीतनेवाली कर्णाटक देश के सोलंकियों की बड़ी सेना को परास्त किया[1]। इसी प्रकार इसने कलिंग,

---

(१) *यो वल्लभं सपदि दंडलकेन जित्वा राजाधिराजपरमेश्वरतामुपैति ॥*

कोसल, श्रीशैल, मालव, लाट और टंक के राजाओं तथा शेषों (नागवंशियों) को अपने अधीन किया। उज्जैन में इसने बहुतसे स्वर्ण और रत्नों का दान किया। सोलंकियों के देश को जीतकर दन्तिवर्मा ने गुजरात का अधिकार अपने रिश्तेदार कर्कराज (दूसरे) को दे दिया । इसके नाम के आगे निम्नलिखित उपाधियां पाई जाती हैं—

महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, पृथ्वीवल्लभ, वल्लभ, खड्गावलोक, साहसतुंग आदि ।

वास्तव में 'वल्लभराज' पश्चिमी सोलंकियों की मुख्य उपाधि थी । उनको जीतकर राठोड़ों ने भी इसी उपाधि को धारण कर लिया; इसी से अरब लेखकों ने राठोड़ों के लिए 'बलहरा' शब्द का प्रयोग किया है, जो वल्लभराज का ही बिगड़ा हुआ रूप है । इन बातों से अच्छी तरह सिद्ध होता है कि दन्तिवर्मा बहुत ही शक्तिशाली राजा था और इसका राज्य गुजरात और मालवे से लेकर दक्षिण में रामेश्वर तक फैला हुआ था ।

दन्तिदुर्ग का उत्तराधिकारी उसका चचा कृष्णराज (*प्रथम*) हुआ । इसने चालुक्यों पर आक्रमण कर उनका अवशिष्ट राज्य भी अपने अधीन कर लिया[1] । दक्षिण हैदराबाद (निज़ाम राज्य) के एलापुर (इलोरा) की प्रसिद्ध गुफ़ा में कैलाशभवन नाम का जगद्विख्यात मन्दिर इसी ने निर्माण कराया था। कृष्णराज (प्रथम) का तीसरा उत्तराधिकारी गोविन्दराज (तृतीय) हुआ । इसने लाट देश (गुजरात) जीतकर अपने भाई को दे दिया और इसके पीछे मालव देश को जीता । मालव देश पर अधिकार कर यह दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक चला गया और काञ्ची के पल्लव राजा को अपने मातहत किया । इसके पीछे इसका पुत्र अमोघवर्ष (*प्रथम*) गद्दी पर बैठा । इसने अनु-

कांचीशकेरलनराधिपचोलपाण्ड्यश्रीहर्षवज्रटविभेदविधानदक्षम् ॥

कर्णाटकं बलमनन्तमजेयरत्यै(थ्यै)र्भृत्यैः कियद्भिरपि यः सहसा जिगाय ॥

(१) *यश्चालुक्यकुलादनूनविबुधभ्राताश्रयो वारिधे-*

र्लक्ष्मीम्मन्दरवत्सलीलमचिरादाकृष्टवान् वल्लभः ॥

मान ६२ वर्ष पर्यन्त राज्य किया। इसने मान्यखेट (मालखेड़) में अपनी राजधानी नियत की। यह जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय का बड़ा पोषक था। इसके समय में कृष्णा और गोदावरी नदियों के मध्यवर्ती वेंगी नामक प्रदेश के पूर्वी चालुक्य राजाओं से बराबर युद्ध होता रहा। अमोघवर्ष के समय का अरबी भाषा में सुलेमान नामक व्यापारी का लिखा हुआ 'सिलसिलेतुत्तवारीख़' नामक एक ग्रंथ है। उसमें इस राजा की संसार के चार बड़े बादशाहों में गणना की गई है। अमोघवर्ष के पीछे इस वंश में कृष्णराज (तृतीय) बड़ा पराक्रमी नरेश हुआ। इसने कई लड़ाइयां लड़ी थीं। उत्तर में इसका राज्य गंगा की सीमा को भी पार कर गया था। तक्कोल की लड़ाई में चोल के राजा राजादित्य को मारकर इसने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। चेदि देश में राजा सहस्रार्जुन को भी अपने मातहत बनाया। कृष्णराज (तृतीय) के अनन्तर उसका छोटा भाई खोट्टिग राज्य का स्वामी हुआ। इसके समय में राष्ट्रकूट वंश का बल कम होने लगा और वि० सं० १०२६ (ई० स० ६७२) में मालवा के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने इसको हराकर राजधानी मान्यखेट को लूटा। खोट्टिग[1] इसी युद्ध में काम आया। इसके बाद इसका भतीजा कर्कराज (दूसरा) राज्य का अधिकारी हुआ। परमारों के साथ युद्ध होने से राष्ट्रकूटों का बल शिथिल पड़ गया था, अतः मौक़ा पाकर वि० सं० १०३० (ई० स० ६७३) के आसपास चालुक्य-वंशी राजा तैलप (द्वितीय) ने कर्कराज पर चढ़ाई कर उसको परास्त कर दिया और अपने पूर्वजों के राज्य को पुनः प्राप्तकर कल्याणी में चालुक्य राज्य की स्थापना की। इसप्रकार दक्षिण में राठोड़ों का महाप्रतापी साम्राज्य नष्ट हो गया। इस वंश की कुछ शाखाएं गुजरात, मध्यप्रांत, मालवा, हथुंडी (मारवाड़ में), कन्नौज आदि की तरफ़ चली गई थीं और अनेक छोटे राज्य इन्होंने स्थापित कर लिये थे। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजाओं का राज्य उत्तर में गंगातट से भी आगे तक फैला हुआ था। इससे सम्भव है कि इसी वंश के किसी कुंवर को

(१) *स्वर्गमधिरूढे च ज्येष्ठे भ्रातरि श्रीकृष्णराजदेवे ।*

युवराजदेवदुहितरिकन्दुकदेव्याममोघवर्षनृपाज्जातः खोट्टिगदेवो नृपतिरभूद्भुवनविख्यातः।

गंगातट की तरफ़ का कोई प्रदेश जागीर में दिया गया हो और उसी के वंश में कन्नौज राज्य को जीतनेवाले चन्द्रदेव उत्पन्न हुए हों।

दक्षिण के राष्ट्रकूटों का वंश-वृक्ष

नीचे के वंश-वृक्ष में राजाओं का क्रम १, २, ३ आदि अंक लगाकर बतलाया गया है। हरएक राजा के जितने नाम या ख़िताब मिले वे सब नाम के साथ लिख दिये गये हैं और नाम के आगे संवत् के जो अंक लगाये गये हैं, वे इन उन राजाओं के लेख या ताम्रपत्रों से या उनके सामंतों के लेखों से, जिनमें कि इनका नाम और संवत् दर्ज है, या उनके समय के बने हुए पुस्तकों से लिये गये हैं।

(वंश-वृक्ष अगले पृष्ठ में देखिये)

१ दंतिवर्मा
|
२ इंद्रराज
|
३ गोविंदराज
|
४ { कर्कराज / कक्कराज }

- ५ इंद्रराज (दूसरा)
  - ६ { दंतिदुर्ग / दंतिवर्मा / वैरमेघ, वल्लभ } श० सं० ६७५ (वि० सं० ८१०)
- ७ कृष्णराज, शुभतुंग, अकालवर्ष, कन्नेश्वर
  - ८ { गोविंदराज (दूसरा) / अकालवर्ष, वल्लभ }
  - ९ { ध्रुवराज / धोर / निरूपम / कलिवल्लभ / धारावर्ष }
    - १० { गोविंदराज (तीसरा) / प्रभूतवर्ष / जगत्तुंग / जगद्रुद्र } श० सं० ७१६, ७२६, ७३०, (वि० सं० ८५१, ८६१, ८६५)
      - ११ { शर्व / दुर्लभ / अमोघवर्ष / स्कंद / वीरनारायण / नृपतुंग, वल्लभ } श० सं० ७३७, ७५६, ७७३, ७८८, ७९९ (वि० सं० ८७२, ८९४, ९०८, ९२३, ९३४)
        - १२ { कृष्णराज (दूसरा) / अकालवर्ष / कम्भर } श० सं० ७९७, ८२०, ८२४, ८३३ (वि० सं० ९३२, ९५५, ९५९, ९६८)
          - जगत्तुंग
    - इंद्रराज गुजरात का राजा हुआ

जगत्तुंग

१३ इंद्रराज (तीसरा)
नित्यवर्ष श०.सं० ८३६, ८३८
रट्टकंदर्प (वि० सं० ९७१, ९७३)
कीर्तिनारायण

१६ वद्दिग
अमोघवर्ष (तीसरा)

१४ अमोघवर्ष (दूसरा)

१५ गोविंदराज (चौथा)
साहसांक श० सं० ८४१, ८५१, ८५५
सुवर्णवर्ष (वि० सं० ९७६, ९८६, ९९०)

१७ कृष्णराज (तीसरा)
अकालवर्ष
श० सं० ८६२, ८६७, ८७३, ८७८, ८८१
(वि०सं०९९७,१००२,१००८,१०१३,१०१६)

जगत्तुंग

१८ खोट्टिग
नित्यवर्ष
श० सं० ८९३
(वि०सं० १०२८)

निरूपम

१९ कर्कराज
कक्कल
अमोघवर्ष (चौथा)
श० सं० ८९४, ८९५
(वि०सं०१०२९,१०३०)

कन्नौज के राठोड़

कन्नौज के राठोड़ों का वंशवृक्ष उनके ताम्रपत्रों से नीचे अनुसार है—

१ यशोविग्रह
|
२ महीचन्द्र
|
३ चन्द्रदेव
|
४ मदनपाल
|
५ गोविन्दचन्द्र
|
६ विजयचन्द्र
|
७ जयचन्द्र
|
८ हरिश्चन्द्र कुंवर

कन्नौज के ताम्रपत्रों में यशोविग्रह से वंशावली मिलती है। उनमें लिखा है कि अनेक सूर्यवंशी राजाओं के स्वर्ग में चले जाने के बाद साक्षात् सूर्य के समान तेजस्वी और उदार यशोविग्रह नाम का राजा हुआ। यशोविग्रह का पुत्र यशस्वी महीचन्द्र हुआ[1]। यशोविग्रह और महीचन्द्र कन्नौज के राज्य-सिंहासन पर कभी नहीं बैठे। महीचन्द्र के पुत्र चन्द्रदेव ने ही अपने बाहुबल से पड़िहारों से कन्नौज छीनकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। इस प्रकार कन्नौज के प्रथम अधिपति चन्द्रदेव ही हुए।

यशोविग्रह और महीचंद्र

वि० सं० ११४४ के ताम्रपत्र में लिखा है—'चन्द्रदेव ने दुश्मनों के देश पर हमला कर उद्धत और वीर प्रतिपक्षी योद्धाओं को मारा और अपने बाहुबल से गाधिपुर (कन्नौज) का अपूर्व राज्य पाकर अपने प्रताप से प्रजा के सब उपद्रव मिटाये। काशी, कुशिक, उत्तरकोसल और इन्द्रस्थान तीर्थों की रक्षा की तथा स्वर्ण की अनेक तुलाएं कर ब्राह्मणों को स्वर्ण का खूब दान दिया[2]। बसाई से मिले हुए ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि राजा भोज और राजा कर्ण के मरने से उत्पन्न हुई अराजकता को दमन कर महाप्रतापी चन्द्रदेव ने

चंद्रदेव

(१) आसीदशीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमालासु दिवंगतासु ।
साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥
तत्सुतोभूत्महीचन्द्रः..............

कन्नौज के हरिश्चन्द्रदेव का वि० सं० १२५३ का मछलीशहर का दानपत्र-एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द १०, संख्या २१ (ई० स० १९०९–१०) पृष्ठ ९३–१००।

(२) तस्याभूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो
विध्वस्तोद्धतवीरयोधतिमिरः श्रीचंद्रदेवो नृपः ।
येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं
श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितं ॥
तीर्थानि काशिकुशिकोत्तरकोसलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयिताधिगम्य ।
हेमात्मतुल्यमनिशं ददता द्विजेभ्यः............

(हरिश्चन्द का दानपत्र)

कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित किया[1]। इनके अधिकार में काशी, इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या और पांचाल देश थे। काशी में आदिकेशव नाम का विष्णु-मन्दिर इन्होंने बनवाया था। इन्होंने कन्नौज को तुरुष्कों के दंड से मुक्त किया था। इनके पुत्र मदनपाल इनके उत्तराधिकारी हुए।

मदनपाल

मदनपाल की योग्यता के कारण इनके पिता चन्द्रदेव ने अपनी जीवित अवस्था में ही इनको राज्य का कार्य सौंप दिया था। इन्होंने अनेक युद्धों में शत्रुओं को परास्त किया था[2]।

मदनपाल ने भी अपने पिता की तरह जीते जी ही राज्य का कार्य अपने पुत्र गोविंदचंद्र को सौंप दिया था।

गोविन्दचन्द्र

ये बड़े प्रतापी राजा हुए। इनके समय के अभी तक अनुमान चालीस ताम्रपत्र मिले हैं। काश्मीर के राजा जयसिंह के मंत्री अलङ्कार ने जो बड़ी भारी सभा की थी, उसमें गोविंदचंद्र ने सुहल नाम के पंडित को अपना दूत बनाकर भेजा था[3]। इन्होंने म्लेच्छों (तुर्कों) से अनेक युद्ध किये और चेदि तथा गोड देश को भी जीता। ताम्रपत्रों में इनकी एक उपाधि 'विविधविद्याविचारवाचस्पति' भी मिलती है, जिससे ज्ञात होता है कि ये भी बड़े विद्वान् तथा विद्वानों का सत्कार करनेवाले थे। इनके

---

(१) याते श्रीभोजभूपे विबुधवरवधू नेत्रसीमातिथित्वं
श्रीकर्णे कीर्तिशेषं गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने ॥
भर्तारं यं धरित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिह स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः ॥ ३ ॥

(बसाही का वि० सं० ११६१ का ताम्रपत्र)

(२) तस्यात्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्रः चूडा[illegible] विजयते निज गोत्रचन्द्रः।

(हरिश्चन्द्र के दानपत्र से)

(३) अन्यः स सुहलस्तेन ततोऽनन्यत पण्डितः।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुजः ॥

(श्रीकंठचरित, सर्ग २५, श्लोक १०२)

समय के बहुत से सोने के सिक्के भी मिलते हैं। ये कल्पवृक्ष के समान दानी थे और विद्वानों का बड़ा सम्मान करनेवाले थे। इनके एक मंत्री लक्ष्मीधर ने 'कल्पतरु' नामक एक ग्रंथ इनकी आज्ञा से बनाया। इनका स्वर्गवास वि० सं० १२११ (ई० स० ११५४) और १२२४ (ई० स० ११६७) के बीच कभी हुआ होगा।

विजयचन्द्र

गोविंदचन्द्र के पश्चात् कन्नौज के राज्यासन पर उनके ज्येष्ठ पुत्र विजयचन्द्र विराजमान हुए। विजयचन्द्र भी बड़े शक्तिसम्पन्न नरेश थे[1]। इनके ताम्रपत्र में इनके मुसलमानों पर विजय पाने का भी उल्लेख है। यह वैष्णव-धर्म के माननेवाले थे। इन्होंने अनेक विष्णु के मंदिर बनवाये। इनके उत्तराधिकारी इनके प्रसिद्ध पुत्र जयचन्द्रजी हुए। विजयचन्द्र का परलोकवास वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६८) के अन्त में अथवा १२२६ (ई० स० ११६६) के प्रारम्भ में कभी हुआ।

जयचन्द्र

ये विजयचन्द्रजी के पश्चात् कन्नौज के राज्यासन पर विराजमान हुए। जिस दिन ये पैदा हुए थे उसी दिन इनके दादा गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण देश पर विजय पाई थी। इसीसे इनका नाम जयचन्द्र रक्खा गया था। इनके समय के वि० सं० १२२६ से १२४३ (ई० स० ११८६) तक के अनेक ताम्रपत्र उपलब्ध होते हैं। उनसे विदित होता है कि दूर दूर के राजा लोग इनकी सेवा में उपस्थित रहते थे[2]। वि० सं० १२३२ के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि जयचन्द्रजी के हरिश्चन्द्र नाम का कुंवर हुआ, जिसका नामकरण संस्कार वि० सं० १२३२ भाद्रपद सुदि १३ रविवार (ई० स० ११७५

---

(१) *अजनि विजयचन्द्रोनामतस्मान्नरेन्द्रः सुरपतिरिवभूभृत्पक्षविच्छेददक्षः ।*

(हरिश्चन्द्र के दानपत्र से)

(२) *तस्माद(विजयचन्द्रात्)अद्भुतविक्रमादथ जयचन्द्राभिधानः पति-*
र्भूपानामवतीर्णएष भुवनोद्धाराय नारायणः..................
सेवन्ते यमुदम बन्धनभयध्वंसार्थिनः पार्थिवाः ।

(हरिश्चन्द्र के दानपत्र से)

ता० ३१ अगस्त) के दिन सम्पन्न किया। इस राजा के आश्रित श्रीहर्ष नामक प्रसिद्ध कवि ने नैषध नाम के महाकाव्य की रचना की। इस काव्य में श्रीहर्ष कवि ने जयचन्द्रजी का नाम न लिखकर अपने आश्रयदाता के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि "मुझे कन्नौज के राजा से दो बीड़े मिलते हैं और मेरे वास्ते वहां पर आसन बिछता है[1]", किन्तु वि० सं० १४०५ (ई० स० १३४८) में राजशेखरसूरी ने प्रबन्धकोश नामक अपने ग्रंथ में श्रीहर्ष को कन्नौज के आख़िरी हिन्दू राजा जयचन्द्रजी का राज-पंडित लिखा है। इन्होंने कालंजर के चन्देल राजा मदनवर्मदेव को परास्तकर उसके राज्य पर अपना अधिकार किया। जयचन्द्रजी अतुल प्रतापी और दानी नरेश थे। धार्मिक विषयों में इनके विचार बड़े उदार थे। धार्मिक द्वेष इनमें तनिक भी नहीं था। पृथ्वीराजरासे में लिखा है कि इन्होंने राजसूय यज्ञ किया था। इसमें अनेक राजाओं ने उपस्थित होकर महाराज जयचन्द्रजी की अधीनता स्वीकार की। महाराज जयचन्द्रजी का देहान्त वि० सं० १२५० (ई० स० ११६४) में शहाबुद्दीन ग़ोरी के साथ की लड़ाई में हुआ। इस लड़ाई का हाल हसननिज़ामी ने 'ताजुलमआसिर' नाम की किताब में इस तरह लिखा है-'हिजरी सन् ५८७ (वि० सं० १२४८) में सुलतान शहाबुद्दीन को अजमेर के राजा राय पिथोरा ने युद्ध में परास्त किया, परन्तु इसके दूसरे ही वर्ष सुलतान ग़ज़नी से चालीस हज़ार सवारों की बड़ी प्रबल सेना लेकर पृथ्वीराज से लड़ने के लिए आया। इस बार पृथ्वीराज परास्त हुआ और उसका भाई खांडेराव युद्धभूमि में मारा गया। पृथ्वीराज को सुलतान ने क़ैद कर लिया। इस युद्ध से एक वर्ष पीछे हि० स० ५८६ (वि० सं० १२५०) में सुलतान ने कन्नौज के हिन्दू राज्य को भी नष्ट करना चाहा। सुलतान पचास हज़ार सवार लेकर बनारस के राजा[2] से लड़ने के वास्ते आगे बढ़ा। बादशाह के हुक्म से कुतुबुद्दीन हबायक के दस हज़ार

---

(१) ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।

(नैषधीय चरित)

(२) मुसलमान लेखकों ने जयचन्द्रजी को बहुधा काशी का राजा लिखा है, संभवतः उन दिनों इनकी राजधानी काशी हो।

सवार लेकर आगे रवाना हुआ और हिन्दुओं के लश्कर को हराकर बादशाह के पास लौटा। उस वक्त अफ़सरों को इज्ज़त की पोशाकें बख्शी गईं। बनारस का राजा जयचन्द रेती के दानों की नाई गिनी न जासके ऐसी बड़ी सेना लेकर मुक़ाबला करने के लिए आगे बढ़ा। बनारस का राजा हाथी पर ऊंचे होदे में बैठा हुआ था। लड़ाई के समय तीर लगजाने से काम आगया और मुसलमानों को बेशुमार लूट हाथ लगी, जिसमें ३०० हाथी थे। बादशाह के लश्कर ने असनी के क़िले पर कब्ज़ा किया, जहां पर राजा का खज़ाना रक्खा हुआ था। वहां पर भी बहुत सी दौलत हाथ लगी।' तबक़ातेनासिरी में लिखा है कि "कुतुबुद्दीन और ईज़ुद्दीनहुसैन दोनों सेनापति सुलतान के साथ जयचन्द से लड़ने के लिए गये। जमना के किनारे चन्दावल नामक स्थान में दोनों सेनाओं का भयङ्कर संग्राम हुआ। जयचन्द युद्धभूमि में काम आया। उसका मृत शरीर लड़ाई के पश्चात् बहुत तलाश करने पर सोने के तारों से बंधे हुए उसके दांतों से पहचाना गया"। कोई इतिहासकार ऐसा भी वर्णन करते हैं कि शहाबुद्दीन गोरी से परास्त होने के कारण अत्यन्त खिन्न होकर गंगा में प्रवेशकर महाराज जयचन्द्रजी ने अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

प्रबन्धकोश में महाराज जयचन्द्रजी का हाल लिखा है उसका संक्षेप इस तरह है—'महाराज जयचन्द्रजी ने ७०० योजन पृथ्वी जीती। इनके मेघचन्द्र नाम का एक कुंवर हुआ। महाराज जयचन्द्र का प्रधान पद्माकर अणहिल्लपुर से सुहवादेवी नाम की एक सुन्दर स्त्री को अपने साथ लाया, जिसको महाराज जयचन्द्र ने अपनी पासवान बना ली। उसके भी एक लड़का हुआ। दोनों कुमारों के युवा होने पर महाराज जयचन्द्र ने अपने मंत्री विद्याधर से पूछा कि राज्य किस कुंवर को दिया जावे। मंत्री ने मेघचन्द्र को ही इस पद का हकदार बताया, इसपर सुहवादेवी रुष्ट हो गई और उसने तक्षशिला की तरफ अपने दूत भेजकर सुलतान गोरी को चढ़ा लाने का षड्यन्त्र किया। मंत्री विद्याधर को उसके गुप्तचरों द्वारा इस वृत्तान्त के विदित हो जाने से उसने राजा को भी सूचित कर दिया, परन्तु राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ, किन्तु

मंत्री का उल्टा अपमान किया। तब अत्यन्त दुखी होकर स्वामी से पहले ही मरना उचित समझ मंत्री गंगा में डूब मरा। कुछ ही दिनों बाद सुलतान भी आ पहुंचा। महाराज जयचन्द्र भी मुक़ाबले के लिए आगे बढ़े और युद्धभूमि में काम आये।'

महाराज जयचन्द्रजी का पुत्र हरिश्चन्द्र था। इसका जन्म वि० सं० १२३२ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी (ई० स० ११७५ ता० ११ अगस्त) को हुआ था और महाराज जयचन्द्रजी के स्वर्गारोहण के अनन्तर वि० सं० १२५० (ई० स० ११६३) में १८ वर्ष की अवस्था में यह कन्नौज की गद्दी पर बैठा।

हरिश्चन्द्र

बहुत से लोगों का अनुमान है कि महाराज जयचन्द्रजी की मृत्यु के उपरान्त कन्नौज पर मुसलमानों का अधिकार होगया, परन्तु उस समय की ताजुलमआसिर प्रभृति तवारीखों में शहाबुद्दीन आदि के जीते हुए प्रदेशों में कन्नौज का नाम नहीं है। इससे विदित होता है कि यद्यपि कन्नौज मुसलमानों द्वारा लूट लिया गया था, परन्तु जयचन्द्रजी की मृत्यु के पीछे ३३ वर्ष तक उन्हीं के वंशजों का अधिकार बना रहा। पहले पहल वि० सं० १२८३ के लगभग शम्सुद्दीन अल्तमश ने उक्त वंश के राज्य को नष्ट कर कन्नौज पर अपना अधिकार किया। कन्नौज के राज्य से वञ्चित हो जाने पर हरिश्चन्द्र और उसके वंशज महुई (फर्रुखाबाद ज़िले) में पहुंचे और वहां पर काली नदी के किनारे पर कुछ दिन रहे। हरिश्चन्द्र के ही दूसरे उपनाम हर्ष, प्रहस्त और वरदाईसेन मिलते हैं। इसका पुत्र सेतराम था। सेतराम के पुत्र सीहाजी वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) के क़रीब पहले पहल मारवाड़ की तरफ़ आये।

पांचाल देश की बदायूं नगरी में पहला राठोड़ राजा चन्द्र हुआ। उसके वंशजों की वंशावलीवाला एक शिलालेख बदायूं के पुराने क़िले के दक्षिणी दरवाज़े के पास के खंडहर से मिला है। यह शिलालेख ईशान शिव नाम के साधु के बनवाये हुए एक शिवमन्दिर में लगा हुआ था। उसमें वहां के राठोड़ों की वंशावली और हाल नीचे अनुसार है—

बदायूं के राठोड़
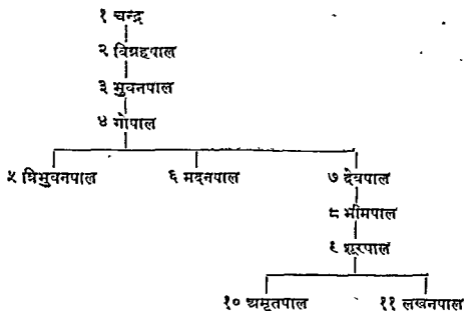
उक्त शिलालेख में लिखा है कि चन्द्र बदायूं का पहला राठोड़ राजा हुआ, उसने अपनी तलवार से सब शत्रुओं को भयभीत कर दिया था। चन्द्र का पुत्र दुश्मनों में प्रसिद्ध होनेवाला उदार विग्रहपाल हुआ। विग्रहपाल का पुत्र धर्म की मूर्ति के समान भुवनपाल हुआ और भुवनपाल का गोपाल हुआ। गोपाल का पुत्र दुश्मनों को दबानेवाला त्रिभुवनपाल हुआ। उसके बाद उसका छोटा भाई मदनपाल राजा हुआ। उसके पराक्रम से हमीर (सुलतान) गंगातट पर न आ सका। इससे ज्ञात होता है कि कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र और जयचन्द्र ने मुसलमान बादशाहों से जो लड़ाइयां लड़ीं उनमें से किसी में मदनपाल कन्नौज के राजाओं का सामन्त होने के कारण लड़ने को गया होगा।

मदनपाल के बाद उसका छोटा भाई देवपाल राजा हुआ, जो दुश्मनों को डरानेवाला, उदार और दयालु था। उसका पुत्र भीमपाल, भीमपाल का शूरपाल और शूरपाल का अमृतपाल हुआ। अमृतपाल के बाद उसका छोटा भाई लखणपाल राजा हुआ। बदायूं पर मुसलमानों का कब्ज़ा कुतुबुद्दीन ऐबक के वक्त में हुआ और वहां का पहला हाकिम शम्सुद्दीन अल्तमश हुआ था, जो पीछे से दिल्ली का बादशाह बना।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है महाराज जयचन्द्रजी के पौत्र सेतरामजी के पुत्र सीहाजी वि० सं० १२८३ के लगभग मारवाड़ की तरफ़ आये। ये द्वारिका जाने के विचार से इस प्रांत में आये। मार्ग में पुष्कर तीर्थ में इनकी भीनमाल (मारवाड़ में) के ब्राह्मणों से भेंट होगई।

मारवाड़ के राठोड़ राव सीहाजी

उन दिनों मुलतान के मुसलमान अक्सर भीनमाल पर हमला किया करते थे। सीहाजी को सेना सहित देखकर ब्राह्मणों ने इनसे सहायता की प्रार्थना की। सीहाजी ने भीनमाल जाकर मुसलमानों को हरा दिया और वह स्थान ब्राह्मणों को ही दे दिया[1]। इसके बाद सीहाजी द्वारिका गये। वहां से लौटते समय कुछ दिन गुजरात की राजधानी पाटन में ठहरे। पाटन से पाली गये। पाली नगर उन दिनों व्यापार का केन्द्र होने से बड़ा संपन्न था, फ़ारस अरब आदि पश्चिमी देशों का तिजारती सामान इसी नगर से होकर गुज़रता था। यहां भी आसपास के जंगलों में रहनेवाले मेर, मीणा आदि लुटेरी जातियों के लोग बहुत लूट मार किया करते थे अतएव यहां के निवासी पल्लीवाल ब्राह्मणों ने सीहाजी से सहायता की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर सीहाजी वहीं रहने लगे और लुटेरों को युद्ध में परास्त कर ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। शनैः शनैः आसपास के अनेक गाँवों पर राव सीहाजी ने अपना अधिकार कर लिया।

उन दिनों खेड़ पर गुहिल राजपूतों का अधिकार था। सीहाजी ने उनपर हमला किया, परन्तु जिस सयम सीहाजी उनसे युद्ध कर रहे थे कि पाली पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया। सीहाजी तत्काल पाली पहुंचकर मुसलमानों के साथ ऐसी वीरता से युद्ध किया कि वे व्याकुल होकर युद्ध से भाग छूटे। सीहाजी ने उनका पीछा किया, परन्तु बीठू नाम के गांव के पास पहुँचते पहुँचते मुसलमानों की नई सेना आ पहुँची इससे उनकी हिम्मत बहुत बढ़ गई और उन्होंने बड़े जोश के साथ वापिस फिर कर राठोड़ों की थकी हुई सेना पर हमला किया। दोनों तरफ से बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ, परन्तु मुसलमानों की

---

(१) भीनमाल लीधी भड़ै, सीह सेल बजाय ।
दत दीधी सत संग्रही, यो जस कदे न जाय ॥

ताज़ा आई हुई फ़ौज़ के सामने राठोड़ों की थकी हुई सेना कहां तक ठहर सकती थी। अन्त में विजय मुसलमानों की हुई। वीरवर राव सीहाजी इसी युद्ध में काम आये।

वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का एक लेख बीठू से मिला है, जो निम्न लिखित है—

१. श्रों ॥ सांवछ् १३३०
२. कार्तिक वदि १२ सोम-
३. वारे रठड़ा थी सेत
४. कवर सुनु सीहो दे-
५. वलोके गतः सो [लं]-
६. क पारवतिः तस्यार्थे दे-
७. वली स्थापिना [ता] कराधिय सुभं भवतुः।

इस लेख से प्रगट होता है कि राव सीहाजी के साथ इनकी रानी पार्वती सती हुई।

राव सीहाजी के तीन पुत्र थे। आस्थानजी, सोनगजी और अजजी।

राव सीहाजी के उत्तराधिकारी उनके ज्येष्ठ पुत्र राव आस्थानजी हुए। यह भी बड़े वीर और साहसी थे। इन्होंने खेड़ के गोहिल राजा को उसके परिवार सहित मारकर वहां अपनी राजधानी नियत की। इसके पीछे आस्थानजी ने ईडर पर हमला किया और वहां के भील राजा सामलिया सोढ़ को मारकर वहां का राज्य अपने भाई सोनगजी को दे दिया। वि० सं० १३४७ (ई० स० १२९०) में जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह खिलजी दिल्ली के तख्त पर बैठा। वि० सं० १३४८ में उसकी फ़ौज ने पाली पर हमला किया। इस वृत्तान्त को सुनकर आस्थानजी तुरन्त खेड़ से पाली पहुंचे और वहीं पर मुसलमानों से युद्ध कर काम आये। इनके ८ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ धूहड़जी थे, जो उनके उत्तराधिकारी हुए।

राव आस्थानजी

राव धूहड़जी ने करनाटक में जाकर वहां से अपनी कुलदेवी राष्ट्रश्येना को ले आये और नागाणा गांव में मन्दिर बनवाकर भगवती की स्थापना की।

राव धूहड़जी उक्त देवी को दक्षिण से लाने का सब से बड़ा प्रमाण उसका दक्षिणी ढंग का नाम "नागाणेची" है। देवी की स्थापना नागाणा गांव में ही हुई, जिससे उसके पुजारी जो दक्षिण से साथ आये थे उसको अपनी मातृभाषा के अनुसार "नागाणेची" (अर्थात् नागाणा गांव की) कहने लगे, क्योंकि जैसे हिन्दी भाषा के षष्ठी विभक्ति के प्रत्यय 'का' 'की' हैं वैसे दक्षिण भाषा में चा-ची हैं। पुजारियों के मुख से नागाणेची नाम सुनकर मारवाड़ के लोग देवी को 'नागणेची' कहने लगे। यह नाम आज तक चला आता है। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि मारवाड़ के राठोड़ दक्षिण के राष्ट्रकूटों के वंशज हैं।

धूहड़जी ने आसपास के अनेक गांवों को जीतकर अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया। इन्होंने मंडोर के पडिहारों पर भी हमला किया उनके साथ इनका तिरसींगड़ी गांव (मारवाड़ के पचभद्रा ज़िले में) के पास युद्ध हुआ। राव धूहड़जी इस युद्ध में काम आये। उसी गांव में इनकी यादगार में एक चबूतरा बनाया गया, जो अभी तक विद्यमान है। तिरसींगड़ी गांव में एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, जिससे धूहड़जी का वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०६) में काम आना प्रगट होता है। इनके ७ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ रायपालजी थे।

ये धूहड़जी के पीछे गद्दी पर बैठे। ये भी अपने पिता के समान बड़े वीर थे। गद्दी पर बैठने के पीछे पहले पहल अपने पिता का बदला लेने के लिये राव रायपालजी इन्होंने पडिहारों पर हमला कर उनकी राजधानी मंडोर को जीत लिया, परन्तु मंडोर पर थोड़े ही समय बाद पुनः पडिहारों का अधिकार हो गया। इसके पीछे इन्होंने पंवारों को पराजित कर उनसे बाडमेर छीन लिया। इनके १३ पुत्र हुए, जिनमें सब से बड़े कंनपालजी थे।

ये रायपालजी के पीछे गद्दी पर बैठे। इनके और जैसलमेर के भाटियों के परस्पर सीमा सम्बन्धी अनेक युद्ध हुए। इन युद्धों में कंनपालजी के बड़े राव कंनपालजी पुत्र भीम ने भाटियों को अनेक बार हराकर उनका बहुतसा प्रदेश जीत लिया और काक नदी को अपने और भाटियों के राज्य के बीच की सीमा बनाई[१]। अन्त में ये कुंवर भाटियों से युद्ध करते हुए ही काम आये। इसके

(१) आधी धरती भींव, आधी छोड़दयै भयी। काक नदी है सींव, राठोड़ा ने भाटियां॥

कुछ समय बाद मुसलमानों ने कंनपालजी के राज्य पर चढ़ाई की। उनसे युद्ध कर कंनपालजी मारे गये। इनके तीन पुत्र थे, जिनमें बड़े पुत्र भीम के कुंवरपदे में ही शांत हो जाने से दूसरे पुत्र जालणसीजी इनके उत्तराधिकारी हुए।

राव जालणसीजी

इन्होंने अमरकोट के सोढा राजपूतों और भीनमाल के सोलंकियों से अनेक युद्ध किये। मुलतान के हाकिम को परास्त कर उससे इन्होंने कर वसूल किया।

सराई जाति के हाजी मलिक ने इनके चाचा को मारा था इसलिए अपने चाचा की मृत्यु का बदला लेने के लिए इन्होंने पालनपुर पर हमला कर हाजी मलिक को मार डाला, इससे क्रुद्ध हो मुसलमानों ने प्रबल आक्रमण किया, जिनके साथ लड़कर जालणसीजी मारे गये। इनके तीन पुत्र हुए, जिनमें बड़े छाड़ाजी थे।

राव छाड़ाजी

ये जालणसीजी के पश्चात् गद्दी पर बैठे। इन्होंने अमरकोट के सोढा राजपूत दुर्जनसालजी को पराजित कर उनसे कर के रूप में घोड़े प्राप्त किये और जैसलमेर के भाटियों को चढ़ाई कर परास्त किया। भाटियों को अपनी एक कन्या को इनके साथ विवाह कर सुलह करनी पड़ी। इसके पीछे भीनमाल, जालोर, पाली और सोजत को लूटकर जब ये वापस आ रहे थे तब रमतियां गाँव में (मारवाड़ राज्य के जालोर परगने में) सोनिगरा चौहानों और सिरोही के देवड़ों ने मिलकर इनपर हमला किया। इसी युद्ध में सोनिगरों से लड़ते हुए छाड़ाजी काम आये।

इन्होंने वि० सं० १३८५ से १४०१ (ई० स० १३२८ से १३४४) तक राज्य किया। इनके सात पुत्र थे, जिनमें बड़े तीड़ाजी थे।

राव तीड़ाजी

इन्होंने गद्दी पर बैठते ही अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए सोनिगरों पर चढ़ाई की और उनको परास्त कर भीनमाल पर अपना अधिकार स्थापित किया। इसके पीछे तीड़ाजी ने देवड़ों, भाटियों, बालेचों और सोलङ्कियों से युद्ध कर उनको परास्त किया।

उन दिनों सिवाना नामक स्थान में तीड़ाजी का भानजा चौहान सातलसोम राज्य करता था। मुसलमानों ने सिवाने पर चढ़ाई की तब अपने भानजे

की सहायता के लिए तीड़ाजी भी गये और वहीं मुसलमानों से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए।

इनके तीन पुत्र थे। कान्हड़देवजी, त्रिभुवनसीजी और सलखाजी।

राव कान्हड़देवजी

ये तीड़ाजी के उत्तराधिकारी हुए। मुसलमानों ने इनकी राजधानी महेवा पर चढ़ाई की। यद्यपि कान्हड़देवजी ने बड़ी वीरता से युद्ध किया तो भी महेवा को मुसलमानों ने जीत लिया। इसके कुछ ही दिनों बाद इन्होंने खेड़ पर अधिकार कर लिया। इनके कोई पुत्र नहीं हुआ इसलिए इनके पीछे इनके छोटे भाई त्रिभुवनसीजी गद्दी पर बैठे।

राव त्रिभुवनसीजी

त्रिभुवनसीजी ने बहुत थोड़े काल राज्य किया, क्योंकि इनके छोटे भाई सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने मुसलमानों की सहायता से इनको मार डाला और राज्य पर स्वयं अधिकार कर लिया।

मल्लिनाथजी

मल्लिनाथजी बड़े वीर और पराक्रमी थे। इन्होंने मंडोर, सिरोही, मेवाड़ और सिंध के प्रदेशों में लूटमार मचाकर मुसलमानों को बहुत तंग करना शुरू किया। इसपर बादशाही फौज ने इनपर हमला किया। इस फौज में १३ दल थे, परन्तु मल्लिनाथजी ने ऐसे पराक्रम से युद्ध किया कि बादशाही फौज़ युद्ध-क्षेत्र से भाग निकली। मारवाड़ में इस सम्बन्ध में नीचे लिखा पद्य पद अबतक प्रसिद्ध है—

तेरह तुंगा भांगिया माले सलखाणी।

इसके बाद ये सालाड़ी गाँव में रहने लगे। यह गाँव जोधपुर से छः सात कोस पश्चिम में है। इस समाचार को सुनकर मालवे के सूबेदार ने इनपर आक्रमण किया, परन्तु उसको भी परास्त होकर लौटना पड़ा। मल्लिनाथजी ने मुसलमानों से सिवाना लेकर अपने भाई जैतमालजी को, खेड़ वीरमजी को और ओसियां पँवारों से छीनकर सोभितजी को जागीर में प्रदान की।

वि० सं० १४५६ (ई० स० १३९९) में राव मल्लिनाथजी का स्वर्गवास हुआ। मारवाड़ और बीकानेर में ये एक पहुँचे हुए सिद्ध माने जाते हैं। लूनी नदी के किनारे तिलवाड़ा गाँव में इनके नाम पर बना हुआ एक मंदिर अभी तक विद्यमान है। यहां हर साल चैत्र मास में बड़ा भारी मेला लगता है। इनकी रानी

का नाम रूपादे था। इनके आठ पुत्र हुए, जिनमें बड़े जगमालजी थे।

ये भी बड़े वीर और साहसी थे। इन्होंने मांडू के बादशाह को युद्ध में परास्त कर उसकी जींदोली नामक रूपवती पुत्री को छीन ली थी। इस

राव जगमालजी

युद्ध में जगमालजी के आक्रमण से घबराकर जब बादशाह जनाने महलों में भाग गया उस समय का यह कवित्त मारवाड़ में आज तक प्रसिद्ध है—

पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।
बीबी पूछे खान ने, जग केता जगमाल॥

जगमालजी ने अपने चाचा जैतमालजी से सिवाना छीन लेने की इच्छा से उनपर चढ़ाई कर उन्हें मारडाला, परन्तु सिवाने पर इनका अधिकार न हो सका। दल्ला जोइया को अपनी शरण में रखने के कारण अपने चाचा वीरमजी से भी जगमालजी अप्रसन्न हो गये थे। जगमालजी के १३ पुत्र थे। इनकी मृत्यु के उपरान्त खेड़ का राज्य इनके पुत्रों ने आपस में बाँट लिया। उधर वीरमजी के पुत्र चूंडाजी ने वि० सं० १४५१ के माघ मास (ई० स० १३९५ जनवरी) में मंडोर का राज्य स्थापित किया जैसा कि इस पद्य से प्रकट होता है—

मालारा मड्ढे ने वीरमरा गड्ढे।

ये सलखाजी के पुत्र और मल्लिनाथजी के छोटे भाई थे। मल्लिनाथजी ने इनको खेड गांव प्रदान किया था, परन्तु दल्ला जोइये को आश्रय देने के कारण

राव वीरमजी

जगमालजी से इनकी अनबन हो गई थी। इससे खेड़ छोड़कर ये जोइयों के यहां चले गये थे। जोइयों ने इनके उपकार को स्मरण कर इनका बड़ा आदर किया, परन्तु कुछ समय पश्चात् इनके और जोइयों के बीच भी बिगाड़ हो गया। वि० सं० १४४० (ई० स० १३८३) में लखवेरे गांव में जोइयों के साथ युद्ध करके इन्होंने वीर गति प्राप्त की।

ये वीरमजी के सब से छोटे पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के समय इन की अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। बाल्यावस्था के कारण इनको पिता के मारे-

राव चूंडाजी

जाने के बाद कालाऊ नामक गांव में आल्हा चारण के यहां

छिपकर रहना पड़ा[१]। इनके बड़े होने पर इनको मल्लिनाथजी ने सालोडी गांव का शासक नियत कर दिया था, परन्तु कुछ समय के बाद मल्लिनाथजी भी इनसे अप्रसन्न हो गये। इसके पीछे परिहार वंश की इन्दा शाखा के राजपूतों ने हमला कर मुसलमानों से मंडोवर का राज्य छीन लिया। उस अवसर पर चूंडाजी ने भी उनकी सहायता की थी। इसी से इन्दा शाखा के नरेश राणा उगमसी ने अपने मुखिया राय धवल की कन्या से चूंडाजी का विवाह कर दहेज में मंडोवर प्रदान कर दिया। इसी आशय का यह पद्य प्रसिद्ध है —

ईंदारो उपकार, कमधज कदे न वीसरै।
चूंडो चंवरी चाढ़, दियो मंडोवर डायजे ॥

जब यह समाचार गुजरात के सूबेदार जफरखां (प्रथम) को मिला, तब उसने हिजरी सन् ७९८ (वि० सं० १४५३=ई० स० १३९६) में मंडोर पर हमला किया और एक वर्ष से भी अधिक समय तक उसे घेरे रहा, परन्तु अंत में चूंडाजी के युद्ध कौशल के कारण उसको निराश होकर वापस जाना पड़ा। वि० सं० १४५५ (ई० स० १३९८) में तैमूरलंग के आक्रमण के कारण दिल्ली की बादशाहत बहुत कमज़ोर होगई थी अतः मौक़ा पाकर वि० सं० १४५६ में चूंडाजी ने नागोर पर आक्रमण किया और वहां के हाकिम खोखर को मारकर उक्त स्थान में अपनी राजधानी स्थापित की। इसी तरह धीरे धीरे डीडवाना, खाटू, सांभर, नाडोल और अजमेर पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया। इसके बाद अपने भाई जयसिंहजी को हराकर फलोधी पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। मोहिल और भाटियों के साथ चूंडाजी की शत्रुता थी। इसलिए जिस समय मुल्तान का नवाब खिज्रखां अजमेर में ज़ियारत के लिए आया तब भाटी और मोहिल उसको मदद देकर नागोर पर चढ़ा लाये। डूंकले गांव में बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें राव चूंडाजी बड़ी वीरता से लड़कर वि० सं० १४८० चैत्र शुक्ला तृतीया (ई० स० १४२३ ता० १५ मार्च) को पूंगल के राजा केलहण भाटी के हाथ से मारे गये। चूंडाजी के हंसबाई नाम की एक पुत्री थी, जिसका

(१) चूंडा थने न चीत, काचर कालाउ तना।
भूप भयो भैभीत, मंडोवर रे माळिये ॥

विवाह मेवाड़ के राणा लाखाजी के साथ हुआ था। हंसबाई राणा मोकलजी की माता थी, जो महाराणा लाखाजी के पश्चात् मेवाड़ की गद्दी पर बैठे।

इनके १७ पुत्र थे। इन्होंने मृत्यु समय अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमलजी से प्रतिज्ञा करवाली थी कि राज्य का अधिकार स्वयं ग्रहण न कर अपने छोटे भाई कान्हाजी को प्रदान करें।

ये चूंडाजी की इच्छानुसार उनके पीछे नागोर राज्य के अधिकारी हुए। इन्होंने जांगलू के सांखला राव पूर्णमल को परास्त कर उक्त देश पर पुनः अधिकार कर लिया। इसके बाद नागोर के आसपास के इलाक़ों को भी इन्होंने जीत लिया मगर इससे वहां के लोग मुसलमानों से मिल गये। मुसलमानों ने उपयुक्त अवसर देखकर नागोर पर अधिकार कर लिया। इस पर कान्हाजी मंडोर चले गये और वहीं इनका देहान्त हो गया।

राव कान्हाजी

कान्हाजी के पश्चात् उनके भाई सत्ताजी मंडोर के शासक हुए। ये शराब बहुत पीते थे, इसलिए राज्य का काम अपने भाई रणधीरजी को सौंप दिया था। सत्ताजी के पुत्र नरवदजी और रणधीरजी के बीच कुछ मनोमालिन्य हो गया। नरवदजी ने अपने पिता सत्ताजी को भी रणधीरजी से नाराज़ कर दिया। इसपर रणधीरजी अपने बड़े भाई रणमलजी के पास चले गये और उन्हें समझाया कि आपने पिता की आज्ञा से कान्हाजी के लिए राज्य छोड़ा था। सत्ताजी का राज्य पर कोई हक़ नहीं है। रणमलजी के भी दिल में यह बात जँच गई और उन्होंने महाराणा मोकलजी की सहायता से सत्ताजी को हटाकर मंडोर पर अधिकार कर लिया।

राव सत्ताजी

ये चूंडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४४९ वैशाख शुक्ला ४ (ई० स० १३९२ ता० २७ अप्रेल) को हुआ था। अपने पिता की आज्ञा के अनुसार मारवाड़ का राज्य अपने छोटे भाई कान्हाजी को देकर ये मेवाड़ की तरफ़ चले गये थे। महाराणा लाखाजी ने इन्हें ४० गांव जागीर में देकर बड़े आदर से अपने पास रक्खा। मेवाड़ की तरफ़ से गुजरात और मालवा के बादशाहों से इन्होंने अनेक युद्ध किये। श्रीएकलिंगजी के मंदिर में लगे हुए वि० सं० १४८५ के लेख से ज्ञात होता है कि इन्होंने मुसलमानों

राव रणमलजी

से अजमेर छीनकर वहां महाराणा मोकलजी का अधिकार करा दिया। वि० सं० १४८२ (ई० स० १४२५) में इन्होंने सोनिगरा चौहान रणधीर को मारकर नाडोल पर भी क़ब्जा कर लिया। इसके पश्चात् इन्होंने सिंधल राठोड़ों से बगड़ी तथा जैतारण और हूलों से सोजत भी छीन लिया। तदनन्तर रणधीरजी के कहने से इन्होंने मंडोर पर भी हमला किया और वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७) में अपने भाई सत्ताजी को निकालकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया।

महाराणा कुंभाजी के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के शिलालेख से प्रकट होता है कि इन्होंने वि० सं० १४८५ में नागोर विजय करने में महाराणा मोकलजी की सहायता की।

अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जैसलमेर पर भी अनेक आक्रमण कर रणमलजी ने उसे खूब लूटा। अंत में विवश हो रावल लक्ष्मणजी ने अपनी कन्या का इनके साथ विवाह कर इनसे सुलह कर ली। जालोर पर चढ़ाई कर उस स्थान को भी उन्होंने मलिक हसनख़ां नामक पठान शासक से छीन लिया।

वि० सं० १४९० (ई० स० १४३३) में गागरौन के खीची अचलाजी पर मांडू के बादशाह होसंग ने चढ़ाई की। यह ख़बर पाकर राव रणमलजी तुरन्त उनकी सहायता के लिए रवाना हुए, परन्तु मार्ग में ही उन्हें दासी-पुत्र चाचा और मेरा के हाथ से महाराणा मोकलजी के मारे जाने के शोकजनक समाचार विदित हुए। तदनन्तर ये तुरन्त ही मेवाड़ पहुंचे और अपने भानजे महाराणा कुंभाजी को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाकर उनका राजप्रबन्ध करने लगे। रणमलजी ने चाचा और मेरा को मारकर मोकलजी की मृत्यु का बदला ले लिया, परन्तु महपा पंवार, जो मोकलजी को मारने में शरीक था, स्त्री का वेष धारण कर गुप्त रीति से भाग निकला और मांडू के बादशाह महमूद खिलजी के पास चला गया। मोकलजी के बड़े भाई चूंडाजी के कहने से बादशाह ने उसे अपने यहां नौकर रख लिया। यह सुनकर रणमलजी ने महाराणा कुंभाजी को साथ लेकर मांडू पर हमला किया। तब महपा को मांडू के सुलतान महमूद ने

अपने यहां से निकाल दिया। फिर महपा गुजरात के बादशाह अहमदशाह के पास गया। सारंगपुर में बड़ा भारी युद्ध हुआ। अंत में विजय राव रणमलजी की हुई। इसप्रकार रणमलजी को मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध करते देख मेवाड़-वालों को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने महाराणा कुंभाजी को बहकाना शुरू किया कि मेवाड़ में राठोड़ों की शक्ति का अधिक बढ़ाना अच्छा नहीं है।

मेवाड़वालों की तरफ़ से बारंबार शिकायतें होती रहने से रणमलजी पर से महाराणा कुंभाजी का विश्वास उठ गया और उन्होंने महपा पंवार, एका[1] पासवानिया आदि षड्यन्त्रियों के बहकाने में आकर रणमलजी को मार डालने की अनुमति दे दी। महाराणा की सम्मति पाकर महपा पंवार ने कायरों के समान रणमलजी को मारने का अत्यन्त घृणित प्रपंच रचा। महपा ने रण-मलजी की दासी भारमली को अपनी तरफ़ मिलाकर इस नीच कृत्य में मदद देने के लिए राज़ी कर लिया। महाराणा कुंभाजी की तरफ़ से रणमलजी को विश्वासघात का खटका हो गया, अतः उन्होंने अपने पुत्र जोधाजी को दुर्ग के नीचे तलहटी में भेज दिया था और यह संकेत कर दिया था कि गढ़ पर बुलाऊं तो मत आना। दीपमालिका की रात्रि को जब रणमलजी गहरी निद्रा में सो रहे थे महपा के संकेत के अनुसार भारमली ने उनको पलंग पर कसकर बांध दिया। इसके बाद महपा ने अपने आदमियों के साथ जाकर रणमलजी पर शस्त्र प्रहार किया। प्रहार होते ही वृद्धवीर रणमलजी की निद्रा टूटी। ऐसी अशक्तावस्था में भी वे पलंग सहित खड़े हो गये और अपनी कटार से दो तीन आदमियों को मारकर काम आये। वि० सं० १४६५ कार्तिक वदि अमावास्या (ई० स० १४३८ ता० १८ अक्टोबर) को यह घटना हुई।

इस दुर्घटना की खबर पाते ही रणमलजी के पुत्र जोधाजी अपने सैनिकों के साथ तत्काल मारवाड़ की तरफ़ भागे, परन्तु राणाजी की फ़ौज ने उनका पीछा किया। बड़ी कठिनता से लड़ते भिड़ते वे मारवाड़ के थल की तरफ़ चले गये। मारवाड़ पर महाराणा कुंभाजी का अधिकार हो गया।

रणमलजी बड़े वीर थे। कुंभाजी को मेवाड़ का राज्य दिलाने में इन्होंने

(1) यह चाचा पासवानिये का पुत्र था, जिसके हाथ से मोकलजी मारे गये थे।

बड़ी सहायता दी थी। इसी से मारवाड़ में यह कहावत प्रसिद्ध है—

'रिडमलां थापियां जिके राजा'

रणमलजी के २१ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े का नाम अखैराज था, परन्तु उनके वंशजों को बगड़ी नामक गाँव (सोजत परगने में) जागीर में मिला और रणमलजी के उत्तराधिकारी उनके द्वितीय पुत्र जोधाजी हुए।

राव जोधाजी

ये राव रणमलजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ वैशाख कृष्णा १४ (ई० स० १४१५ ता० ८ अप्रेल) को हुआ था। इनके पिता राव रणमलजी कपट से चित्तोड़ दुर्ग में मारे गये। उस समय इनकी अवस्था लगभग २३ वर्ष की थी। पिता की मृत्यु का शोकजनक समाचार सुनकर जोधाजी अपने ७० सवारों को लेकर, जो चित्तोड़ में इनके साथ रहते थे, प्राणरक्षा के निमित्त मारवाड़ की तरफ़ भागे। महाराणा कुंभाजी की फ़ौज ने इनका पीछा किया। उससे लड़ते लड़ते बड़ी कठिनता से ये किसी प्रकार मंडोर पहुँचे। उस समय इनके पास केवल सात सवार रह गये थे। बाक़ी सब महाराणा की सेना से लड़कर काम आ चुके थे। मंडोर से जोधाजी जल्दी में जो कुछ माल असबाब लिया जासका उसे और अपने परिवार को लेकर जंगलों की तरफ़ चले गये। महाराणा कुंभाजी ने राव सत्ताजी के पुत्र नरबदजी को भी अपनी सेना के साथ मारवाड़ में भेजा। नरबदजी को कुंभाजी ने यह लोभ दे दिया था कि अगर तुम जोधाजी को मार डालोगे तो मंडोर का राज्य तुमको दे दिया जायगा। मेवाड़ की फ़ौज के अफसर अक्का सीसोदिया और हिंगोला आहड़ा थे। मंडोर पर अधिकार कर मेवाड़वालों ने मारवाड़ में जगह जगह अपने थाने स्थापित कर दिये। जोधाजी ने अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए अनेक बार उद्योग किया, परन्तु उन्हें सफलता न हुई। १५ वर्ष तक राव जोधाजी बड़ी विपत्ती की दशा में मारवाड़ देश में इधर-उधर फिरते रहे। नरबदजी ने दो तीन दफ़ा इनको पकड़ने की चेष्टा की, परन्तु ये उनके हाथ नहीं आये और बचकर निकल गये। वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) में राव जोधाजी ने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर मंडोर पर चढ़ाई की और अक्का सीसोदिया तथा हिंगोला आहड़ा को मारकर मंडोर पर अपना

अधिकार कर लिया। मंडोर जीतने के पीछे मारवाड़ में स्थापित किये हुए मेवाड़ के सभी थाने उठा दिये। इसपर महाराणा कुंभाजी अपनी तमाम फ़ौज लेकर जोधाजी पर हमला करने के लिए मारवाड़ आये, परन्तु अपने दस हज़ार राठोड़ों की सहायता से, जो मरने मारने का निश्चयकर इस युद्ध में उपस्थित हुए थे, राव जोधाजी ने कुंभाजी को परास्त कर दिया।

इस प्रकार अपने पैतृकराज्य को पुनः प्राप्तकर लेने पर वि० सं० १५१२ (ई० स० १४५५) में राव जोधाजी का मंडोर में राज्याभिषेक हुआ। इसके तीन वर्ष बाद वि० सं० १५१५ (ई० स० १४५८) में मंडोर से तीन कोस दक्षिण की तरफ़ भोगशैल पहाड़ की चिड़ियाटूंक नामक चोटी पर एक विशाल गढ़ निर्माण कराया और उसके नीचे अपने नाम से जोधपुर नामक नगर बसाया जहां अपनी राजधानी स्थापित की।

वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) में राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदाजी ने मांडू के बादशाह से मेड़ते का इलाका छीनकर वहां अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। राष्ट्रकूट वंश की प्रसिद्ध शाखा 'मेड़तिया' का प्रारम्भ दूदाजी से हुआ। दूदाजी की राजधानी मेड़ता नगर में स्थापित होने से इनके वंशज मेड़तिया कहलाने लगे।

इसी वर्ष राव जोधाजी तीर्थ-यात्रा के लिए रवाना हुए। दिल्ली में इन्होंने बादशाह बहलोल लोदी से मुलाकात की और ज़रूरत होने पर उसकी मदद करने का वादा कर तीर्थों पर लगाया हुआ कर बादशाह से माफ़ करा लिया।

वि० सं० १५२२ (ई० स० १४६५) में राव जोधाजी के छठे पुत्र बीकाजी ने जांगलु देश की ओर जाकर वहां अपना पृथक् राज्य स्थापित किया।

वि० सं० १५४३ (ई० स० १४८६) में आमेर के राजा चन्द्रसेनजी ने सांभर परचढ़ाई की, परन्तु राव जोधाजी ने उनको परास्तकर वहां से भगा दिया।

वि० सं० १५४५ वैशाख शुक्ला ५ (ई० स० १४८८ ता० १६ अप्रेल) को ७३ वर्ष की अवस्था में राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया।

राव जोधाजी मारवाड़ देश के बड़े प्रसिद्ध और प्रतापशाली नरेश हुए हैं। इनके समय में मारवाड़ राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा। जोधाजी के समय में दिल्ली

की बादशाहत बहुत कमज़ोर हो गई थी। गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुलतान प्रभृति प्रांतों के शासकों ने अपने पृथक् पृथक् राज्य स्थापित कर लिये थे। इनके आपस में बहुत लड़ाइयां हुआ करती थीं। इससे राव जोधाजी को अपने राज्य बढ़ाने का और भी अच्छा मौका मिल गया और मंडोर, नागोर, फलोदी, महेवा, भाद्राजून, पोकरण, सोजत, गोड़वाड़, जैतारण, सिवाना और अजमेर आदि प्रांतों पर इन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

राव जोधाजी के १४ पुत्र हुए, जिनमें ज्येष्ठ राव सांतलजी इनके पश्चात् जोधपुर के सिंहासन पर विराजमान हुए।

इस प्रकार मेड़तिया शाखा के संस्थापक राव दूदाजी के पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन कर आगे के प्रकरणों में राव दूदाजी से मेड़तिया शाखा के नरेशों का इतिहास लिखा जावेगा।

राष्ट्रकूट-कुल भूषण वीर-श्रेष्ठ राव श्री दूदाजी मेड़ताधीश

चौथा प्रकरण

राव दूदाजी

राव दूदाजी मारवाड़ देश के सुप्रसिद्ध अधिपति राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र थे[1]। इनकी माता जालोर के सोनिगरा चौहानवंशी राजा खीमा सत्तावत की पुत्री थीं[2]। दूदाजी का जन्म वि० सं० १४९७ आषाढ़ शुक्ला १५ (ई० स० १४४० ता० १५ जून) बुधवार को मारवाड़ प्रांत की तत्कालीन राजधानी मंडोवर में हुआ था[3]। इनके जन्म से लगभग दो वर्ष पूर्व

जन्म और बाल्यकाल

(१) टॉड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ १६। मेजर के डी अर्सकिन; जोधपुर का गज़ेटियर, पृष्ठ ४५।

(२) मारवाड़ की हस्त लिखित ख्यात, पृष्ठ ४७।

(३) अजमेर के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशंकरजी ओझा के पास मारवाड़ के प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां की जन्मपत्रियों का जो संग्रह है उसमें राव दूदाजी की भी जन्मपत्री विद्यमान है। उसी के आधार पर उक्त तिथि दी गई है। हमारे कुल गुरु की ख्यात में भी राव दूदाजी के जन्म की उक्त तिथि ही निर्दिष्ट है।

दूदाजी की जन्मपत्री—

संवत् १४९७ आषाढ़ सुदि १५ उ० घटी २ जोधासुत दूदा मेड़तिया जन्म

वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में इनके पितामह मरुधराधीश राव रणमलजी चित्तोड़ के किले में कपट से मारे जा चुके थे तथा इस घटना के एक वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० सं० १४९६ में मरुस्थल की राजधानी मंडोवर पर भी मेदपाटेश्वर महाराणा कुंभाजी का अधिकार हो चुका था[1]। अतः उन दिनों इनके पिता राव जोधाजी अपने पैतृकराज्य की पुनः प्राप्ति के लिए अनेक उद्योग करते हुए बड़े कष्ट और विपत्ति की अवस्था में मारवाड़ प्रदेश में इधर उधर घूमते फिरते थे।

जोधाजी का जोधपुर नगर बसाना

लगभग १५ वर्ष के उपरान्त वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) में राव जोधाजी को उनकी पैतृक राजधानी मंडोवर की पुनः प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय राजकुमार दूदाजी की अवस्था १३ वर्ष की हो चुकी थी। इससे ज्ञात होता है कि दूदाजी की बाल्यावस्था बड़े कष्ट में व्यतीत हुई, परन्तु आपत्तियों को झेलने से सहिष्णुता, धैर्य आदि अनेक गुणों का इनमें विकास हुआ, जिससे जीवन के भावी उद्देश्यों की पूर्ति में इनको बड़ी सहायता मिली। मंडोवर विजय करने के पांच वर्ष पश्चात् वि० सं० १५१५(ई० स० १४५८) में राव जोधाजी ने अपने नाम से 'जोधपुर' नामक नगर बसाया और मंडोवर के स्थान में वहीं राजधानी स्थापित की। दूदाजी इस समय १८ वर्ष के हो चुके थे। नवयौवन के विकास के साथ साथ शौर्यादि विविध गुणों का भी इनमें प्रादुर्भाव होने लगा। वीरोचित भावों से प्रेरित होकर निज बाहुबल तथा पराक्रम-द्वारा स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की प्रबल उत्कंठा इनके हृदय में उत्पन्न हुई।

अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१)

---

(१) मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात में वि० सं० १५०० के आषाढ़ मास में राव रणमलजी का मारा जाना लिखा है (जिल्द पहली, पृष्ठ ३१) तथा 'चतुरकुलचरित्र' नाम के रूपाहेली के इतिहास में भी उक्त घटना का समय वि० सं० १५०० ही निर्दिष्ट है (भाग १, पृष्ठ १६), परन्तु यह विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि वि० सं० १४९६ के राणपुर के शिलालेख में महाराणा कुंभाजी के मंडोवर विजय करने का स्पष्ट उल्लेख है। यह घटना राव रणमलजी के मारे जाने के पीछे हुई थी (पंडित गौरीशंकरजी ओझा; राजपूताने का इतिहास, जिल्द दूसरी, पृ० ६०२)।

में अपने सहोदर कनिष्ठ भ्राता वरसिंहजी[1] को साथ लेकर दूदाजी ने मेड़ते पर आक्रमण किया। मेड़ता उन दिनों मालवे के सुलतान महमूद खिलजी के अधिकार में था। मुसलमानों को परास्तकर दूदाजी ने मेड़ते पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। तदुपरान्त उक्त नगर को नये ढंग पर बसाकर वहां अनेक सुन्दर प्रासाद और एक सुदृढ़ दुर्ग निर्माण कराया। वि० सं० १५१६ की वैशाख शुक्ला तृतीया (ई० स० १४६२ ता० ३ अप्रेल) से अपने भ्राता वरसिंहजी सहित दूदाजी सपरिवार मेड़ते में रहने लगे। इस प्रकार पौराणिक राजा मान्धाताजी के द्वारा स्थापित किये हुए प्राचीन नगर मेड़ते में दूदाजी ने अपनी स्वतंत्र राजधानी स्थापित की।

दूदाजी का मेड़ता राज्य स्थापित करना

वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में उदयसिंहजी ने अपने पिता महाराणा कुंभाजी को मारकर मेवाड़ के राज्याधिकार को ग्रहण किया। चित्तौड़ राज्य के स्वामि-भक्त सरदार उनके इस पाप-कृत्य से अत्यन्त असन्तुष्ट होकर उनको राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। इससे भयभीत होकर उन्होंने अपने पड़ोसी राजाओं को सहायक बनाने का उद्योग

सांभर पर दूदाजी का अधिकार

(१) मारवाड़ की ख्यात में वरसिंहजी का ज्येष्ठ भ्राता होना लिखा है। वरसिंहजी ही मेड़ते के प्रथम स्वामी हुए। उनका स्वर्गवास हो जाने पर उनके पुत्र सीहाजी मेड़ते की राजगद्दी पर बैठे, परन्तु वे मद्यपान विशेष करते थे अतः राज्य को भली प्रकार संभाल न सके। यह देखकर सरदारों ने उनके स्थान में उनके पितृव्य दूदाजी को मेड़ते के राज्यासन पर बिठाया और सीहाजी को रीयां का ठिकाना दे दिया, परन्तु ख्यात का यह वृत्तान्त विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो अन्य ख्यातों में दूदाजी को ही मेड़ता-राज्य का संस्थापक माना है इसके अतिरिक्त यदि सीहाजी को राज्यच्युत कर दूदाजी मेड़ते का राज्याधिकार प्राप्त करते तो दूदाजी तथा सीहाजी के वंशजों में प्रीतिपूर्ण व्यवहार कभी न होता। सीहाजी के वंशज अपने न्यायोचित अधिकार से वंचित कर दिये जाने के कारण दूदाजी की सन्तति से विरोध रखते और मेड़ते के सहज शत्रु राव मालदेवजी के पक्ष में रहकर अपना पैतृक अधिकार फिर प्राप्त करने का उद्योग करते, परन्तु ऐसा न करके रीयां के अधिकारी सर्वदा मेड़ते के पक्ष में ही रहे और बड़े बड़े संकटों के अवसरों पर भी राव मालदेवजी के विरुद्ध मेड़ता राज्य की ही सहायता की जैसा कि आगे के प्रकरणों से पाठकों को भली भाँति विदित हो जायगा।

किया, इसी अभिप्राय से अपने राज्य के कई परगने भी आसपास के राजाओं को दे दिये और अजमेर का प्रान्त राव जोधाजी को दे दिया। शाकंभरी (सांभर) नगरी पर भी उस समय मेवाड़ का अधिकार था[1]। मेवाड़ राज्य की दुर्बलता के कारण इस अवसर को उपयुक्त समझकर राजकुमार दूदाजी ने सांभर पर चढ़ाई की और मेवाड़ की सेना को परास्तकर वहां पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। तदुपरान्त सांभर के आसपास की भी बहुतसी भूमि अपने आधिपत्य में कर ली। इस प्रकार एक सहस्र गांवों पर दूदाजी का स्वतन्त्र अधिकार हो गया और मेड़ते के राज्य की वार्षिक आय नौ लाख रुपये तक पहुंच गई।

वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में अपने भाई उदयसिंहजी से राज्य छीनकर महाराणा रायमलजी मेवाड़ के राज्यासन पर विराजमान हुए। इसके

अजमेर और सांभर पर मुसलमानों का फिर अधिकार

कुछ ही समय पश्चात् मालवे के बादशाह महमूद खिलजी ने बहुत बड़ी सेना साथ लेकर राजपूताने पर आक्रमण किया और राव जोधाजी से अजमेर और दूदाजी से सांभर छीन लिया। इन दोनों स्थानों के रक्षार्थ ख्वाजा नियामतुल्लाखां के अधिकार में एक बड़ी सेना देकर बादशाह मालवे लौट गया।

वि० सं० १५३४ मार्गशीर्ष शुक्ला १४ (ई० स० १४७७ ता० १६ नवम्बर)

---

(१) सांभर के इलाके का प्राचीन नाम सपादलक्ष था। वि० सं० १५१७ के कुंभलगढ़ के शिलालेख से पाया जाता है कि महाराणा मोकलजी ने सपादलक्ष देश को बरबाद कर सांभर को छीन लिया। इसके उपरान्त मोकलजी और कुंभाजी के समय में सांभर पर मेवाड़ का ही अधिकार रहा। फिर महाराणा कुंभाजी के उत्तराधिकारी उदयसिंहजी के राजत्वकाल में मेवाड़ के निर्बल हो जाने के कारण मेवाड़ की सेना को परास्तकर दूदाजी ने सांभर पर अधिकार कर लिया। महाराणा मोकलजी के सांभर लेने का उल्लेख कर्नल टॉड साहब ने भी किया है (टॉ० रा०; जि० १, पृ० ३३१), परन्तु जिल्द २ पृष्ठ १६ में दूदाजी के चौहानों से सांभर छीनने का उल्लेख किया है, जो विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता, क्योंकि दूदाजी के समय से बहुत पहले ही से चौहानों का अधिकार उठ चुका था। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार करने से 'चतुरकुलचरित्र' का ही उल्लेख—'महाराणा उदयसिंहजी के समय में उचित अवसर देखकर राजकुमार दूदाजी ने मेवाड़ के मनुष्यों को निकालकर शाकंभरी नगरी पर अपना अधिकार कर लिया' प्रामाणिक प्रतीत होता है (चतुरकुलचरित्र; भाग १, पृ० १७)।

बुधवार को दूदाजी के ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेवजी का जन्म हुआ[1]। वि० सं० १५३६ (ई० स० १४८२) में अजमेर की सूबेदारी पर नियामतुल्लाखां के स्थान पर मल्लूखां नामक एक प्रसिद्ध पठान वीर नियत हुआ, जिसका तारागढ़ के नीचे की तलहटी पर बनाया हुआ मल्लसर (मलूसर) नामक तालाब अद्यावधि प्रसिद्ध है। मल्लूखां ने दूदाजी से मेड़ता छीनने का अनेक बार उद्योग किया, परन्तु इनकी वीरता, रणकौशल और सावधानी के आगे उसकी एक न चली और उसे प्रत्येक बार परास्त होकर ही पीछे हटना पड़ा।

दूदाजी की तरह इनके कनिष्ठ भ्राता और राव जोधाजी के छठे पुत्र[2] बीकाजी ने भी अपने चाचा कांधलजी सहित वि० सं० १५२२ (ई० स० १४६५)

वीरमदेवजी की जन्मपत्री—

(१) संवत् १५३४ मार्गशिर सुदि १४ राव दूदा सुत वीरमदे जन्म ॥
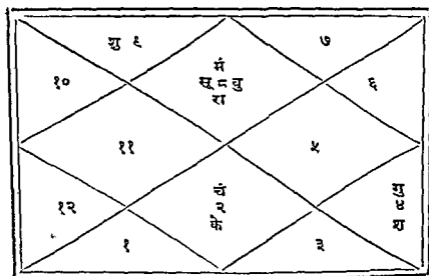
(२) टॉड; राजस्थान; जिल्द २, पृ० १६। चतुरकुलचरित्र; भाग १, पृ० १६।

ज्योतिषी चंडू की जन्मपत्रियों के संग्रह में राव बीकाजी की भी जन्मपत्री विद्यमान है। उसमें उनकी जन्मतिथि वि० सं० १४९७ श्रावण शुक्ला १५ निर्दिष्ट है। इससे राव बीकाजी का राव दूदाजी से कनिष्ठ होना स्पष्ट रीति से प्रमाणित होता है।

बीकानेर और छापर द्रोणपुर राज्यों की स्थापना

में जांगल देश की ओर प्रस्थान किया और अनेक वर्षों के युद्ध के उपरान्त जाटों को परास्त करके वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में वहां अपने नाम से बीकानेर नामक नगर बसाया। इसी प्रकार राव जोधाजी के सप्तम राजकुमार बीदाजी ने वि० सं० १५२६ (ई० स० १४६६) में छापर द्रोणपुर में, जो आजकल बीकानेर राज्य के अंतर्गत है, अपना स्वाधीन राज्य स्थापित किया।

राव जोधाजी के आदेश से वि० सं० १५४४ (ई० स० १४८७) में दूदाजी ने नरबदजी के भाई आसकरणजी की मृत्यु का बदला लेने के लिए जैतारण पर

दूदाजी के हाथ से सिन्धल मेघा का मारा जाना

हमला किया। जहां मेघा से उनका युद्ध हुआ, जिसमें उनकी जीत हुई और मेघा युद्धभूमि में मारा गया।

वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया[1], जिसके पश्चात् ज्येष्ठ राजकुमार सांतलजी जोधपुर के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। अपने पिता का देहान्त हो जाने पर दूदाजी ने भी मेड़ता राजधानी में राज्याभिषेक सम्पादित कर राव की उपाधि धारण की। इसी प्रकार बीकाजी ने बीकानेर में और बीदाजी ने छापर द्रोणपुर में राव की उपाधियां धारण कीं। इन चारों भाइयों में परस्पर अत्यन्त प्रीतिपूर्ण व्यवहार था।

बीकानेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि राव बीकाजी के पितृव्य कांधलजी हिसार के सूबेदार सारंगखां से युद्ध करके वि० सं० १५४६ पौष

राव दूदाजी का राव बीकाजी के साथ सारंगखां पर चढ़ाई करना और उसका युद्ध में मारा जाना

कृष्णा २ (ई० स० १४८६ ता० १० दिसम्बर) को काम आये, जिसका बदला लेने के लिए वि० सं० १५४७ (ई० स० १४६०) में बीकाजी ने हिसार पर चढ़ाई की। राव बीकाजी के द्वारा इस अवसर पर सहायतार्थ

(१) बीकानेर के इतिहास में राव जोधाजी के स्वर्गारोहण का समय वि० सं० १५४७ (ई० स० १४६०) निर्दिष्ट है, परन्तु जोधपुर के इतिहास में इनका मृत्यु संवत् १५४५ (ई० स० १४८८) लिखा है। इनमें कौनसा सत्य है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता तथापि इस विषय में जोधपुर के लेख के अधिक प्रामाणिक होने की संभावना से उसी के आधार पर राव जोधाजी का मृत्यु संवत् निर्दिष्ट किया गया है।

निमंत्रित किये जाने पर भ्रातृवत्सल जोधपुर-नरेश राव सान्तलजी और मेड़ताधीश राव दूदाजी तुरन्त अपनी अपनी युद्धविशारद प्रबल सेनाएं लेकर रवाना हुए। छापर द्रोणपुर में सब सेनाएं एकत्र हुईं। वहां पर वीदाजी भी अपनी सेना सहित सम्मिलित हुए, इसप्रकार जोधपुर, बीकानेर, मेड़ता और छापरद्रोणपुर इन चारों राज्यों की संयुक्त सेनाएं हिसार पर आक्रमण करने के निमित्त रवाना हुईं। सारंगखां ने भी इस चढ़ाई का हाल सुनकर अपने लश्कर को लड़ाई के वास्ते तैयार किया और मुकाबले के लिए वह आगे बढ़ा। झांस गांव के समीप दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। घमसान युद्ध के अनन्तर राजपूतों की विजय हुई। सारङ्गखां चार सौ सैनिकों सहित युद्ध-क्षेत्र में मारा गया। शेष यवनसेना परास्त होकर भाग गई। इसके उपरांत चारों विजयी नरेश छापर द्रोणपुर में कुछ दिन ठहर कर बड़े समारोह के साथ अपनी अपनी राजधानी को लौट गये।

सांभर पर वरसिंहजी का आक्रमण

इसी वर्ष एक भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। खाद्य पदार्थों के अभाव से मेड़ते की प्रजा को असीम कष्ट होने लगा। दयालु राव दूदाजी अपनी प्यारी प्रजा के कष्ट को कब सहन कर सकते थे, बाहर से अन्न लाकर अपनी प्रजा का कष्ट दूर करने के लिए उन्होंने अपने भाई वरसिंहजी को सांभर पर, जहां अनेक धनिक सेठ निवास करते थे, धावा करने की आज्ञा दी। वरसिंहजी ने सांभर पहुँचकर धावा करने से पहले वहां के सेठों को समझाया कि दुर्भिक्ष का समय है, कोठा खाली कर दो, जिससे मनुष्यों के प्राण बच सकें, मगर जब उन्होंने इनकी बात न मानी तब इन्हें विवश होकर धावा मारना ही पड़ा, परन्तु केवल धान्य ही लूटा, जो सबका सब क्षुधार्त प्रजा में बांट दिया गया।

राव दूदाजी का मल्लूखां को परास्त करना

इस धावे की खबर पाकर अजमेर के दुर्गाध्यक्ष मल्लूखां ने मेड़ते पर चढ़ाई की।[1] इसपर राव दूदाजी ने भी युद्ध की तैयारी करना शुरू किया और जोधपुर भी इसकी खबर भेजी। मल्लूखां की चढ़ाई का समाचार सुनते ही जोधपुर से राव सांतलजी भाई की सहायता के निमित्त सेना सहित रवाना हुए। मल्लूखां की सेना ने पीपाड़

(१) जोधपुर के कविराजा बांकेदासजी के हस्तलिखित ऐतिहासिक संग्रह में मल्लूखां

के पास कोसाणा नामक गाँव में डेरा डाल रक्खा था। मुसलमान सिपाहियों ने उस गाँव की १४० स्त्रियों को, जो गाँव से बाहर गणगौर पूजने गई थीं, ज़बरदस्ती पकड़ लिया। उनके इस अत्याचार की खबर पाते ही राव सांतलजी और राव दूदाजी दोनों नरेशों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर तत्काल मुसलमानों की सेना पर आक्रमण किया, बड़ी वीरता से दोनों सेनाओं ने युद्ध किया, परन्तु राजपूतों के प्रचंड आक्रमण के आगे यवन-सेना के पैर टिक न सके। राजपूतों की जीत हुई और सब की सब स्त्रियां, जिनको मुसलमानों ने पकड़ रक्खी थीं, वापस छुड़ा ली गईं। मल्लूखां को परास्त होकर अजमेर भागना पड़ा, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि वि० सं० १५४८ चैत्र शुक्ला ३ (ई० स० १४९१ ता० १३ मार्च) के इस युद्ध में वीरवर राव सांतलजी काम आ गये[1]। अबलाओं के सहायतार्थ प्राणोत्सर्ग करनेवाले इस महावीर का यश आज भी मारवाड़ में गाया जा रहा है। अपने इस भाई की मृत्यु से दूदाजी को असह्य दुःख हुआ।

जोधपुर और बीकानेर में परस्पर युद्ध

राव साँतलजी के पुत्र उनके जीवनकाल में ही परलोकगामी हो चुके थे, अतः राव साँतलजी ने अपने कनिष्ठ भ्राता सूजाजी के द्वितीय पुत्र नराजी को राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया था, परन्तु उनके स्वर्गारोहण के अनन्तर सूजाजी ने नराजी को फलौदी और पोहकरण के प्रान्त देकर जोधपुर के राज्यासन को स्वयं ग्रहण किया। सूजाजी के इस धर्मविरुद्ध आचरण से बीकाजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और सूजाजी को उनकी अनीति का दंड देने के लिए उन्होंने विशाल सेना एकत्र कर जोधपुर पर आक्रमण किया। बहुत दिनों तक सूजाजी और बीकाजी के परस्पर युद्ध होता रहा, अंत में इस पारस्परिक कलह से वंश की क्षति होती देखकर राव दूदाजी ने अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से दोनों भाइयों का आपस में मेल करा दिया।

के स्थान में अजमेर के सूबेदार का नाम सिरियाखां लिखा है, परन्तु अन्य ख्यातों और पुस्तकों में इसका नाम मल्लूखां ही उपलब्ध होने से इसी नाम को अधिक प्रामाणिक मानकर उसका उल्लेख किया गया है।

(१) मारवाड़ की ख्यात; जिल्द १, पृ० ४८।

वि० सं० १५५० (ई० स० १४९३) में राव बीकाजी के निमंत्रित करने पर राव दूदाजी बीकानेर गये। अपनी अनुपस्थिति में मेड़ते का राज्य-प्रबन्ध युवराज वीरमदेवजी को और भाई वरसिंहजी को सौंप गये थे। अजमेर के दुर्गाध्यक्ष मल्लूखां ने, जो पहले राव दूदाजी से युद्ध में पराजित होकर अत्यन्त खिन्न हो रहा था, मेड़ते से बदला लेने के लिए इस अवसर को अनुकूल समझकर वरसिंहजी को अजमेर बुलाया और कपट से तारागढ़ में बंदी कर लिया।

मल्लूखां का कपट से वरसिंहजी को बन्दी करना

राजकुमार वीरमदेवजी ने यह समाचार पाकर तुरन्त अपने पिता के पास इस दुर्घटना की सूचना भेजी। राव दूदाजी को जब यह खबर मिली तब विश्वासघाती मल्लूखां पर उनको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने तुरन्त मेड़ता लौटने की तैयारी की। राव बीकाजी को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उनको भी बहुत दुःख हुआ। उन्होंने दूदाजी से कहा कि आप निश्चिन्त रहें। वरसिंहजी जैसे आपके भाई हैं वैसे ही मेरे भी हैं। आप मेड़ते पधारकर युद्ध की सामग्री एकत्र करें। मैं भी शीघ्र ही सेना सहित उपस्थित होता हूं। राव दूदाजी बड़ी शीघ्रता से मेड़ते पहुंचे और जोधपुर भी राव सूजाजी के पास इस घटना की सूचना भेजी। राव सूजाजी और राव बीकाजी शीघ्र ही अपनी अपनी सेना सहित सहायतार्थ रवाना हुए। पीपाड़ ग्राम में तीनों भाई एकत्र हुए। वहां से अजमेर पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। मल्लूखां ने यद्यपि इस अन्तर में मांडू से अधिक सेना मंगवाकर युद्ध की पूरी तैयारी कर रक्खी थी तथापि इन तीनों नरेन्द्रों के संयुक्त आक्रमण का वृत्तान्त सुनकर वह ऐसा भयभीत हो गया कि उसे मुकाबला करने का साहस न हुआ। वरसिंहजी को कारागार से तुरन्त मुक्तकर उनके साथ बड़े आदर का व्यवहार किया और पुनः उपर्युक्त तीनों ही नरेशों के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा और अत्यन्त विनय के साथ अपने अपराध की क्षमा मांगी। शरणागत शत्रु पर प्रहार करना न्यायोचित न समझकर राव दूदाजी ने मल्लूखां की प्रार्थना स्वीकार कर सन्धि कर ली। इसप्रकार मल्लूखां का मानध्वस्त कर तीनों ही विजयी नरेश वरसिंहजी को साथ लेकर लौट

राव दूदाजी की मल्लूखां पर चढ़ाई

आये और कुछ काल तक वहां रहकर राव सूजाजी और बीकाजी अपनी अपनी राजधानी को वापस चले गये।

वरसिंहजी का देहान्त

यद्यपि राव दूदाजी ने मल्लूखां पर इतनी दया प्रदर्शित की थी तथापि वह अपनी दगाबाज़ी से बाज न आया। वरसिंहजी को मुक्तकर उनका बड़ा सत्कार किया, परन्तु गुप्त रीति से उस दुष्ट ने उनके भोजन में विष मिलवाकर खिला दिया, जिसके कारण लगभग ६ मास तक राजयक्ष्मा अथवा मन्दाग्नि रोग से पीड़ित रहकर वरसिंहजी का देहान्त हो गया। उनके पुत्र सीहाजी को मेड़ते से जागीर में रीयां का ठिकाना दिया गया, जो कितने ही वर्षों तक इनके वंशजों के अधिकार में रहा। तदनन्तर बादशाह अकबर की सेवा में रहने से इन्हीं के वंशज केशवदासजी को मालवा प्रान्त में बादशाह जहांगीर ने झाबुआ का राज्य वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में अता किया, जो अब तक उनके वंशजों के अधिकार में है[1]।

राजकुमार वीरमदेवजी का महाराणा रायमलजी की पुत्री से विवाह

वि० सं० १५५३ (ई० स० १४९६) में युवराज वीरमदेवजी का विवाह चित्तौड़ के महाराणा रायमलजी की पुत्री गोरज्या कुमारी से हुआ। इस सबन्ध से मेवाड़ और मेड़ता दोनों ही राज्यों में घनिष्ट प्रीति और मित्रता हो गई तथा परस्पर एक दूसरे की सहायता करने लगे, जिससे इस वंश के भावी इतिहास पर जो प्रभाव पड़ा उसका वृत्तान्त पाठकों को आगे के प्रकरणों से विदित हो जायगा। महाराणा रायमलजी की पुत्री से राजकुमार प्रतापसिंहजी उत्पन्न हुए, जिनको मेवाड़ से घाणेराव का ठिकाना, जो गोड़वाड़ प्रांत के अंतर्गत है, प्रदान किया गया। यह ठिकाना आजतक इन्हीं के वंशजों के अधिकार में चला आता है[2]।

जैतारण प्रान्त पर सिन्धल राठोड़ों का स्वतन्त्र अधिकार था। उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए वि० सं० १५५५ (ई० स० १४९८) में

---

(१) जगदीशसिंह गहलोत; मारवाड़ राज्य का इतिहास; पृष्ठ २५१—५२।

(२) गोड़वाड़ प्रान्त के मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत हो जाने से घाणेराव का ठिकाना भी आजकल जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है।

जैतारण के सिन्धल राठोड़ों से राव दूदाजी का युद्ध

जोधपुराधीश राव सूजाजी ने जैतारण पर आक्रमण किया। इस अवसर पर सहायतार्थ राव सूजाजी से निमन्त्रित किये जाने पर राव दूदाजी भी सेना सहित इस युद्ध में सम्मिलित हुए। सिंधल राठोड़ों को पराजित होकर राव सूजाजी का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। इसप्रकार अपने भाई के पक्ष में युद्ध कर विजयश्री से विभूषित राव दूदाजी सानन्द अपनी राजधानी मेड़ता को लौट आये।

अनेकवार परास्त हो जाने से मल्लूखां तो अब राजपूतों से युद्ध करने का साहस न कर सका, परन्तु मालवे के बादशाह नासिरुद्दीन ने सिर उठाया और

मालवा के बादशाह का भयभीत होकर भागना

वि० सं० १५५९ (ई० स० १५०२) में राजपूताने पर चढ़ाई की। जोधपुर, बीकानेर तथा मेड़ता इन तीनों ही राज्यों के अधिपतियों ने अपनी अपनी सेनाएं एकत्र कर नासिरुद्दीन से युद्ध की तैयारी की। यवन बादशाह सांभर तक चला आया था। वहां इन तीनों ही शक्तिशाली नरेन्द्रों की सेनाओं के एकत्रित होकर युद्धार्थ सुसज्जित होने की खबर पाकर वह भयभीत हो गया और आगे बढ़ने का साहस न कर वहीं से मेवाड़, ढूंढाड़ आदि देशों को लूटता खसोटता अपने मुल्क को वापस चला गया।

वि० सं० १५६१ आश्विन शुक्ला ३ (ई० स० १५०४ ता० ११ सितम्बर) को राव दूदाजी के कनिष्ठ भ्राता राव बीकाजी का स्वर्गवास हो गया। उनके

राव बीकाजी का स्वर्गवास

पश्चात् बीकाजी के ज्येष्ठ राजकुमार नराजी बीकानेर के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए, परन्तु चार ही मास के पीछे इनका भी देहान्त हो गया। तदनन्तर राव बीकाजी के द्वितीय राजकुमार लूणकरणजी ने बीकानेर का राज्याधिकार ग्रहण किया।

वि० सं० १५५५ (ई० स० १४९८) में राव दूदाजी के राज्यकाल में कालीकट नामक बन्दरगाह में वास्कोडीगामा नाम के प्रसिद्ध पुर्तगाली जलसे-

पुर्तगालियों का हिन्दुस्तान में आना

नाध्यक्ष के अधिकार में पुर्त्तगालियों का जहाज प्रथमवार भारतवर्ष में आया। जलमार्ग-द्वारा यूरोपवासियों का इस देश में आना इसी समय से प्रारम्भ हुआ।

वि० सं० १५६४ आश्विन शुक्ला ११ (ई० स० १५०७ ता० १७ सितम्बर)

भँवर जयमलजी का जन्म

शुक्रवार को राव दूदाजी के ज्येष्ठ राजकुमार वीरमदेवजी के देशविख्यात भँवर जयमलजी का जन्म हुआ।

वि० सं० १५६६ ज्येष्ठ शुक्ला ५ (ई० स० १५०६ ता० २४ मई) को

महाराणा सांगाजी का चित्तोड़ के सिंहासन पर आरूढ़ होना

चित्तोड़ के महाराणा रायमलजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी परम प्रतापशाली महाराणा संग्रामसिंहजी हुए।

वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) में जोधपुर के राजकुमार वाघाजी

राव गांगाजी का मारवाड़ के सिंहासन पर बैठना

और उसके दूसरे ही वर्ष वि० सं० १५७२ में राव सूजाजी का भी देहान्त हो गया। सूजाजी के पश्चात् उनके पौत्र गांगाजी अथवा गंगदेवजी ने मारवाड़ के राज्यसिंहासन को सुशोभित किया।

भाटों तथा कुल-गुरुओं की ख्यातों के अनुसार इसी वर्ष मेड़ता के स्वाधीन राज्य के संस्थापक तथा समस्त मेड़तिया शाखा के पूर्वज वीरशिरोमणि राव दूदाजी का भी स्वर्गवास हो गया। मृत्यु-समय राव

राव दूदाजी का स्वर्गवास

दूदाजी की अवस्था ७५ वर्ष की थी। राव दूदाजी ने २७ वर्ष अपने पिता राव जोधाजी की जीवितावस्था में तथा उतने ही वर्ष उनकी मृत्यु के उपरान्त मेड़ते का शासन किया। इस प्रकार कुल ५४ वर्ष तक इन्होंने राज्य किया।

राव दूदाजी बड़े पराक्रमी, नीतिज्ञ और दूरदर्शी नरेश थे। ये जैसे वीर थे वैसे ही धर्मात्मा भी थे। परम वैष्णव होने पर भी वह भगवती जगदम्बा के

राव दूदाजी का व्यक्तित्व

अनन्य भक्त थे। ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि जब राव दूदाजी मल्लूख़ां से लड़ रहे थे तब पीपाड़ ग्राम में बालस्वरूप भगवती जगदम्बा का इनको दर्शन हुआ। भगवती ने 'वरं ब्रूहि' ऐसा आदेश किया। राव दूदाजी ने शत्रु विजय की कामना प्रकट की। इसपर जगदम्बा ने 'तथास्तु' कहकर कैर की एक लकड़ी काटी, जिसकी तलवार बनाकर दूदाजी के हाथ में दी और यह आज्ञा की कि जब तक यह तलवार तुम्हारे घर में रहेगी, मेड़ते

का राज्य तुम्हारे अधिकार से पृथक् नहीं होगा'[1]। उसी समय से वहां से तीन कोस तालका गांव में भगवती निवास करने लगी। फाल्गुन की अमावास्या को अब भी वहां बड़ा मेला लगता है। राव दूदाजी ने मेड़ते में लाखों रुपये व्यय करके बड़े बड़े सुन्दर राजभवन निर्माण कराये। इन्हीं का बनवाया हुआ श्रीचतुर्भुजजी का मंदिर आज तक मेड़ते में विद्यमान है। मेड़तिया शाखा के राठोड़ श्रीचतुर्भुजजी महाराज का ही इष्ट रखते हैं। मेड़ते में राव दूदाजी का बनवाया हुआ 'दूदासर' नामक तालाब अद्यावधि विद्यमान है।

राव दूदाजी की राणियां और सन्तान

भाटों और राणीमंगों की ख्यातों के अनुसार राव दूदाजी के दो राणियां थीं। प्रथम राणी देवलिया प्रतापगढ़ के वरसिंहजी की पुत्री सीसोदनी चन्द्रकुंवरी और दूसरी पंचायदा के मानसिंहजी की पुत्री चौहान मृगकुंवरी। इन दोनों राणियों से राव दूदाजी के पांच पुत्र और एक पुत्री गुलाब कुंवरी उत्पन्न हुई। पुत्रों का क्रम जहांतक ज्ञात हो सका नीचे लिखे अनुसार है—

१—वीरमदेवजी—राव दूदाजी के उत्तराधिकारी हुए। आगे के प्रकरण में इनका सविस्तर इतिहास लिखा जायगा।

२—रायसलजी—ये रायसलोत शाखा के मूलपुरुष थे। इनके वंशजों के अधिकार में मारवाड़ के भडाणा, बांसणी, जीलारी आदि ठिकाने हैं तथा मेवाड़ राज्य में हुरड़ा प्रान्त के कुछ ग्रामों में भौम है।

३—पंचायणजी—इनके कोई सन्तति नहीं हुई। इनका विशेष वृत्तान्त उपलब्ध न हो सका।

४—रत्नसिंहजी—इनके कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल एक पुत्री हुई जो मीरांबाई के नाम से विख्यात है। मीरांबाई का विवाह चित्तोड़

---

(१) मेजर के. डी. इर्सकिन द्वारा रचित जोधपुर गज़ेटियर (पृष्ठ ४४) में ऐसा लिखा है—'वैष्णव संप्रदाय के संस्थापक बीकानेर राज्य के हरसर गांव के निवासी पँवारवंशी महात्मा जंभाजी ने मरुधराधीश राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र राव दूदाजी को एक काष्ठ की तलवार दी थी, जिसके द्वारा दूदाजी ने मेड़ते को विजय किया'।

के प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंहजी के युवराज भोजराजजी से हुआ। रत्नसिंहजी को निर्वाह के लिए मेड़ता राज्य से कुड़की, बाजोली आदि १२ गांव दिये गये। वि० सं० १५८४ चैत्र शुक्ला १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को बयाने में महाराणा संग्रामसिंहजी का मुगल बादशाह बाबर से जो प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, उसमें ये मुसलमानों से बड़ी वीरता से युद्ध करके काम आये[1]।

५—रायमलजी—इनसे मेड़तियों की रायमलोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। जोधपुर नरेश राव गांगाजी ने बयाने के युद्ध में महाराणा की सहायतार्थ जो सेना भेजी थी उसके प्रधान सेनापति ये ही थे। ये भी उक्त युद्ध में बड़ी बहादुरी से लड़कर मारे गये[2]। मारवाड़ में इनके वंशजों के अधिकार में मुख्य ठिकाने रेण और रायरा हैं।

(१) तुजुक बाबरी; ए. एस. बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ५७३। रा० ब० गौरीशंकरजी ओझा कृत राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६६१।

(२) तुजुक बाबरी, पृ० ५७३; गौ० ओझा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ६६१।

के प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंहजी के युवराज भोजराजजी से हुआ। रत्नसिंहजी को निर्वाह के लिए मेड़ता राज्य से कुड़की, बाजोली आदि १२ गांव दिये गये। वि० सं० १५८४ चैत्र शुक्ला १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को बयाने में महाराणा संग्रामसिंहजी का मुग़ल बादशाह बाबर से जो प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, उसमें ये मुसलमानों से बड़ी वीरता से युद्ध करके काम आये[1]।

५—रायमलजी—इनसे मेड़तियों की रायमलोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। जोधपुर नरेश राव गांगाजी ने बयाने के युद्ध में महाराणा की सहायतार्थ जो सेना भेजी थी उसके प्रधान सेनापति ये ही थे। ये भी उक्त युद्ध में बड़ी बहादुरी से लड़कर मारे गये[2]। मारवाड़ में इनके वंशजों के अधिकार में मुख्य ठिकाने रेण और रायरा हैं।

(१) तुज़ुक बाबरी, ए. एस. बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद, पृ० ५७२। रा० ब० गौरीशंकरजी ओझा कृत राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६६६।

(२) तुज़ुक बाबरी, पृ० ५७३; गौ० ओझा, राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६६६।

पांचवां प्रकरण

राव वीरमदेवजी

राव दूदाजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र राव वीरमदेवजी (जो राजा की पदवी से भी भूषित थे[1]) मेड़ते के सिंहासन पर विराजमान हुए। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था लगभग ३८ वर्ष की थी। राव वीरमदेवजी बड़े बुद्धिमान्, राजनीतिज्ञ और प्रतापशाली नरेश थे। इनके शासन-काल में मेड़ता नगर बहुत समृद्धिशाली था। जिस प्रकार इनके पिता राव दूदाजी के राज्य-काल में जोधपुर और मेड़ते के राज्यों में परस्पर दृढ़ मित्रता का सम्बन्ध था उसी प्रकार यदि राव वीरमदेवजी के शासनकाल में भी इन दोनों राजाओं में परस्पर एकता रहती तो इनके समय में मेड़ते के राज्य की ओर भी विशेष रूप से उन्नति होती।

राज्याभिषेक

गद्दी पर बैठने के दूसरे ही वर्ष वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) में राव वीरमदेवजी ने अपने कनिष्ठ भ्राता रत्नसिंहजी की पुत्री मीरांबाई का विवाह मेदपाटेश्वर महाराणा संग्रामसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार भोजराजजी के साथ बड़े समारोह से किया, परन्तु दुर्भाग्य से विवाह के कुछ ही वर्ष पीछे युवराज भोजराजजी का देहान्त हो गया। मीरांबाई को बाल्यावस्था से ही भगवद्भक्ति में बहुत रुचि थी, इसलिए वे वैधव्य का घोर कष्ट पड़ने पर संसार से विरक्त होकर अनन्य भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करने लगीं। भक्तशिरोमणि मीरांबाई जैसी नारी-रत्न के जन्म का समस्त मेड़तियावंश को अभिमान है अतः इनका परम पावन जीवनचरित जहां तक ज्ञात हो सका है, अगले प्रकरण में पृथक् लिखा जायगा।

मेवाड़ के युवराज भोजराजजी के साथ मीरांबाई का विवाह

---

(१) जोधपुर के कविराजा बांकीदानजी के हस्तलिखित ऐतिहासिक वृत्तान्तों के संग्रह में इसका उल्लेख मिलता है।

मेदिनीराय का महाराणा संग्रामसिंहजी की सेवा में जाना

वि० सं० १५७४ (ई० स० १५१७) में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह ने मेदिनीराय पर आक्रमण करने के लिए मालवे की तरफ़ प्रस्थान किया। इस समाचार को सुनकर मेदिनीराय ने मांडू के दुर्ग की रक्षा का भार तो अपने पुत्र को सौंपा और स्वयं सहायता प्राप्त करने के निमित्त महाराणा संग्रामसिंहजी की सेवा में चित्तोड़ उपस्थित हुआ। उसने मालवे की सल्तनत के बहुतसे मशहूर हाथी और बेशक़ीमती जवाहिरात महाराणा साहब के नज़र किये और विनयपूर्वक उनसे प्रार्थना की–'इस समय हिन्दुस्तान में आपसे अधिक बलशाली अन्य कोई हिन्दू नरेश नहीं है। यदि ऐसे विपत्ति में आपही अपने सजातीय बन्धुओं की सहायता न करेंगे तो दूसरा कौन करेगा'। महाराणा साहब ने मेदिनीराय की प्रार्थना स्वीकार कर युद्ध के लिए सेना एकत्र करना प्रारम्भ किया। निमंत्रित किये जाने पर राव वीरमदेवजी भी अपनी सेना सहित महाराणा साहब के पक्ष में सम्मिलित हुए। महाराणा सांगाजी ने मेदिनीराय के साथ मांडू की तरफ़ प्रस्थान किया, परन्तु सारङ्गपुर पहुंचने पर यह ख़बर मिली कि हज़ारों राजपूतों को मारकर मुज़फ़्फ़रशाह ने मांडू का दुर्ग विजय कर लिया है और क़िले की रक्षा के लिए आसफ़ख़ां की अध्यक्षता में विशाल सेना नियतकर स्वयं गुजरात को वापस चला गया है। इससे महाराणा साहब भी वहां से चित्तोड़ लौट आये और गागरौन, चन्देरी आदि परगने जागीर में देकर मेदिनीराय को अपना सामन्त बनाया।

सुलतान महमूद का गागरौन लेना

वि० सं० १५७६ (ई० स० १५१९) में मालवे के सुलतान महमूद ने मेदिनीराय पर आक्रमण करने के लिए गागरौन की तरफ़ प्रयाण किया। उस समय मेदिनीराय की ओर से भीमकरण वहां का शासक था। सुलतान महमूद ने गागरौन फ़तह कर लिया और भीमकरण को क़ैद कर कुछ दिनों पीछे मरवा डाला[1]।

महमूद के इस अत्याचार की ख़बर पाकर महाराणा सांगाजी का क्रोध भड़क उठा और पचास हज़ार सेना लेकर वे महमूद से लड़ने के लिए रवाना

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० २६१।

हुए। पूर्वानुसार राव वीरमदेवजी भी सहायतार्थ बुलाये जाने पर राणाज़ी के पक्ष में सेना सहित सम्मिलित हुए। गागरौन के निकट दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ और भीषण संग्राम के अनन्तर मुसलमानों का पराजय हुआ। सुलतान महमूद स्वयं भी घायल होकर लड़ाई के मैदान में ही गिर पड़ा। उसकी यह अवस्था देख दयालु महाराणा ने उसे उठाकर अपने तम्बू में पहुंचा दिया और फिर पालकी में बिठाकर चित्तोड़ ले गये। वहां उसके घावों का इलाज कराया गया। तीन मास तक सुलतान महमूद चित्तोड़ में नज़र क़ैद रहा। तदनन्तर प्रसन्न होकर उदार महाराणा ने मालवे का राज्य उसको वापस दे दिया। सुलतान ने भी चित्तोड़ की अधीनता स्वीकार कर अपना रत्नजटित मुकुट तथा सोने की कमर-पेटी महाराणा को भेंट की।

महाराणा सांगाजी का महमूद को पराजित करना

गुजरात के सुलतान मुजफ्फ़रशाह ने ईडर के राजा रायमलजी को राज्यच्युत कर वहां से निकाल दिया और उक्त राज्य पर अपना अधिकार स्थापितकर मलिकहुसैन बहमनी को ईडर का हाकिम नियत किया। इस अवसर पर रायमलजी ने महाराणा सांगाजी से सहायता के लिए प्रार्थना की। इसपर महाराणा ने गुजरात पर चढ़ाई करने का निश्चय कर बागड़ (डूंगरपुर) के राजा उदयसिंहजी को जोधपुर और मेड़ता के नरेशों को लाने के लिए भेजा[1]। जोधपुर के अधिपति राव गांगाजी सात हज़ार सेना सहित और मेड़ताधीश राव वीरमदेवजी पांच हज़ार सैनिकों को लेकर महाराणा के पास पहुंचे। सिरोही और बागड़ के राज्यों में होते हुए परम प्रतापी महाराणा सांगाजी अपनी विशाल सेना और सहायक नरेशों के सहित ईडर के इलाके में पहुंचे। ईडर का हाकिम हसन बहमनी, जिसको मुबारिज़ुलमुल्क का ख़िताब मिला हुआ था, महाराणा की चढ़ाई का हाल सुनकर मारे भय के व्याकुल हो गया और वहां से भागकर अहमदनगर के क़िले में पनाह ली। महाराणा ने सहायक नरेशों सहित बड़े समारोह से ईडर में प्रवेश किया और वहां के राज्य-सिंहासन पर रायमलजी को बिठाकर

महाराणा सांगाजी की ईडर पर चढ़ाई

(१) चतुरकुलचरित्र, भाग १, पृष्ठ ४१।

अहमदनगर के क़िले को जा घेरा। मुसलमानों ने क़िले के दरवाज़े बंदकर लड़ना शुरू किया। महाराणा की सेना में डूंगरसिंहजी चौहान नाम के एक सामंत थे[1]। उनके पुत्र कान्हसिंहजी ने इस युद्ध में बड़ी वीरता प्रदर्शित की। क़िले के किवाड़ लोहे के थे, जिनको तोड़ने के लिए जब हाथी बढ़ाया गया तो उसमें लगे हुए तीक्ष्ण भालों के कारण वह मुहरा न कर सका। यह देखकर वीर कान्हसिंहजी ने भालों के आगे खड़े होकर महावत से कहा कि मेरे ऊपर हाथी का मुहरा करा दे। हाथी ने मुहरा किया, जिससे उनके शरीर के तो टुकड़े टुकड़े हो गये, परंतु दुर्ग के किवाड़ टूट गये। कान्हसिंहजी के इस रोमांचकारी आत्मोत्सर्ग से राजपूतों का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने नंगी तलवारें लेकर क़िले के अंदर के संपूर्ण मुसलमानों को काट डाला। अहमदनगर को लूटकर गुजरात प्रांत के अन्य शहर वड़नगर, वीसलनगर इत्यादि को लूटते खसोटते चित्तौड़-नरेन्द्र राणा सांगाजी तो सहायक नरेशों सहित चित्तौड़ लौट आये और राव वीरमदेवजी वापस मेड़ते चले गये।

गुजरात के सुलतान मुजफ्फ़रशाह की सेना का महाराणा सांगाजी से परास्त होना

महाराणा सांगाजी ने गुजरात देश को बहुत कुछ बरबाद किया, जिसका बदला लेने के निमित्त गुजरात के सुलतान मुजफ्फ़रशाह ने युद्ध की सामग्री एकत्र करना शुरू किया। वि० सं० १५७७ के पौष (ई० स० १५२० दिसंबर) में एक लाख सवार और सौ हाथी तथा तोपखाने सहित मलिक अयाज़ ने मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया। उसकी सहायतार्थ बीसहज़ार सवार और बीस हाथियों की दूसरी सेना भी किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में भेजी गई। मांडू का सुलतान महमूद भी महाराणा के पूर्व के उपकार को विस्मरणकर मलिक अयाज़ से मिल गया। बागड़ प्रदेश में लूटमार करती हुई गुजराती सेना ने मंदसोर पहुंचकर वहां के क़िले पर घेरा डाला।

---

(१) डूंगरसिंहजी चौहान बालाजी के पुत्र थे। यह पहले बागड़ में रहते थे। फिर महाराणा सांगाजी की सेवा में आकर रहे। महाराणाजी ने इनको जागीर में बदनोर का परगना प्रदान किया। मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि यहां उनके बनवाये हुए तालाब, बावड़ियों और महलों के ध्वंसावशेष पाये जाते हैं। नैणसी की ख्यात; हस्तलिखित; पत्र २१, पृ० १।

महाराणा भी राव वीरमदेवजी, रायसेन के राजा सलहदी तंवर आदि सहायक नरेशों तथा विशाल सेना-सहित युद्ध के लिए चित्तोड़ से रवाना हुए और मंदसोर से १० कोस दूर नांदसा गांव में डेरा डाला। उनके आने की खबर मिलने पर मलिक अयाज़ को उनसे लड़ने का साहस न हुआ और वह संधि करके वहीं से वापस चला गया। इस प्रकार दिल्ली, मालवा और गुजरात के बादशाहों से महाराणा सांगाजी ने अठारह युद्ध किये। राव वीरमदेवजी ने प्रायः इन सभी युद्धों में महाराणा की सहायता की।

दिल्ली पर बाबर का अधिकार

वि० सं० १५८३ के वैशाख (ई० स० १५२६ अप्रेल) में काबुल के मुगल बादशाह ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में दिल्ली के अफ़ग़ान बादशाह इब्राहीम लोदी से युद्ध किया। इस लड़ाई में उसकी जीत हुई और बादशाह इब्राहीम लोदी युद्ध-क्षेत्र में मारा गया। बाबर दिल्ली के राज्य का स्वामी हुआ और कुछ महीनों बाद उसने आगरा भी जीत लिया।

महाराणा सांगाजी का बाबर से युद्ध

इब्राहीम लोदी के मारे जाने के बाद अफ़ग़ान अमीरों को यह ज्ञात होने लगा कि बाबर हिन्दुस्तान में रहकर अफ़ग़ानों को नष्ट करना और अपना राज्य दृढ़ करना चाहता है इसलिए उसे निकालने के लिये उन्होंने आपस में एकता स्थापित की और सबने मिलकर महाराणा सांगाजी से प्रार्थना की कि यदि आप बाबर को हिन्दुस्तान से निकाल दें तो हम आपकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। वीरशिरोमणि महाराणा सांगाजी, जो बड़े युद्धप्रिय थे, उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके बाबर से युद्ध करने की तैयारी करने लगे। उस समय वे ही भारत में प्रतापी और शक्ति-सम्पन्न नरेश थे। ८० हज़ार अश्वारोही सैनिक, ७ बड़े प्रतिष्ठित राजा, ९ राव, १०४ रावल और रावत पदवी धारी सामंत तथा ५०० लड़ाई के हाथी महाराणा के साथ युद्ध में उपस्थित रहते थे। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चंदेरी, बूंदी, गागरौन, रामपुरा और आबू आदि राज्यों के नरेश इनकी अधीनता स्वीकार कर इनको कर देते थे। बाबर हिन्दुस्तान में इब्राहीम लोदी को नहीं, किन्तु महाराणा सांगाजी को ही अपना सब से भयङ्कर शत्रु समझता

था। इधर महाराणा को भी ज्ञात हो गया था कि बाबर इब्राहीम लोदी से बहुत ज्यादा ज़बर्दस्त और ताक़तवर दुश्मन है। इसलिए अपनी शक्ति बढ़ाने के वास्ते रणथंभोर से कुछ दूर खंडार के क़िले पर, जो मकन के बेटे हसन के अधिकार में था, उन्होंने चढ़ाई कर दी। हसन को महाराणा से युद्ध करने की हिम्मत न हुई। खंडार को जीतकर महाराणा सांगाजी बयाना की तरफ़ बढ़े और वहां का क़िला भी जीत लिया। इस घटना के सम्बन्ध में अपनी दिनचर्या में बाबर ने लिखा है—

"हमारी सेना में जब यह खबर पहुंची कि राणा सांगा शीघ्रता से आ रहा है, उस समय हमारे गुप्तचर न तो बयाने के क़िले में जा सके और न वहां कोई खबर ही पहुंचा सके। बयाने की सेना कुछ दूर निकल गई, परन्तु राणा से हारकर भाग निकली। इसमें संगरखां मारा गया। कितावेग ने एक राजपूत पर हमला किया, जिसने उसी के एक नौकर की तलवार छीनकर बेग के कंधे पर ऐसा वार किया कि वह फिर राणा के साथ की लड़ाई में शामिल ही न हो सका। क़िस्मती, शाहमंसूर, बर्लास और अन्य भागे हुए सैनिकों ने राजपूत सेना की वीरता और पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की"।

वि० सं० १५८३ फाल्गुन शुक्ला १० (ई० स० १५२७ ता० ११ फरवरी) को सांगा का मुक़ाबला करने के लिए बाबर रवाना हुआ, परन्तु कुछ दिनों तक आगरे ठहरकर सेना को तैयार करने में लगा रहा। फिर वहां से जल का सुभीता न होने के कारण सीकरी चला गया। सीकरी में बयाने का हाकिम मेंहदी ख्वाजा भी राणा सांगा से पराजित होकर उससे आ मिला। यहां बाबर को खबर मिली कि महाराणा सांगा भी बसावर (बयाना से १० मील वायव्य कोण में) के पास आ पहुंचा है।

वि० सं० १५८३ चैत्र कृष्णा ६ (ई० स० १५२७ ता० २२ फरवरी) को बाबर का अब्दुलअज़ीज नाम का सेनापति सीकरी से आगे बढ़कर खानवा आ पहुंचा। उसपर महाराणा ने हमला किया, जिसकी खबर पाकर बाबर ने उसकी मदद के लिए मुहिब्बअली खलीफ़ा, मुल्लाहुसैन आदि की मातहती में एक फ़ौज भेजी। राजपूतों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई। उन्होंने बाबर

की सेना को परास्तकर उसका झंडा छीन लिया, मुल्ला निआमत, मुल्ला दाऊद प्रभृति अनेक बड़े बड़े अफसरों को मार डाला और बहुतसे अफसरों को क़ैद कर लिया। मुहिबअली भी, जिसको मदद के वास्ते बाबर ने पीछे से भेजा था, कुछ न कर सका। उसके मामा ताहरतिबरी ने राजपूतों पर धावा किया, परन्तु वह भी क़ैद हुआ। मुहिबअली भी लड़ाई में गिर गया, लेकिन उसके साथी उसको उठा ले गये। राजपूतों ने मुगलों की सेना को परास्तकर दो मील तक उसका पीछा किया। इस सम्बन्ध में मिस्टर स्टेन्ली-लेनपूल ने लिखा है—"अपने गौरव और शौर्य के उच्च भावों से पराक्रम और बलिदान के लिए राजपूतों को जो उत्तेजना मिलती थी उसका बाबर के अर्ध सभ्य सिपाहियों के ध्यान में आना भी कठिन था"।

बयाने की लड़ाई में महाराणा की विशाल सेना से पराजित होकर लौटे हुए शाहमंसूर, क़िस्मती वग़ैरह से राजपूतों की वीरता की प्रशंसा सुनकर मुगल-सेना पहले ही तो हतोत्साह हो गई थी और अब्दुलअज़ीज़ की हार ने तो उसे और भी निराश कर दिया। इन्हीं दिनों सुलतान क़ासिमहुसैन, अहमद-यूसफ़ आदि के साथ काबुल से ५०० सिपाही आये, जिनके साथ नजूमी (ज्योतिषी) मुहम्मदशरीफ भी था। हिम्मत बढ़ाने की जगह इस ज्योतिषी ने भविष्य-फल के कथन से सैनिकों को और भी हताश कर दिया। उक्त ज्योतिषी ने कहा—'मंगल का तारा पश्चिम में है, इसलिए पूर्व से लड़नेवालों से हम पराजित होंगे'। स्वयं बाबर ने अपनी दिनचर्या में लिखा है—"इस समय सेना के छोटे बड़े सभी अफ़सर महाराणा के भय से व्याकुल हो रहे थे, उनके दिल पर राजपूतों की वीरता का ऐसा सिक्का जम गया था कि वीरता की बात भी किसी की ज़बान से नहीं निकलती थी। वज़ीर, जिनका कर्तव्य ही नेक सलाह देना था तथा अमीर, जो राज्य की संपत्ति भोगते थे, वीरता की बात भी नहीं कहते थे और न उनकी सलाह वीरपुरुषों के योग्य थी"। बाबर ने अपनी सेना को उत्साहित करने के लिए खाइयां खुदवाईं और सेना के रक्षार्थ उसके पीछे सात सात आठ आठ गज की दूरी पर गाड़ियां खड़ी कराके उन्हें परस्पर जंज़ीरों से जकड़वा दिया। जहां गाड़ियां नहीं थीं वहां काठ के तिपाये गड़वाये और सात

सात आठ आठ गज़ लंबे चमड़े के रस्सों से बांधकर उन्हें मज़बूत करा दिया। इस तैयारी में बीस पचीस दिन लगे।

रक्षा के इन उपायों के अतिरिक्त बाबर ने धार्मिक भावों से भी सैनिकों का उत्साह बढ़ाने का प्रयत्न किया। उसने कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब की सोने चांदी की सुराहियां और प्याले तथा मजलिस का आरायशी सामान मँगवाकर उसको तुड़वा दिया और गरीबों को बांट दिया। उसने अपनी दाढ़ी न कटवाने की भी प्रतिज्ञा की और करीब ३०० सिपाहियों ने उसका अनुकरण किया। इसके अतिरिक्त अपने अफ़सरों को बुलाकर उसने बड़े जोश से मज़हब के उसूल बतलाये कि 'जो मनुष्य संसार में आता है वह अवश्य मरता है, खुदा की ज़ात के सिवाय सब जहान फानी (नाशवान) है। जो इस संसाररूपी सराय में आता है उसको एक दिन यहां से अवश्य जाना पड़ता है, इसलिए बदनाम होकर मरने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूं कि कीर्ति के साथ मेरी मृत्यु हो तो अच्छा होगा। परमात्मा ने हमपर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाज़ी कहलावेंगे, इसलिए सबको कुरान हाथ में लेकर कसम खानी चाहिये कि प्राण रहते कोई भी युद्ध में पीठ दिखाने का विचार न करे'।

इसके बाद कुरान को हाथ में लेकर सिपाहियों ने भी ऐसी ही प्रतिज्ञा की तथापि बाबर को अपनी जीत का विश्वास नहीं हुआ और उसने रायसेन के सरदार सलहदी तंवर द्वारा सुलह की बातचीत शुरू की, परंतु महाराणा ने अपनी सेना को मुसलमानों की अपेक्षा बहुत अधिक बलवान् समझकर सुलह करना स्वीकार नहीं किया। इस तरह संधि की बात कई दिनों तक चलकर बंद हो गई। इन दिनों बाबर बड़ी तेज़ी से अपनी फ़ौज की तैयारी करता रहा। इतने दिनों तक युद्ध न कर बाबर को युद्ध के लिए सन्नद्ध होने का इतना अवकाश प्रदान कर महाराणा ने बड़ी भूल की।

विलम्ब करना अनुचित समझकर वि० सं० १५८४ चैत्र शुक्ला ११ (ई० स० १५२७ ता० १३ मार्च) को बाबर ने सेना के साथ कूच किया और एक कोस

जाकर ठहरा। युद्ध के योग्य जो जगह सोची गई थी उसके आगे खाइयां खुदवा कर उसने तोपें खड़ी कीं, जंज़ीरों से उन्हें अच्छी तरह जकड़वाया, उनके पीछे जंज़ीरों से बंधी हुई गाड़ियों और तिपाइयों की आड़ में तोपची तथा बंदूकची रक्खे। तोपों की दाहिनी और बाईं तरफ़ मुस्तफा रूमी तथा उस्तादअली खड़े हुए और तोपों के पीछे कई भागों में विभक्त की हुई सारी सेना खड़ी की गई। सेना का अग्रभाग (हरावल) दो भागों में बांटा गया। दक्षिणी भाग में चीनतीमूर, सुलेमानशाह, यूनसअली, शाह मंसूर बरलास आदि तथा बाईं ओर अलाउद्दीन लोदी (आलमखां), शेखज़ैन, मुहिबअली, शेरखां आदि अफसर अपने अपने सैन्य सहित खड़े हुए। इन दोनों के बीच कुछ हटकर बाबर घोड़े पर सवार था। अग्रभाग से दक्षिण पार्श्व में हुमायूं की अध्यक्षता में मीर हामा, मुहम्मद कोकलताश, खानखाना दिलावरखां, मलिक दाद करांनी, कासिमहुसेन, सुलतान और हिन्दूबेग आदि अफसरों की सेनाएं थीं। हुमायूं के अधीनस्थ सैन्य के निकट ईराक़ का राजदूत सुलेमान आक़ा और सीस्तान का हुसेन आक़ा युद्ध देखने के लिए खड़े हुए। इससे भी दाहिनी तरफ तर्दीक, मलिककासिम और बाबा कश्का की अध्यक्षता में लड़ाई के समय शत्रु को घेरनेवाली एक सेना थी। इसी तरह हरावल के वाम पार्श्व में खलीफ़ा के निरीक्षण में महदी ख़्वाजा, मुहम्मद सुलतान मिरज़ा, आदिल सुलेमान, अब्दुलअज़ीज़ और मुहम्मदअली अपनी सेना के साथ उपस्थित थे। इस सैन्य से बाईं तरफ़ मुमीन आताक़ और रुस्तम तुर्कमान की अध्यक्षता में घेरा डालनेवाली दूसरी सेना खड़ी थी।

इस युद्ध में हसनखां मेवाती और इब्राहीम लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी अपनी अपनी सेनाओं सहित महाराणा से आ मिले। मारवाड़ के राव गांगाजी, आंबेर के राजा पृथ्वीराजजी, ईडर के राजा भारमलजी, मेड़तिया वीरमदेवजी, नरसिंहदेवजी, वागड़ (डूंगरपुर) के रावल उदयसिंहजी, चौहान चन्द्रभानजी, चौहान माणिकचन्दजी, दिलीपजी, रावत रत्नसिंहजी कांधलोत (चूंडावत), रावत जोगाजी सारंगदेवोत, नरवदजी हाड़ा, मेदिनीरायजी, वीरसिंहदेवजी, झाला अज्जाजी, सोनगरा रामदासजी, परमार गोकुलदासजी,

खेतसीजी, रायमलजी राठोड़ (जोधपुर की सेना का मुखिया), देवलिया के रावत बाघसिंहजी और बीकानेर के कुंवर कल्याणमलजी भी ससैन्य महाराणाजी के साथ थे। इस प्रकार महाराणाजी के झंडे के नीचे प्रायः सारे राजपूताने के राजा या उनकी सेना और कई बाहरी रईस, सरदार, शाहज़ादे आदि थे। महाराणाजी की सारी सेना[1] चार भागों—हरावल, चंदावल, दक्षिण पार्श्व और

(१) खानवा के युद्ध में महाराणा के साथ कितनी सेना थी, इसका ब्योरेवार विवरण ख्यातों में तो मिलता नहीं और पिछले इतिहासलेखकों ने उसकी जो संख्या बतलाई है, वह बाबर की दिनचर्या की पुस्तक से ली गई है। बाबर ने अपनी सेना की संख्या बताने में तो मौन ही धारण किया और उक्त पुस्तक में दिये हुए फ़तहनामे में महाराणा की सेना की जो संख्या दी है, वह कल्पनाप्रसूत है। उसमें महाराणा तथा उसके साथ के राजाओं, सरदारों आदि की सेना की संख्या नीचे अनुसार दी है—

राणा सांगा	१००००० सवार
सलाहउद्दीन (सलहदी, शल्यहति)	३०००० ,,
रावल उदयसिंह (बागड़ का)	१२००० ,,
मेदिनीराय	१२००० ,,
हसनखां मेवाती	१०००० ,,
महमूदख़ां (सिकन्दर लोदी का पुत्र)	१०००० ,,
भारमल (ईडर का)	४००० ,,
नरपत (नरबद) हाड़ा	७००० ,,
सरदी (? शत्रुसेन खीची)	६००० ,,
बिरमदेव (वीरमदेव मेड़तिया)	४००० ,,
चन्द्रभान चौहान	४००० ,,
भूपतराम (सलहदी का पुत्र)	६००० ,,
मानिकचंद चौहान	४००० ,,
दिलीपराय	४००० ,,
गांगा	३००० ,,
कर्मसिंह	३००० ,,
डूंगरसिंह	३००० ,,
कुल	२२२०००

इस प्रकार २२२००० सवार बाबर ने गिनाये हैं। यदि सलहदी के पुत्र भूपत के ६००० सवार सलहदी की सेना के अंतर्गत मान लिये जायँ, तो भी बाबर की बतलाई हुई

वाम पार्श्व में विभक्त थी तथा स्वयं महाराणा साहब हाथी पर सवार होकर सैन्य-संचालन कर रहे थे।

बाबर की कुल सेना कितनी थी, यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता तथापि जहांतक अनुमान होता है, बाबर के पास कम से कम पचास हज़ार सेना थी।

वि० सं० १५८४ चैत्र शुक्ला १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को सवेरे ६॥ बजे के क़रीब युद्ध प्रारम्भ हुआ। राजपूतों ने सर्व प्रथम मुग़ल-सेना के दक्षिण पार्श्व पर हमला किया, जिससे मुग़ल-सेना का वह पार्श्व बिल्कुल कमज़ोर हो गया। अगर थोड़ी देर तक उनके सहायतार्थ सेना न पहुंचती तो मुग़लों की हार निश्चित थी। राजपूतों ने बड़े ज़ोर शोर से बाबर की सेना पर हमला किया, परन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय महाराणा के सिर में एक तीर लगा, जिससे वे मूर्छित हो गये। उनकी यह अवस्था देख सम्पूर्ण राजपूत सरदारों को बड़ी चिन्ता हुई। मुग़लों ने उपयुक्त अवसर पाकर बड़ी प्रचंडता से जहां महाराणा अचेतनावस्था में थे उसी तरफ़ आक्रमण किया। यह देखकर राव वीरमदेवजी ने बढ़ते हुए मुग़ल दल को रोका और उस भीषण संग्राम से महाराणा साहब को सकुशल बाहर निकाला। इस युद्ध में राव वीरमदेवजी के अनेक घाव लगे। इसके पीछे—इस डर से कि राजपूत सेना महाराणा की अनुपस्थिति से हताश न हो जाय—कुछ सरदारों ने सलूंबर के रावत रत्नसिंहजी से हाथी पर सवार होने और सैन्य-संचालन करने को कहा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज राज्य छोड़ चुके हैं इसलिए मैं एक क्षण के लिए भी राज्यचिह्न धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो कोई राज्य-छत्र धारण

सेना २१६००० होती है और बाबर ने एक स्थल पर राणा की सेना में २०१००० सवार होना बतलाया है, जो विश्वास योग्य नहीं है। पिछले मुसलमान इतिहास-लेखकों ने भी अतिशयोक्ति समझकर बाबर के इस कथन पर विश्वास नहीं किया। अपनी पुस्तक तबकाते अकबरी में अकबर के बख़्शी निज़ामुद्दीन ने राणा सांगा की सेना १२०००० (अर्सकिन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया; जि० १, पृ० ४६६) और मआसिरुल उमरा में शाह नवाज़ख़ां (समसामुद्दौला) ने १००००० लिखा है (मआसिरुल उमरा, जिल्द २, पृ० २०२, बंगाल एशियाटिक सोसायटी का संस्करण), जो संभव है।

करेगा उसकी पूर्णरूप से सहायता करूंगा और प्राण रहते तक शत्रु से लड़ूंगा। इसपर झाला अज्जा की अध्यक्षता में सारी सेना लड़ने लगी। इधर दोनों सेनाओं में घमसान युद्ध होता रहा। राजपूत बड़ी वीरता-पूर्वक तलवारों और भालों से शत्रुओं का संहार करने लगे और बड़ी निर्भयता के साथ बढ़ते बढ़ते बाबर के निकट पहुंच गये, परन्तु उस समय मुगलों ने तोपें चलानी शुरू कीं। धड़ाधड़ गोलों की वर्षा होने लगी। इससे राजपूतों को पीछे हटना पड़ा। राजपूत अपनी प्राचीन रीति के अनुसार लड़ रहे थे। बाबर की नवीन व्यूह-रचना से वे अनभिज्ञ थे इसलिए शत्रुओं ने चारों ओर से उनको घेर लिया और सामने से वे तोपों से गोले बरसाने लगे। इससे राजपूत सेना का बड़ा संहार होने लगा। बागड़ के राजा उदयसिंहजी, चौहान माणिकचन्द्रजी, चौहान चन्द्रभानजी, रत्नसिंहजी चूंडावत, अज्जाजी झाला, रामदासजी सोनिगरा, गोकुलदासजी परमार, राठोड़ रायमलजी मेड़तिया, रत्नसिंहजी मेड़तिया, खेतसी मेड़तिया आदि समस्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजपूत योद्धा इस लड़ाई में काम आये। राजपूत पराजित तो हुए, परन्तु इन्होंने युद्ध में जो असीम साहस और वीरता से शत्रुओं का मुकाबला किया, उसकी इतिहासवेत्ताओं ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इस युद्ध से बाबर भी इतना कमज़ोर हो गया कि वह राजपूताने पर चढ़ाई करने का साहस न कर सका।

अचेतनावस्था में महाराणा साहब को लेकर उनके सरदार जब बसवा (जयपुर-राज्य में) गाँव में पहुंचे तब उनको होश हुआ और उन्होंने पूछा कि युद्ध का क्या परिणाम हुआ। राजपूतों के पराजय का वृत्तान्त सुनकर उनको मार्मिक वेदना हुई और ऐसे अवसर पर युद्धक्षेत्र से उनको इतनी दूर ले आने का सभी सरदारों को बहुत उपालंभ दिया। इस पराजय से वीरवर राणा सांगाजी को इतनी आत्मग्लानि हुई कि उन्होंने इस बात का प्रण कर लिया कि जब तक बाबर को न जीत लूंगा तब तक चित्तोड़ वापस नहीं जाऊंगा।

बसवा से महाराणा रणथंभोर के क़िले में चले गये। खानवा के युद्ध में चंदेरी के राजा मेदिनीराय को राणा सांगाजी का एक प्रधान सहायक समझ-

महाराणा सांगाजी का स्वर्गवास

कर बाबर ने उसपर आक्रमण किया और कालपी, ईरिच तथा कचवा होता हुआ वि० सं० १५८४ माघ कृष्णा १३ (ई० स० १५२८ ता० १६ जनवरी) को चंदेरी पहुंचा। बदला लेने के लिए इस अवसर को उपयुक्त जानकर महाराणा सांगाजी ने भी कितने ही राजपूत सरदारों को साथ लेकर विशाल सेना सहित चंदेरी को प्रस्थान किया और कालपी के पास ईरिच गांव में डेरा डाला। वहां पर कुछ राजपूतों ने, जो नये युद्ध के विरोधी थे, महाराणा को विष दे दिया[1]। धीरे धीरे विष का प्रभाव चढ़ता देखकर महाराणा के सामन्त उनको वहां से लेकर लौटे। मार्ग में कालपी स्थान में वि० सं० १५८४ माघ शुक्ला ६ (ई० स० १५२८ ता० ३० जनवरी) को परमप्रतापी महाराणा सांगाजी अपनी अक्षयकीर्ति संसार में छोड़कर स्वर्ग को सिधार गये।

महाराणा सांगाजी के पश्चात् चित्तोड़ के राज्यासन पर महाराणा रत्नसिंहजी विराजमान हुए। बाबर से महाराणा सांगाजी का युद्ध होने के समय तक तो जोधपुर और मेड़ते के राज्यों में परस्पर बड़ी प्रीति का बर्ताव रहा, परन्तु इसके अनन्तर जोधपुर नरेश राव गंगदेवजी के राजकुमार मालदेवजी के युवा होने पर इन राज्यों में परस्पर अनेक झगड़े शुरू हो गये। मालदेवजी बड़े ईर्ष्यालु स्वभाव के थे। वे बीकानेर और मेड़ते की स्वाधीनता को सहन नहीं कर सके। मेड़ते के साथ उन्होंने अनेक सीमा-सम्बन्धी झगड़े शुरू कर दिये, जिससे इन राज्यों में परस्पर बड़ी शत्रुता हो गई।

जोधपुर और मेड़ते के राज्यों का परस्पर विरोध

राव गांगाजी के तीसरे भाई सेखाजी ने, जिनको जागीर में जोधपुर राज्य की ओर से पीपाड़ का ग्राम मिला हुआ था, जोधपुर राज्य पर अपना अधिकार करने की इच्छा से नागोर के क़िलेदार दौलतखां को अपना सहायक बनाकर विक्रम संवत् १५८८

नागोर के क़िलेदार दौलतखां का राव गांगाजी से पराजय

(१) हरविलास सारडा, महाराणा सांगा; पृ० १२६-२७।

मुंशी देवीप्रसादजी का कथन है कि महाराणा मुकाम एरिच से बीमार होकर पीछे लौटे और रास्ते में ही जान देकर वचन निभा गये कि मैं फतह किये बिना चित्तोड़ को नहीं जाऊंगा (महाराणा संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० १४)।

में जोधपुर पर आक्रमण किया। बीकानेर के राव जैतसिंहजी जोधपुर से सहायतार्थ बुलाये जाने पर राव गांगाजी के पक्ष में सम्मिलित हुए। सेखाजी का मुक़ाबला करने के लिए राव गांगाजी और राव जैतसिंहजी ये दोनों नरेश बड़ी विशाल सेना लेकर आगे बढ़े। सेवकी ग्राम के पास दोनों सेनाओं का बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। राव गांगाजी की जीत हुई और सेखाजी तथा उनके सहायक दौलतख़ां को पराजित होकर युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। पारस्परिक वैमनस्य के कारण इस अवसर पर राव वीरमदेवजी राव गांगाजी की सहायता करने के लिए युद्ध में नहीं गये। आंख में तीर लग जाने से दौलतख़ां का हाथी युद्ध-क्षेत्र से भाग निकला। वह भागता हुआ मेड़ते जा पहुंचा और उसका पीछा करते हुए राजकुमार मालदेवजी भी तुरन्त ही वहां पहुंचे और राव वीरमदेवजी को उसे सुपुर्द करने के लिए कहलाया, परन्तु उन्होंने हाथी को उन्हें देना स्वीकार न कर दौलतख़ां के पास नागोर भिजवा दिया। इस कारण जोधपुर और बीकानेर के राज्यों में पहले से भी अधिक शत्रुता हो गई।

हुमायूं का दिल्ली के और विक्रमादित्यजी का चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठना

वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में बाबर का देहान्त हो जाने पर हुमायूं दिल्ली का बादशाह हुआ। इसके दूसरे ही वर्ष वि० सं० १५८८में चित्तौड़ के महाराणा रत्नसिंहजी बूंदी के राव सूरजमलजी से लड़कर काम आये। उनके पीछे उनके कनिष्ठ भ्राता विक्रमादित्यजी मेवाड़ की गद्दी पर बैठे।

मारवाड़ के सिंहासन पर राव मालदेवजी का आरूढ़ होना

वि० सं० १५८९ ज्येष्ठ शुक्ला ५ (ई० स० १५३२ ता० ६ मई) को युवराज मालदेवजी ने अपने वृद्ध पिता राव गांगाजी को झरोखे से गिराकर मार डाला और स्वयं मारवाड़ के सिंहासन पर बैठ गये। गद्दी पर बैठते ही राव मालदेवजी ने मेड़ते पर चढ़ाई करने का इरादा किया, परन्तु इनकी स्वार्थपरायणता और अत्याचार से असंतुष्ट होकर इनके सरदारों ने मेड़ते की चढ़ाई में शामिल होने से इन्कार कर दिया। इसलिए विवश होकर इन्होंने मेड़ते से सन्धि तो करली, परन्तु इनके हृदय से द्वेष और कपट के भाव दूर न हुए।

वि० सं० १५८६ के आश्विन (ई० स० १५३२ सितम्बर) मास में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने, जो पहले महाराणा सांगाजी की शरण में रह चुका था, पूर्व के उपकारों को भूलकर अपने सेनापति मुहम्मदशाह आसीरी को बड़ी विशाल सेना देकर चित्तोड़ पर आक्रमण करने को भेजा और कुछ समय पीछे स्वयं इस आक्रमण में सम्मिलित हो गया। सहायतार्थ निमन्त्रित किये जाने पर राव वीरमदेवजी भी सेना सहित चित्तोड़ पहुंचे। इस गाढ़े अवसर पर चित्तोड़ की मदद के लिए जोधपुर और बूंदी के राज्यों की ओर से भी सेनायें भेजी गई थीं। महाराणा विक्रमादित्यजी चित्तोड़ जैसे सुविशाल राज्य के शासन करने के योग्य नहीं थे। उनके अनुचित व्यवहार के कारण राज्य के सभी सरदार उनसे अप्रसन्न थे, जिससे चित्तोड़-राज्य में पहले के समान मुसलमानों से युद्ध करने की शक्ति नहीं रह गई थी तथापि राजपूतों ने बड़े प्रबल वेग से आक्रमण किया। इस युद्ध के लिए बहादुरशाह ने पहले से ही बड़ी तैयारियां कर रक्खी थीं। एक फिरंगी की अध्यक्षता में उसने तोपखाना भी बनवाया था, जिसका मुख्य उद्देश्य चित्तोड़ दुर्ग को नष्ट कर डालना था। मुसलमानों का पक्ष सबल देखकर महाराणा की माता हाड़ी राणी कर्मवती ने सन्धि का प्रस्ताव भेजकर सुलतान से कहलाया कि महमूद खिलजी से लिये हुए मालवे के ज़िले लौटा दिये जावेंगे और महमूद का जड़ाऊ मुकुट और सोने की कमर-पेटी भी वापस दे दी जावेगी। इसके सिवा सौ हाथी, सौ घोड़े और बहुतसा नक़द रुपया भी देने की प्रतिज्ञा की। बहादुरशाह ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उपर्युक्त सब बहुमूल्य वस्तुएं लेकर वि० सं० १५८६ चैत्र कृष्णा १४ (ई० स० १५३३ ता० २४ मार्च) को चित्तोड़ से लौट गया।

चित्तोड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चढ़ाई

महाराणा विक्रमादित्यजी ने अब भी अपने चालचलन को नहीं सुधारा। राज्य के सभी बड़े बड़े सरदार उनके बर्ताव से अप्रसन्न होकर अपने अपने ठिकानों में वापिस चले गये। इस प्रकार दिन दिन चित्तोड़ राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी। उसकी निर्बल दशा देखकर बहादुरशाह उसका अस्तित्व मिटा देने के उद्देश्य से

बहादुरशाह का चित्तोड़ पर पुनः आक्रमण

वि० सं० १५९२ (ई० स० १५३५) में बड़ी विशाल सेना लेकर मांडू से रवाना हुआ। चित्तोड़ राज्य की इस दुर्व्यवस्था से राव वीरमदेवजी को, जो सदैव से इस राज्य के परम हितैषी थे, बहुत ही दुःख हुआ।

बहादुरशाह के पहले आक्रमण के अवसर पर उन्होंने इतनी अपमानजनक संधि करने का बड़ा विरोध किया था, परंतु उनकी सम्मति के प्रतिकूल चित्तोड़ राज्य के गौरव का कोई विचार न कर जब सुलतान से संधि करली गई तो ये बहुत ही असंतुष्ट होकर अपनी राजधानी मेड़ते को वापस चले आये। राव वीरमदेवजी की भतीजी मीरांबाई से महाराणा द्वेष रखते थे। वे राव वीरमदेवजी के साथ भी पहले के समान आदर और प्रीति का व्यवहार नहीं रखते थे। इसी से बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई के अवसर पर चित्तोड़ से सहायतार्थ बुलायेजाने पर भी राव वीरमदेवजी स्वयं वहां नहीं गये, परन्तु पहले की प्रीति और सम्बन्ध का विचारकर अपनी सेना भेज दी। राजपूतों ने यद्यपि बड़ी बहादुरी से मुसलमानों का मुक़ाबला किया, परन्तु बहादुरशाह की सेना के बहुत अधिक होने और चित्तोड़ के क़िले में खाने पीने का सामान घट जाने से उन्हें अंत में पराजित होना पड़ा और क़िले पर बहादुरशाह ने अधिकार कर लिया। इस युद्ध में कई हज़ार राजपूत और मेड़तियों की सारी सेना काम आई।

चित्तोड़ पर बहादुरशाह का आधिपत्य तो हो गया, परन्तु उसका उपभोग वह अधिक समय तक न कर सका, क्योंकि चित्तोड़ विजय के एक मास

हुमायूं से हारकर बहादुरशाह का भागना

पश्चात् ही दिल्ली के बादशाह हुमायूं ने उसपर चढ़ाई की। मंदसोर के पास बहादुरशाह से हुमायूं का युद्ध हुआ, जिसमें बहादुरशाह की हार हुई और मालवा तथा गुजरात के प्रान्तों पर हुमायूं का अधिकार हो गया। बहादुरशाह की मालवा लेने और चित्तोड़ जीतने की सारी खुशी काफ़ूर हो गई और उसको अपने प्राण बचाने के लिए तत्काल भागना पड़ा।

बहादुरशाह के इस प्रकार पराजित होकर भाग जाने से चित्तोड़ की रक्षार्थ नियत की हुई उसकी सेना में बड़ी खलबली मच गई। इस अवसर को

चित्तोड़ दुर्ग पर महाराणा विक्रमादित्यजी का फिर अधिकार होना

उपयुक्त समझकर मेवाड़ के सरदारों ने पांच सात हज़ार सेना इकट्ठी कर चित्तोड़ पर हमला किया। बहादुरशाह की सेना को, जो पहले से ही व्याकुल हो रही थी, उनसे मुक़ाबला करने की हिम्मत न हुई। साधारणसा युद्ध कर वह दुर्ग से भाग निकली और चित्तोड़ पर मेवाड़वालों का फिर अधिकार हो गया।

चित्तोड़ का दुर्ग सामन्तों की सहायता से यद्यपि पुनः महाराणा विक्रमादित्यजी के अधिकार में आ गया, परन्तु इतना कष्ट उठाकर भी इन महाराणा ने

महाराणा विक्रमादित्यजी का वणवीर के हाथ से मारा जाना

कुछ अनुभव प्राप्त नहीं किया और न अपने आचरण को ही सुधारा। सरदारों के साथ पूर्ववत् ये फिर अनुचित बर्ताव करने लगे, जिससे सारे सरदार बिगड़ उठे। ऐसी दुर्दशा देखकर महाराणा रायमलजी के सुप्रसिद्ध राजकुमार पृथ्वीराजजी का अनौरस (पासवानिया) पुत्र वणवीर चित्तोड़ आया और महाराणा का प्रीतिपात्र होकर उनका मुसाहिब बन गया। वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में एक दिन रात के समय इस निर्दयी ने महाराणा को खड्ग के प्रहार से मार डाला और उनके कनिष्ठ भ्राता उदयसिंहजी का भी उसी समय वध करना चाहा, परन्तु उनकी परम स्वामीभक्त धाय पन्ना ने उनको तो तुरन्त छिपा दिया और उनके स्थान में अपने पुत्र को पलंग पर सुला दिया। हत्यारे वणवीर ने धाय के पुत्र को कुमार उदयसिंहजी समझकर तलवार के एक ही वार से मार डाला। राजकुमार उदयसिंहजी को साथ लेकर पन्ना रात में ही गुप्त रूप से वहां से भाग निकली और कुंभलगढ़ के क़िलेदार आशा देपुरा के यहां, जो जाति का महाजन था, शरण ली।

वणवीर बड़ा घमंडी था। उसके व्यवहार से मेवाड़ के सभी सरदार अप्रसन्न हो गये और कुलीन न होने से उससे घृणा करने लगे। कुमार उदय-

वणवीर को परास्त कर महाराणा उदयसिंहजी का चित्तोड़ के सिंहासन पर आरूढ होना

सिंहजी के जीवित रहने का हाल उनको मालूम हुआ तब वे उनसे मिल गये और उनको राजगद्दी पर विठाकर अपना स्वामी मान लिया। सरदारों की फ़ौज लेकर उदयसिंहजी चित्तोड़ की तरफ़ चले। मावली गाँव के पास वणवीर ने युद्ध किया,

परन्तु परास्त होकर वह अपने कुटुम्ब सहित गुजरात की तरफ़ भाग गया। वणवीर को हराकर वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में महाराणा उदयसिंहजी ने अपने पैतृक राज्य को प्राप्त किया।

इस प्रकार इधर दिल्ली, चित्तोड़, मालवा तथा गुजरात के राज्यों में लगातार भीषण युद्ध हो रहे थे और उधर जोधपुराधीश राव मालदेवजी उपयुक्त अवसर देखकर अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। आस पास के अनेक प्रदेशों को जीतकर उन्होंने अपने राज्य के विस्तार को बहुत बढ़ा लिया था। वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८) के वैशाख मास में उन्होंने भाद्राजून के सिंधल राठोड़ों पर चढ़ाई की, जिसमें वीरमदेवजी ने उनका साथ दिया और उनकी विजय हुई। सिंधलों को परास्तकर जब राव मालदेवजी जोधपुर लौटे तब बहुत ही प्रीति दिखाकर राव वीरमदेवजी को भी वे अपने साथ जोधपुर ले गये, परन्तु वहां पहुंचकर उन्होंने छल-द्वारा मेड़ते को विजय करने का प्रपंच रचा। बाह्यप्रेम दिखाकर उन्होंने राव वीरमदेवजी को तो अपने पास जोधपुर में रक्खा और अक्षयराजजी बीदावत की अध्यक्षता में अपनी सेना को मेड़ते की ओर भेजा। अजमेर के क़िलेदार दौलतख़ां को भी, यह लोभ देकर कि मेड़ते को जीतकर आपस में आधा आधा बांट लेंगे, राव मालदेवजी ने अपना सहायक बना लिया, परन्तु गुप्त रूप से अपने सेनापति को आदेश कर दिया कि मेड़ता जीत लेने पर दौलतख़ां को वहां से निकाल देना।

भाद्राजून के सिंधल राठोड़ों की चढ़ाई में राव वीरमदेवजी का मालदेवजी की सहायता करना

राव वीरमदेवजी की अनुपस्थिति के कारण सहज ही में मेड़ते पर शत्रुओं का अधिकार हो गया। जोधपुर के सेनापति अक्षयराजजी ने मेड़ते पर कब्ज़ा होते ही अपने स्वामी के संकेतानुसार दौलतख़ां को वहां से निकाल दिया, जिससे लज्जित होकर उसको अजमेर का रास्ता लेना पड़ा। राव मालदेवजी की यह छल-पूर्ण कार्रवाई वीरमदेवजी को विदित नहीं हुई।

राव मालदेवजी का कपट से मेड़ते पर अधिकार करना

इतना छल और विश्वासघात करने पर भी राव मालदेवजी मेड़ते पर

अपना अधिकार स्थिर न रख सके। राव दूदाजी के भाई वरसिंहजी के पोते गांगाजी ने, जो मेड़ता-राज्य के अधीन रीयां के जागिरदार थे, यह खबर सुनते ही मेड़ते के उद्धार के लिए प्रस्थान किया और बड़ी वीरता से युद्ध करके जोधपुर की सेना को वहां से निकाल दिया। इस प्रकार मेड़ते को शत्रुओं के अधिकार से मुक्तकर बन्धु-हितैषी गांगाजी ने तुरन्त इन घटनाओं की सूचना राव वीरमदेवजी के पास जोधपुर भेजी। इस समाचार के पहुंचने पर राव वीरमदेवजी को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने तुरन्त मेड़ते को प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर उन्होंने अपने भाई गांगाजी के अद्वितीय स्नेह और शौर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इसके अनन्तर तत्काल ही दौलतखां से उसकी दग़ाबाजी का बदला लेने के लिए अजमेर पर आक्रमण कर दिया।

मेड़ते पर राव वीरमदेवजी का फिर आधिपत्य

राव वीरमदेवजी की चढ़ाई का समाचार सुनते ही दौलतखां भयभीत होकर अजमेर से भाग निकला, जिससे उसपर अनायास ही बिना युद्ध किये राव वीरमदेवजी का अधिकार हो गया, परन्तु मेड़ते की इस राज्य-वृद्धि को ईर्ष्यालु राव मालदेवजी सहन न कर सके। उन्होंने राव वीरमदेवजी को लिखा कि मैं आपके वंश का ज्येष्ठ (पाटवी) हूं, इसलिए आप अजमेर का राज्य तो मुझे देदें और मेड़ता अपने अधिकार में रक्खें, परन्तु राव वीरमदेवजी ने उनके कुटिल व्यवहार का स्मरण कर अपने बाहुबल-द्वारा जीते हुए राज्य को देना स्वीकार नहीं किया।

अजमेर पर राव वीरमदेवजी का अधिकार

राव वीरमदेवजी के इस तरह अजमेर देने से इन्कार करने पर राव मालदेवजी को बहुत क्रोध आया और इस अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने मेड़ते पर चढ़ाई करने का दृढ़ विचार कर लिया। इस बार निम्नलिखित युक्ति-द्वारा कूट-नीतिज्ञ मालदेवजी ने अपने सामन्तों को, जो मेड़ते पर आक्रमण करने के विरुद्ध थे, मिला लिया। उन्होंने अपने सब सरदारों को एकत्र करके कहा—'मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि यदि आप लोग मेड़ता विजय करने में मेरी सहायता करेंगे तो उक्त राज्य की भूमि में से एक बीघा भी मैं अपने अधिकार में नहीं रक्खूंगा। समस्त

मेड़ते पर राव मालदेवजी की चढ़ाई

प्रदेश आप लोगों में ही बांट दिया जावेगा।' राज्य-प्राप्ति के इस लोभ में आकर मारवाड़ राज्य के समस्त सरदार राव मालदेवजी की आज्ञानुसार मेड़ते पर चढ़ाई करने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार सामन्तों का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर राव मालदेवजी ने विशाल वाहिनी सहित मेड़ते पर चढ़ाई की।

राव वीरमदेवजी का मेड़ता छोड़कर अजमेर चला जाना

इन दिनों राव वीरमदेवजी सपरिवार अजमेर में थे। राव मालदेवजी की चढ़ाई का हाल सुनकर वे शीघ्र ही मेड़ते आ पहुंचे। कई दिनों तक युद्ध होता रहा। अंत में राव मालदेवजी के सरदारों ने राव वीरमदेवजी को समझाया कि राव मालदेवजी नवयुवक होने से दूरदर्शी नहीं हैं, परन्तु आप सब तरह समझदार और अनुभवी हैं। इस पारस्परिक कलह से अपने वंश की क्षति हो रही है, अतः हमारी प्रार्थना स्वीकार करके इस समय आप मेड़ता छोड़ दें। राव मालदेवजी का क्रोध शांत होने पर हम अवश्य आपको मेड़ता वापस दिला देंगे। मेड़ता-प्राप्ति के लोभ से हृदय में कपट रख राव वीरमदेवजी से सरदारों ने यह बात कही थी, परन्तु सरल स्वभाव राव वीरमदेवजी इसपर विश्वास कर अजमेर लौट गये।

राव वीरमदेवजी की रीयां पर चढ़ाई

राव वीरमदेवजी के जाते ही वि० सं० १५९५ के श्रावण मास (ई० स० १५३८ जुलाई) में राव मालदेवजी का मेड़ते पर अधिकार हो गया। तदुपरान्त अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार राव मालदेवजी ने मेड़ते के राज्य को अपने सरदारों में बांट दिया। इस अवसर पर अपनी पूर्व शत्रुता का स्मरणकर उन्होंने गांगाजी से रीयां का ठिकाना छीनकर उनके छोटे भाई शीशाजी को प्रदान कर दिया, जो राव वीरमदेवजी से अप्रसन्न होकर जोधपुर चले गये थे। इस अनुचित परिवर्तन से राव वीरमदेवजी को असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ और गांगाजी की पूर्व सहायता को याद कर इन्होंने चार हजार सवारों सहित रीयां पर चढ़ाई की। यह समाचार पाकर शीशाजी की सहायता के लिए राव मालदेवजी ने, जो अभी मेड़ते में ही थे, राठोड़ जैताजी और कूंपाजी की अध्यक्षता में दस हजार सवारों की फौज भेजी। शीशाजी भी केसरिया वस्त्र पहिनकर मरणपर्यन्त युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। शीशाजी की मदद के लिए भेजी हुई राव मालदेवजी की सेना का

राव वीरमदेवजी की सेना से रींयां पहुँचने के पूर्व मार्ग में ही मुक़ाबला हो गया।

राठोड़ों का परस्पर भयङ्कर संग्राम होने लगा। केवल भाला, वर्छी और कृपाणों का प्रयोग किये जाने से यह युद्ध और भी भीषण हो गया। दस बार

रींयां की लड़ाई

जोधपुर की सेना में प्रवेशकर राव वीरमदेवजी ने उसको विचलित कर दिया। इस समय इनकी अवस्था ६१ वर्ष की थी तथापि इनका पुरुषार्थ, साहस, युद्धकौशल और हस्त-चापल्य अद्वितीय थे। युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने के अतिरिक्त जो कोई शत्रु इनपर आक्रमण करता उससे उसकी वर्छी छीनकर वे अपने बायें हाथ में एकत्र करते जाते थे, जिससे घोड़े की बाग भी पकड़े हुए थे। इस तरह इनके हाथ में बारह वर्छियां इकट्ठी हो गईं, परन्तु अन्त में जोधपुर की सेना की संख्या बहुत अधिक होने के कारण इनके पूर्ण विश्वासपात्र और स्वामि-भक्त सरदार महाजी राठोड़ ने युद्ध-क्षेत्र से इनको इस अवसर पर पृथक् कर लेना ही उचित समझा। यह बड़ी कठिनता से इनको ज़बरदस्ती युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकालकर अजमेर ले गया तथापि राव वीरम-देवजी का क्रोध बहुत दिनों तक शान्त नहीं हुआ। इस युद्ध में हज़ारों मनुष्यों के घायल होने के अतिरिक्त उभय पक्ष के ५०० राठोड़ वीर काम आये, जिनमें अनेक प्रतिष्ठित सरदार भी थे। इससे राव वीरमदेवजी और मारवाड़ के सरदारों के बीच भी घोर शत्रुता हो गई। राव मालदेवजी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने सरदारों में मेड़ता-राज्य का विभागकर जोधपुर को प्रस्थान किया और राव वीरमदेवजी तारागढ़ में निवासकर अजमेर प्रान्त पर शासन करने लगे।

ईर्ष्यालु राव मालदेवजी को मेड़ता-राज्य ले लेने पर भी सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने राव वीरमदेवजी से अजमेर भी छीन लेने का विचार किया।

अजमेर का राव मालदेवजी के हस्तगत होना

इसी उद्देश्य से वि० सं० १५९६ के फाल्गुन (ई० स० १५४० फरवरी) मास में लगभग तीस हज़ार सेना लेकर उन्होंने अजमेर पर भी चढ़ाई कर दी और वहां के क़िले तारागढ़ को चारों तरफ़ से घेर लिया। राव वीरमदेवजी ने बड़ी वीरता से मुक़ाबला किया

अनेक दिवस पर्यन्त संग्राम होता रहा, परन्तु जोधपुर की सेना संख्या में बहुत अधिक थी और उस समय क़िले में युद्ध की सामग्री तथा सेना बहुत कम थी, अतः दूरदर्शी राव वीरमदेवजी अजमेर से भी सपरिवार ढूंढाड़ की तरफ़ चले गये।

ढूंढाड़ देश के नराणा गांव के कछवाहों ने इनको बड़े आदर से अपने पास रक्खा, परन्तु कुछ ही दिनों के बाद राठोड़ जैताजी और कूंपाजी ने नराणा पर भी चढ़ाई की। उनसे लड़ते हुए राव वीरमदेवजी नराणा गांव से चलकर ढूंढाड़ राज्य के चाटसू, लालसोट, नालाई आदि अनेक स्थानों में गये, परन्तु ढूंढाड़ देश में जहां जहां ये गये मारवाड़ की सेना बराबर इनका पीछा करती रही। अन्त में ये ढूंढाड़ देश को भी छोड़कर रणथंभोर के शाही क़िले में चले गये; परन्तु इनका पीछा करती हुई जोधपुर की सेना वहां भी जा पहुंची। राठोड़ जैताजी और कूंपाजी बड़ी प्रबल सेना लेकर युद्ध करने के लिए वहां पहुंच गये। राव वीरमदेवजी के पास इस समय बहुत ही कम सेना थी तथापि बारम्बार आक्रान्त किये जाने से उनको बहुत क्रोध उत्पन्न हो गया। इस बार उन्होंने मरणपर्यन्त युद्ध करने का निश्चय किया और जैताजी तथा कूंपाजी को कहलाया कि अब मैं अन्यत्र कहीं नहीं जाऊंगा आप शीघ्र आवें, मैं लड़ने के लिए सब तरह तैयार हूं। इनको इस तरह युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर राठोड़ कूंपाजी ने भी कहलाया कि इसबार लड़ाई में आपको मारकर ही मैं वापस जाऊंगा, परन्तु राठोड़ वीर जैताजी ने कूंपाजी को समझाया कि राव वीरमदेवजी अपने वंश के बड़े शूरवीर और स्वतंत्र नरेश हैं। इस समय लगातार आपत्तियों के पड़ने के कारण वे मरने के लिए तैयार हो रहे हैं, ऐसी अवस्था में इनपर आप को शस्त्र नहीं उठाना चाहिये। यदि ये जीवित रहेंगे तो अवश्य कभी न कभी काम आवेंगे। जैताजी के इस प्रकार समझाने से कूंपाजी के भी विचार बदल गये। उन्होंने जैताजी की बात मानकर वीरवर राव वीरमदेवजी को रणथंभोर से चले जाने का रास्ता दे दिया।

राठोड़ जैताजी और कूंपाजी का राव वीरमदेवजी का पीछा करना

रणथंभोर से चलकर राव वीरमदेवजी अपने ज्येष्ठ कुमार जयमलजी के साथ वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) में मालवा के सुलतान महमूद सानी

राव वीरमदेवजी का मालवा और गुजरात के सुलतानों के पास जाना

के पास मांडू गये। वहां पर उन्होंने राव मालदेवजी पर उक्त सुलतान को चढ़ा लाने का बड़ा उद्योग किया, क्योंकि इस समय राव मालदेवजी की शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि बिना किसी प्रबल की सहायता के राव वीरमदेवजी के लिए मेड़ते पर अधिकार करना अत्यन्त दुष्कर था, परन्तु मालवे के सुलतान को भी राव मालदेवजी पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। मांडू से सहायता प्राप्त करने की आशा न देखकर राव वीरमदेवजी वहां से चलकर गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के पास पहुंचे। वहां पर भी उन्होंने सैनिक सहायता प्राप्त करने का बड़ा उद्योग किया, परन्तु राव मालदेवजी की शक्ति इस अन्तर में इतनी बढ़ गई थी कि बहादुरशाह की भी उनसे लड़ने की हिम्मत नहीं हुई।

विo संo १५९७ (ईo सo १५४०) में मुग़ल बादशाह हुमायूं को पराजित कर पठान सेनापति शेरशाह सूर ने दिल्ली के सिंहासन को अपने अधिकार में किया। इधर मेड़ता-राज्य का नाशकर राज्यलोलुप राव मालदेवजी ने बीकानेर राज्य के भी अस्तित्व को लुप्त करने का दृढ़ संकल्प किया।

राव मालदेवजी की बीकानेर पर चढ़ाई

इसी अभिप्राय से विo संo १५९८ में उन्होंने कूंपाजी राठोड़ की अध्यक्षता में बड़ी भारी सेना बीकानेर भेजी। यह सुनकर वहां के राव जैतसींजी को अपने राज्य की रक्षा की बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने मंत्री नगराज से परामर्श कर उसी को राव मालदेवजी के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के निमित्त दिल्ली के बादशाह शेरशाह सूर के पास भेजा। दिल्ली जाने के पूर्व नगराज ने राव जैतसिंहजी के ज्येष्ठ राजकुमार कल्याणमलजी के निरीक्षण में समस्त राज-परिवार को शत्रु की चढ़ाई के डर से सिरसा (सारस्वत) नगर में पहुंचा दिया था। मंत्री के दिल्ली जाने के पश्चात् राव मालदेवजी की सेना ने बीकानेर पर बड़ा प्रबल आक्रमण किया। राव जैतसिंहजी ने क्रोध से विकरालमुख होकर युद्ध करने के लिए बड़ी निर्भयता से शत्रुओं के सम्मुख प्रस्थान किया। विo संo १५९८ चैत्र कृष्णा ११ (ईo सo १५४२ ताo १२ मार्च) को जोधपुर और बीकानेर की सेनाओं का परस्पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ। यद्यपि बीकानेर के सैनिकों ने बड़ी वीरता से मुक़ाबला किया, परन्तु जोधपुर

की सेना के संख्या में बहुत अधिक होने के कारण विजय जोधपुर की ही हुई। राव जैतसिंहजी बड़ी वीरता से युद्ध करते हुए समरभूमि में काम आये और बीकानेर के संपूर्ण राज्य पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया।

इस वृत्तान्त को सुनकर राव वीरमदेवजी को बहुत शोक हुआ। वे शीघ्र ही राव कल्याणमलजी से मिलने के लिए सिरसा गये। राव कल्याणमलजी ने राव वीरमदेवजी का पिता के समान सत्कार किया और कुछ दिन तक बड़ी प्रीति और सम्मान के साथ इनको अपने पास रक्खा। वि० सं० १५९९ (ई० स० १५४२) में दोनों नरेशों ने अपने राज्यों को पुनः प्राप्त करने के लिए मदद लेने के वास्ते शेरशाह बादशाह के पास जाने का विचार किया। राव वीरमदेवजी के पास इस समय केवल चारसौ अश्वारोही सैनिक थे। अपने सैनिकों-सहित दोनों नरेश बादशाह से मिलने के लिए आगरे गये जहां राव कल्याणमलजी के भाई भीमराजजी पहले से बादशाह की सेवा में उपस्थित थे। शेरशाह ने इनके साथ बड़े सत्कार और प्रेम का व्यवहार कर इन्हें अपने पास रक्खा।

राव वीरमदेवजी का दिल्ली के बादशाह शेरशाह के पास जाना

रणथंभोर के दुर्ग पर अपना अधिकार करने के लिए शेरशाह ने जो चढ़ाई की उसमें राव वीरमदेवजी भी सम्मिलित थे। रणथंभोर का दुर्गाध्यक्ष उस समय बादशाह हुमायूं की तरफ़ से खानखाना शिरवानी नामक मुगल सरदार था, जिसकी राव वीरमदेवजी से पहले की मित्रता थी। राव वीरमदेवजी ने उक्त दुर्गाध्यक्ष को समझाकर रणथंभोर का दुर्ग शेरशाह के सुपुर्द करा दिया। रणथंभोर लेने के पीछे शेरशाह ने रायसेन के दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय वहां पूर्णमलजी चौहान का राज्य था। वहां भी बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्त में शेरशाह ने विश्वासघात-द्वारा उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। तदनन्तर ग्वालियर और मांडू को जीतकर वहां पर भी शेरशाह ने अपना अधिकार स्थापित किया। इन सभी युद्धों में राव वीरमदेवजी तथा उनके ज्येष्ठ राजकुमार जयमलजी ने शेरशाह का साथ दिया और पिता पुत्र दोनों ही ने इनमें अनुपम पराक्रम और विलक्षण युद्ध कौशल

रणथंभोर, रायसेन, ग्वालियर और मांडू के स्थानों को जीतने में राव वीरमदेवजी का शेरशाह की सहायता करना

प्रकट किया, जिससे इनपर बादशाह की विशेष प्रीति हो गई। इसी तरह बीकानेर के राव कल्याणमलजी तथा उनके भाई भीमराजजी ने भी अपनी वीरता से बादशाह को बहुत संतुष्ट कर लिया।

उधर शेरशाह से परास्त होकर हुमायूं लाहोर, भक्कर आदि स्थानों में होता हुआ वि० सं० १५९९ के आषाढ़ मास (ई० स० १५४२ जून) में मारवाड़ की तरफ़ आया। राव मालदेवजी ने हुमायूं की सहायता करना स्वीकार कर लिया। शेरशाह को जब राव मालदेवजी के हुमायूं की सहायता के लिए उद्यत होने का समाचार ज्ञात हुआ तो उसको बड़ी चिंता हुई, क्योंकि राव मालदेवजी की शक्ति उस समय बहुत बढ़ी हुई थी। इनका राज्य भी बड़े विस्तार को पहुंच गया था। उस समय इनका बल कितना बढ़ा चढ़ा था, इसके विषय में मिरज़ा हादी ने 'तुज़ुके जहांगीरी' के उपोद्घात में लिखा है—"राजा मालदेव उस समय इतने शक्तिसम्पन्न थे कि वे ८० हजार सवारों की सेना अपने यहां रखते थे।" बादशाह शेरशाह की चिंता को देखकर राव वीरमदेवजी और राव कल्याणमलजी ने, जो राव मालदेवजी की लोभी प्रकृति को जानते थे, उनको राज्यवृद्धि का लोभ देकर अपने पक्ष में कर लेने का परामर्श दिया। बादशाह ने उनकी मंत्रणा के अनुसार राव मालदेवजी को यह लोभ दिया कि यदि हुमायूं को पकड़कर मुझको सौंप दोगे तो गुजरात का प्रांत तुम्हारे अधिकार में दे दूंगा। इस राज्यवृद्धि के लोभ में आकर राव मालदेवजी धर्म का कोई विचार न कर विश्वासघात-द्वारा हुमायूं को पकड़ने के लिए उद्यत होगये।

सहायता प्राप्त करने के लिए हुमायूं का राव मालदेवजी के पास जाना

हुमायूं ने राव मालदेवजी के राज्य में आकर अपने एक दूत शम्सुद्दीन मुहम्मद अत्काखां को जोधपुर भेजा। मालदेवजी ने शेरशाह का पक्ष ग्रहणकर हुमायूं को पकड़ने के लिए तत्काल फ़ौज भेज दी और हुमायूं को इसकी सूचना न मिले इसलिए अत्काखां को वहीं अपने पास रोक लिया, परन्तु मौका देखकर अत्काखां हुमायूं के पास चला गया और उससे सब वृत्तान्त कह दिया, जिससे तत्काल हुमायूं मालदेवजी के राज्य से भागकर उमरकोट की तरफ़ चला गया। उमरकोट पहुंचने के पश्चात् उसी स्थान में बादशाह हुमायूं के परम

प्रसिद्ध शाहज़ादे अकबर का वि० सं० १५९९ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ (ई० स० १५४२ ता० २२ नवम्बर) शनिवार को जन्म हुआ। कुछ दिन उमरकोट ठहर कर हुमायूं वहां से ईरान के बादशाह तहमास्प के पास चला गया।

राव वीरमदेवजी और राव कल्याणमलजी ने अपनी अलौकिक वीरता से बादशाह शेरशाह को बहुत प्रसन्न कर लिया था। ग्वालियर, मांडू, रणथंभोर, रायसेन प्रभृति स्थानों को जीतकर जब शेरशाह आगरे वापस आया तब राव वीरमदेवजी और राव कल्याणमलजी ने मारवाड़ पर चढ़ाई करने के निमित्त उससे बहुत कुछ प्रार्थना की। बादशाह ने पहले तो कुछ आगा पीछा किया, परन्तु अन्तमें इनकी प्रार्थना को स्वीकार कर राव मालदेवजी पर चढ़ाई करने का हुक्म दे दिया। राव वीरमदेवजी ने भी इस चढ़ाई में शामिल होने के लिए अपने बिखरे हुए सरदारों को बुलाकर क़रीब तीन हज़ार फ़ौज एकत्र की।

वि० सं० १६०० के मार्गशीर्ष (ई० स० १५४३ नवम्बर) मास में बादशाह शेरशाह बड़ी प्रबल सेना लेकर आगरे से रवाना हुआ। इस वृत्तान्त को सुन कर राव मालदेवजी भी ८० हज़ार सेना लेकर युद्ध के लिए सम्मुख आये। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात में लिखा है कि राव मालदेवजी के पास इतनी अधिक सेना देखकर शेरशाह को बड़ा भय हुआ, परन्तु राव वीरमदेवजी ने उनको बहुत कुछ आश्वासन देकर कहा कि आप इतना क्यों घबराते हैं, आप तो सर्वथा निश्चिन्त रहें मैं बातों से ही राव को भगा दूंगा, लड़ाई करने का भी काम नहीं पड़ेगा। राव वीरमदेवजी के ऐसा कहने से बादशाह को कुछ धैर्य हुआ और उसने अपना लश्कर कुछ आगे बढ़ाया। यह देखकर राव मालदेवजी ने भी कुछ भयभीत होकर अपनी फ़ौज एक मुकाम पीछे हटाली। बीकानेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि जलालखां नामक एक पठान मल्ल शेरशाह की सेना में था। उसने बादशाह से प्रार्थना की कि युद्ध में हज़ारों मनुष्यों को मरवाने से क्या लाभ है; इसलिए यह नियम कर लिया जावे कि एक योद्धा राव मालदेवजी के पक्ष का नियत हो जावे और इधर आपकी तरफ़ से मैं चला जाऊं। हम दोनों की हार जीत के अनुसार ही युद्ध का परिणाम निर्धारित कर लिया जावे। पहलवान की बात को स्वीकार

राव मालदेवजी पर शेरशाह की चढ़ाई

कर बादशाह ने राव मालदेवजी को कहलाया कि आप और हम पुराने तरीक़े के माफिक लड़ाई करें। अपनी फ़ौज में से एक आदमी आप चुनलें और एक हम। उन दोनों में से जो जीते उसी के पक्ष की जीत समझी जाय। राव मालदेवजी ने इस बात को स्वीकार करके अपनी तरफ़ से वाला वींदा भारमलोत को चुना। शेरशाह को जब इसकी सूचना मिली तब राव वीरमदेवजी को बुला कर परामर्श किया कि शाही लश्कर में कौनसा सिपाही वाला वींदा से लड़ने के क़ाबिल है। राव वीरमदेवजी ने वाला वींदा की वीरता और शारीरिक बल की बड़ी प्रशंसा कर कहा कि वाला वींदा का मुक़ाबला करने के लायक शाही फ़ौज में कोई सिपाही नहीं है; इसलिए मैं स्वयं ही उसका मुक़ाबला करने जाऊंगा। बादशाह ने राव वीरमदेवजी को अपनी फ़ौज का मुख्तियार[1] अर्थात् प्रधान सेनाध्यक्ष नियत कर रक्खा था इसलिए वाला वींदा का मुक़ाबला करने के लिए उन्हें भेजना स्वीकार नहीं किया।

पठान मल्ल को वाला वींदा का सामना करने के लिए राव वीरमदेवजी ने अशक्त बतलाया। इस सबब से बादशाह बहुत डरा, परन्तु राव वीरमदेवजी ने फिर उसको तसल्ली देकर कहा कि आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं एक तोत (फ़रेब) करके रावजी को भगा दूंगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए राव वीरमदेवजी ने बादशाह से एक लाख फ़ीरोजशाही मोहरें मांगीं, परन्तु शेरशाह को कुछ सन्देहग्रस्त देखकर विश्वास उत्पन्न करने के लिए उन्होंने अपने पुत्र जयमलजी को ओल (गिरवी) में देकर अशर्फ़ियां प्राप्त कीं। उन दिनों फ़ीरोजशाही मोहरों का भाव १६ रुपयों का था, परन्तु इन्होंने अपना कपट कृत्य सिद्ध करने के लिए १७ रुपये के भाव से ही सब अशर्फ़ियों को राव मालदेवजी की सेना में बिकवा दिया।

राव मालदेवजी की सेना में राठोड़ जैताजी, राठोड़ कूंपाजी आदि बड़े वीर सामन्त थे। उन सब के नाम राव वीरमदेवजी ने बादशाह के मुंशियों-द्वारा १०० फ़र्मान (आज्ञापत्र) लिखवाये; तत्पश्चात् उतनी ही उत्तम नवीन ढालें मंगवाकर एक एक फ़र्मान हरएक ढाल की गद्दी में सिलवा दिया। फिर

(१) मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात के आधार पर।

शाही सेना के कुछ सिपाहियों को ढाल बेचनेवाले व्यापारियों का भेष बनाकर उन ढालों को बेचने के लिए राव मालदेवजी की सेना में भेजा। उन छद्मधारी सैनिकों को अच्छी तरह समझा दिया कि जो ढाल जिस सरदार के हाथ बेचने के लिए दी जावे उसी को जिस क़ीमत पर बिके बेच दी जावे दूसरे को नहीं दी जावे। इस प्रकार सब की सब ढालें राव मालदेवजी की सेना में तत्काल बेच दी गईं। सरदारों ने लड़ाई में ज़रूरत पड़ने से और क़ीमत भी कम होने से बड़ी प्रसन्नता से उनको खरीद लिया। मारवाड़ के सरदारों को राव वीरमदेवजी की यह छलपूर्ण कार्रवाई मालूम न हो सकी। इसे पूरी कर राव वीरमदेवजी ने राव मालदेवजी को गुप्त रीति से इस आशय का पत्र लिखा कि मेरा तो स्वाधीन पैतृक राज्य आपने ज़बर्दस्ती छीन लिया है, इसलिए उसको पुनः प्राप्त करने के लिए ही विवश होकर मुझको बादशाह का आश्रय ग्रहण करना पड़ा है, परन्तु आपके परम विश्वासपात्र सामन्त न जाने किस अभिप्राय से बादशाह से मिल गये हैं। वे ही सरदार जिनको आपने मेड़ते का राज्य बांटा है अब जोधपुर के राज्य को भी उसी तरह बांट लेने के लिए बादशाह के पक्ष में हो गये हैं और बादशाह की भेजी हुई हज़ारों अशर्फ़ियां भी उन्होंने ग्रहण कर ली हैं, अतः आप उनकी तरफ़ से पूरी तरह सावधान रहें। यदि मेरी बात का विश्वास न हो तो सरदारों की ढालें मंगवाकर उनकी गद्दियां चीरकर देख लें। उनका सब रहस्य प्रकट हो जायगा। राव मालदेवजी को उपरोक्त पत्र देखते ही बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया और तत्काल अपने गुप्तचरों को निश्चय करने के निमित्त सेना में भेजा, जिन्होंने वापस आकर निवेदन किया कि वास्तव में अपनी सेना में बादशाही कोष की मोहरें पहुंची हैं। यह सुनकर राव मालदेवजी का सन्देह और भी दृढ़ हो गया और मारे घबराहट के सारी रात उनको नींद भी न आई। प्रातःकाल जब सब सरदार राव मालदेवजी से मुजरा (प्रणाम) करने आये तब उनके पास नवीन ढालें देखकर उनका सन्देह और भी बढ़ गया। उन्होंने मुजरा हो जाने के पीछे सरदारों को रुख़सत देकर उनकी ढालें देखने के बहाने से अपने पास रखवालीं। तत्पश्चात् एकान्त में जब उन्होंने ढालों की गद्दियां चीरकर देखीं तो वास्तव में हरएक

ढाल की गद्दी में से एक एक आज्ञापत्र निकला, जिसका आशय यह था कि जो प्रतिज्ञा तुमने राव मालदेवजी को पकड़वाने की की थी उसको अब शीघ्र पूर्ण करो। यह फ़रमान तुमको शपथपूर्वक लिखा जाता है कि मारवाड़ का संपूर्ण राज्य तुम लोगों में ही यथायोग्य बांट दिया जावेगा। इसके सिवाय हरएक सरदार को एक एक हज़ार मोहर भी प्रदान करता हूं, परन्तु इस बात को याद रखना कि यह कार्य अब शीघ्र सिद्ध होना चाहिये। अब तो राव मालदेवजी को सरदारों के विश्वासघात का पूर्ण निश्चय हो गया और राठोड़ जैताजी, कूंपाजी प्रभृति प्रतिष्ठित सामन्तों से पूछताछ किये बिना ही वे अपने प्रधान मन्त्री चांपावत जैसाजी भैंरूदासोत को साथ लेकर रात के समय अपने डेरों से छिपकर निकल गये। सरदारों ने इनके रोकने का बहुत ही उद्योग किया, परन्तु इनको किसी प्रकार विश्वास नहीं हुआ और ये वहां से सिवाने की तरफ़ चले ही गये।

इस वृत्तान्त को जब शेरशाह ने सुना तो उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। राव वीरमदेवजी की विलक्षण बुद्धि और नीतिज्ञता की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर उनको अनेक पारितोषिक प्रदान किये और राजकुमार जयमलजी को भी ओल के बंधन से मुक्तकर उसने अपनी प्रबल सेना सहित जोधपुर को प्रस्थान किया।

राव मालदेवजी के चले जाने पर उनकी सेना ने भी हटना शुरू किया। यह देखकर वीरवर राठोड़ कूंपाजी और जैताजी के शोक की सीमा नहीं रही। उन्होंने राव मालदेवजी के मिथ्या भ्रम को दूर करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह सफल न हुआ। अन्त में राठोड़ कूंपाजी आदि सामन्तों ने "होनहार बलवान है" यह विचारकर अपने निज के ही सैनिकों से शेरशाह का मुक़ाबला कर उसको जीत लेने का अथवा स्वयं ही मर मिटने का संकल्प किया, जिससे स्वामी के द्रोह का कलंक राठोड़ों के निर्मल यश पर न लगे। इस प्रकार परामर्श कर कूंपाजी, जैताजी आदि सामन्त अपने ही दस बारह हज़ार सैनिकों को, जो राव मालदेवजी की फ़ौज में थे, पृथक् कर शेरशाह की सेना पर रात्रि में ही अचानक आक्रमण करने के निमित्त वापस लौटे, परन्तु संयोग-

वश रात्रि में राजपूत रास्ता भूल गये और शेरशाह के डेरों के पास उनके पहुँचने के पहले ही दिन निकल आया। राजपूतों को लड़ने के वास्ते आते देखकर शेरशाह ने भी अपनी फ़ौज को तैयार कर लिया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक फ़िरिश्ते ने लिखा है—"इस लड़ाई में शेरशाह के साथ कम से कम ८० हज़ार सैनिक थे। इतनी भारी सेना का दस बारह हज़ार राजपूतों ने ही ऐसे पराक्रम से मुक़ाबला किया कि शेरशाह की सेना को अनेक बार पीछे हटना पड़ा। राजपूतों के प्रचंड आक्रमण के आगे शाही सेना व्याकुल हो गई और परास्त होकर युद्ध-क्षेत्र से भागने को ही थी कि जलालखां जलवानी बड़ी फ़ौज के साथ मदद के लिए आ पहुंचा। समय पर इस सहायता के पहुंच जाने से मुसलमानों का उत्साह बढ़ गया और उन्होंने राजपूतों पर बड़ा प्रबल आक्रमण किया। राजपूत लड़ते लड़ते अब बहुत कम रह गये थे। शेरशाह के सैनिक चारों तरफ़ से उनपर टूट पड़े। राठोड़ जैताजी, कूंपाजी, पंचायणजी, सोनिगरा अखैराजजी आदि समस्त बहादुर सरदार अंतिम समय तक शत्रुओं का घोर संहार करते हुए अपने सैनिकों सहित युद्ध-क्षेत्र में काम आये। जैतारण परगने के समेल ग्राम में वि० सं० १६०० की पौष शुक्ला ११ (ई० स० १५४४ ता० ५ जनवरी) को यह युद्ध हुआ। इसमें दो हज़ार राठोड़ और बादशाह की फ़ौज के भी लगभग इतने ही सिपाही मारे गये। इस लड़ाई में फ़तह हासिल करके शेरशाह को बड़ी ही खुशी हुई। बादशाह ने लड़ाई के मैदान में ही राव वीरमदेवजी के कंधों पर दोनों हाथ रखकर ज़ोर से कहा कि अगर आप आज अपनी विलक्षण बुद्धि और प्रकांड वीरता से मेरी सहायता न करते तो एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो बैठता"[1]।

इस लड़ाई के बाद बादशाह शेरशाह राव वीरमदेवजी सहित जोधपुर जीतने के लिए रवाना हुआ। राव मालदेवजी सिवाना परगने में पीपलाद के पहाड़ों की तरफ़ चले गये थे, परन्तु जोधपुर के दुर्गाध्यक्ष राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत ने बड़ी निर्भयता के साथ बादशाह का मुक़ाबला करने के लिए प्रस्थान किया और वह बड़ी

मेड़ते पर पुनः राव वीरमदेवजी का अधिकार

(१) फ़िरिश्ता लिखित तवारीख़ का ब्रिग कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।

वीरता से लड़कर काम आया। जोधपुर पर भी बादशाह का अधिकार हो गया। यहां से शेरशाह ने सेना भेजकर बीकानेर पर राव कल्याणमलजी का और मेड़ते पर राव वीरमदेवजी का अधिकार करा दिया। कुछ दिन तक बादशाह ने जोधपुर में विश्राम किया। तत्पश्चात् खवासखां को वहां का प्रबन्ध-कर्त्ता नियतकर चित्तोड़ के राज्य से सुलह करता हुआ वह रणथंभोर लौट गया।

राव वीरमदेवजी ने भीमराजजी को कुछ दिवस पर्यन्त बड़ी प्रीति से मेड़ते में ही अपने पास रक्खा। उनकी प्रशंसा में राव वीरमदेवजी ने अनेक दोहे बनाये और कहा कि बीकानेर और मेड़ते के दोनों राज्य आप ही के उद्योग से पुनः प्राप्त हो सके हैं। इन्होंने इसका श्रेय वीरमदेवजी को देकर कहा कि यह केवल आपके विलक्षण चातुर्य और पराक्रम का फल है। इस प्रकार अनेक दिवस ऐसी स्नेहमय वार्तालाप करते हुए भीमराजजी मेड़ते में रहे। तदुपरान्त राव वीरमदेवजी की अनुमति लेकर वे बीकानेर गये। राव वीरमदेवजी ने यद्यपि अनवरत उद्योग, असाधारण पराक्रम और विलक्षण नीतिज्ञता से राव मालदेवजी जैसे प्रबल शत्रु को परास्तकर अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था, परन्तु अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है, कि इस बार वे अधिक काल तक राज्य-सुख का उपभोग नहीं कर सके, क्योंकि मेड़ता प्राप्त करने के दो मास पश्चात् ही वि० सं० १६०० के फाल्गुन (ई० स० १५४४ फरवरी) में इनका स्वर्गवास हो गया।

राव वीरमदेवजी का स्वर्गवास

राव वीरमदेवजी बड़े वीर, उदार और नीतिज्ञ शासक थे। अपने सम्बन्धियों और बन्धुओं की ओर बहुत ही प्रीतिपूर्ण भाव रखते थे। महाराणा सांगाजी के साथ तो इनका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। महाराणा ने दिल्ली, गुजरात और मालवा के बादशाहों से जो अनेक युद्ध किये उनमें से प्रायः सभी लड़ाइयों में राव वीरमदेवजी अपनी समस्त सेना-सहित सम्मिलित हुए। बाबर के साथ खानवा में महाराणा सांगाजी का जो प्रसिद्ध संग्राम हुआ उसमें राव वीरमदेवजी जोधपुर की सेना से अधिक सेना लेकर सम्मिलित हुए थे। राव वीरमदेवजी का शरीर भी बलिष्ठ था।

राव वीरमदेवजी का व्यक्तित्व

इनके पराक्रम और शारीरिक बल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कुछ संक्षेप से नीचे लिखी जाती हैं—

हमारी वंशावलियों में लिखा है कि एक बार राव वीरमदेवजी के अधिक भोजन को देखकर इनके ससुराल अर्थात् चित्तोड़ की राज-महिलाएं बहुत अप्रसन्न हो गईं, परन्तु महाराणा साहब ने उनको समझाया कि राव वीरमदेवजी जितना अधिक भोजन करते हैं उतने पराक्रमी भी हैं। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे ही बलवान वीर सहायता दे सकते हैं। तदनन्तर इनके पराक्रम और बल को राज-महिलाओं के समक्ष प्रमाणित कराने के लिए मैदान में एक मस्त हाथी छुड़वा दिया गया। राव वीरमदेवजी महलों में पधारने लगे तब उनसे लोगों ने निवेदन किया कि एक मस्त हाथी के छूट जाने से महलों का द्वार बन्द कर दिया गया है यदि इसी समय पधारने की आवश्यकता ही हो तो दूसरे साधारण रास्ते से पधार जावें, परन्तु वीरपुंगव राव वीरमदेवजी ने मुख्य द्वार से ही जाने का आग्रह किया और ज़बर्दस्ती दरवाज़ा खुलवाकर बड़ी निर्भयता से प्रवेश किया। हाथी ने तत्काल इनपर वार किया, परन्तु ये डरे नहीं और अपने सांग के एक ही वार से उसे मार डाला। ये सवा मन वज़न की सांग रखते थे। हमारे कुलगुरु की पुस्तक में ऐसा भी लिखा है कि एक दफ़ा बादशाह के दरबार में राव वीरमदेवजी बैठे हुए थे कि बादशाह के पहलवान ने दरबार में सब से कहा कि अगर किसी को अपने बल और पुरुषार्थ पर विश्वास है तो मेरे साथ युद्ध करे वरना हार मानकर सिर झुकावे। राव वीरमदेवजी को उसके ऐसे अपमानजनक शब्दों को सुनकर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने ऐसे ज़ोर से उसके सिर पर एक थप्पड़ मारा कि फ़ौरन उसका दम निकल गया।

यदि राव वीरमदेवजी से राव मालदेवजी इतनी शत्रुता नहीं रखते तो इनके समय में मेड़ता-राज्य की बहुत ही उन्नति होती। इन्होंने राव मालदेवजी को अप्रसन्न करने की कोई बात नहीं की। इनकी तो बंधुहितैषिता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि एक बार जब अजमेर और मेड़ता इन दोनों ही राज्यों पर इनका अधिकार था तब राव मालदेवजी ने इनकी राज्य-वृद्धि को सहन न कर मेड़ते पर आक्रमण किया। राव वीरमदेवजी ने दूरदर्शिता से पारस्परिक कलह

से कोई लाभ न देखकर अपनी इच्छा से ही मेड़ते का परित्याग कर दिया, परन्तु राव मालदेवजी को मेड़ता लेकर भी सन्तोष नहीं हुआ और अजमेर पर भी बड़ी विशाल सेना लेकर उन्होंने आक्रमण कर दिया। राव वीरमदेवजी को विवश होकर अजमेर छोड़ना पड़ा तथापि राव मालदेवजी ने इनका पीछा नहीं छोड़ा। वे इनके राज्यों को छीनने के अतिरिक्त इनके प्राण लेने पर भी उतारू हो गये। अपने राज्यों को छोड़कर राव वीरमदेवजी जहां जहां गये वहां वहां मारवाड़ की सेना इनका बराबर पीछा करती रही। इसी प्रकार ईर्ष्यालु और भ्रातृद्वेषी राव मालदेवजी ने बीकानेर के राव जैतसिंहजी को मारकर उनके राज्य को भी नष्ट कर दिया। अपने राज्य से वंचित होकर अनेक कष्ट सहते हुए जब राव वीरमदेवजी बिलकुल तंग आ गये और अपने राज्य को वापस लेने का कोई अन्य उपाय दिखाई न दिया तब इन्हें विवश होकर राव जैतसिंहजी के कुमार कल्याणमलजी के साथ, जो इन्हीं की तरह राज्य खोकर घोर आपत्ति में पड़े हुए थे, सहायता प्राप्त करने के लिए दिल्ली के बादशाह शेरशाह के पास जाना पड़ा। अगर राव मालदेवजी इनके साथ कुछ भी सौहार्द रखते तो राव वीरमदेवजी जैसे देशभक्त नरेश कभी एक विदेशी शत्रु को मारवाड़ पर चढ़ा लाने का प्रयास न करते। राव मालदेवजी के विश्वासघात और कृतघ्नता का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है कि राव वीरमदेवजी ने तो उनको सिन्धल राठोड़ों को जीतने में पूरी सहायता दी और उन्होंने इनको कपट से जोधपुर ठहराकर इनकी अनुपस्थिति में मेड़ता-राज्य-पर ही कब्ज़ा कर लिया। इसी प्रकार के कुटिल आचरण के कारण राव मालदेवजी का अन्तःकरण इतना मलीन हो गया था कि उनको किसी पर भी विश्वास नहीं होता था। शेरशाह की चढ़ाई के अवसर पर एक ज़रासी बात से ही उनको जैताजी, कूंपाजी प्रभृति पूर्ण विश्वस्त सामन्तों पर भी पूर्ण सन्देह हो गया, जिन्होंने आयुभर पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ इनकी सेवा की थी और जिनके पराक्रम और बाहुबल से ही राव मालदेवजी का राज्य इतने विस्तार को पहुंचा था। यह सन्देह इतना दृढ़ हो गया कि राव मालदेवजी युद्धक्षेत्र को छोड़कर चले गये। यद्यपि इस समय उनकी शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि यदि वे शेरशाह

से युद्ध करते तो अवश्य ही उसको हरा देते। इस सम्बन्ध में जगदीशसिंह गहलोत का यह लिखना उचित प्रतीत होता है-"यदि इस समय इनके और मेड़ता नरेश राठोड़ वीरमदेवजी के आपस में फूट न होती तो संभव था भारत का इतिहास कुछ और ही ढंग से लिखा जाता[1]"। वास्तव में यदि राव मालदेवजी अपने भाई राव वीरमदेवजी और कल्याणमलजी के साथ मेल रखते और अपने भाइयों ही के राज्यों को नाश करने में अपनी बढ़ी हुई शक्ति का दुरुपयोग न करते तो अवश्य ही मुसलमानों को परास्त कर दिल्ली के सिंहासन पर राठोड़ वंश अपना अधिकार स्थापित कर लेता।

हमारे कुलगुरु, भाट और राणीमंगों की ख्यातों के अनुसार राव वीरमदेवजी के निम्नलिखित चार राणियां थीं—

राव वीरमदेवजी की राणियां

१—चालुक्य (सोलंकी) कल्याणकुंवरी, नीवरवाड़ा के राणा केशवदासजी की पुत्री।

२—चालुक्य गंगकुंवरी नीवरवाड़ा अथवा वीसलपुर के राव फ़तेहसिंहजी की पुत्री।

३-सीसोदनी गोरज्याकुंवरि, चित्तोड़ के महाराणा रायमलजी की राजकुमारी।

४-कछवाही मानकुंवरी, कालवाड़ (जयपुर राज्य में) के महाराज किशनदासजी की पुत्री।

राव वीरमदेवजी की संतति

हमारी वंशावलियों के अनुसार राव वीरमदेवजी के तीन राजकुमारियां और तेरह राजकुमार उत्पन्न हुए। राजकुमारियों के नाम तथा वैवाहिक सम्बन्ध नीचे लिखे अनुसार उपलब्ध होते हैं—

१—राजकुमारी श्यामकुंवरि, इनका विवाह नवारिया के रावत सांगाजी सीसोदिया से हुआ था।

२—राजकुमारी फूलकुंवरि, इनका विवाह केलवा के सुविख्यात वीर सामन्त रावत पत्ताजी सीसोदिया जगावत से किया गया। वीरवर रावत पत्ताजी ने, जैसा कि आगे राव जयमलजी के प्रकरण में विस्तारपूर्वक लिखा

(१) जगदीशसिंह गहलोत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ० ११०।

जायगा, चित्तोड़ के युद्ध में अकबर के विरुद्ध बड़ी बहादुरी से लड़कर वीरगति प्राप्त की। आजकल मेवाड़ में रावत पत्ताजी के वंशजों का मुख्य ठिकाना आमेट है।

३—राजकुमारी अभयकुंवरि का विवाह गंगरार के राव राघवदेवजी चौहान से हुआ था।

राव वीरमदेवजी के सोलह पुत्र हुए, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त यथाक्रम नीचे लिखा जाता है—

१—जयमलजी—ये राव वीरमदेवजी के पश्चात् मेड़ते के अधिकारी हुए। ये नीवरखाड़ा के भानजे और जयमलोत राजपूतों के मूलपुरुष थे। इनका विस्तृत इतिहास आगे के प्रकरण में लिखा जायगा।

२—ईश्वरदासजी—इनसे ईसरदासोत शाखा निकली। ये वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में चित्तोड़ के प्रसिद्ध संग्राम में मुसलमानों से बड़ी वीरता से युद्ध कर काम आये। इनके पौत्र विजयसिंहजी बड़े वीर थे, ४२ गांवों सहित आलणियावास इनके अधिकार में था। इनकी पत्नी बजरंगदे भी अलौकिक शौर्य और साहससंपन्न वीरांगना थी। विजयसिंहजी के स्वर्गारोहण के अनन्तर राज्यशासन का भार बजरंगदे ने अपने ही हाथ में ले रक्खा था। मेड़ता का परगना जागीर में जब दुर्गादासजी को सौंपा गया तब उन्होंने आलणियावास से भी छटूंद चाकरी मांगी, परन्तु उनकी अधीनता स्वीकार न कर वीरांगना बजरंगदे ने युद्ध की तैयारी की। रीयां नदी के समीप बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें बजरंगदे की विजय हुई और दुर्गादासजी को परास्त होकर हटना पड़ा[1]। इनके वंशजों के अधिकार में पहले कालू तथा केकींद के ठिकाने मारवाड़ में थे। आजकल समेल, रायणां आदि मारवाड़ के और अंटाली, दिवाला, लाछूड़ा, फाईड़ा प्रभृति मेवाड़ के छोटे छोटे ठिकाने इनकी संतति के अधिकार में हैं। इनके वंशजों का भैंसाडावर नाम का एक ठिकाना मालवे में भी है।

३—जगमालजी—इनसे जगमालोत शाखा प्रारम्भ हुई। इन्होंने राव मालदेवजी के पक्ष में रहकर राव जयमलजी से अनेक युद्ध किये। राव

(१) कविराजा बांकीदासजी के हस्तलिखित ऐतिहासिक संग्रह से।

मालदेवजी ने राव जयमलजी से मेड़ता छीनकर जगमालजी को प्रदान कर दिया था, परन्तु पीछे अकबर बादशाह के सेनापति मिरज़ा शरफ़ुद्दीनहुसैन ने जगमालजी को परास्तकर मेड़ते पर राव जयमलजी का फिर अधिकार करा दिया। इनके वंशजों के अधिकार में जयपुर राज्य में धूड़ादेवल और अजमेर प्रान्त में मसूदा, बाघसूरी आदि ठिकाने हैं। इनकी संतति[1] की जागीर में मेवाड़ में भी गिरवर नामक ग्राम है। मसूदे का परगना जगमालजी के पुत्र हनवन्तसिंहजी को शाही थाने पर आक्रमण करनेवाले पंवार राजपूतों को वहां से निकालने के पारितोषिक में बादशाह अकबर ने जागीर में प्रदान किया था। ऐसी जनश्रुति है कि मसूदे को सुलतान मुहम्मद के समय में सालार साहू के पुत्र मसूर गाज़ी ने बसाया था। मसूदे के वर्तमान अधिपति ठाकुर विजयसिंहजी हैं, जिनको भारत सरकार ने ई० स० १६२३ (वि० सं० १६७६) में 'रावसाहब' की उपाधि प्रदान की है। बाघसूरी का ठिकाना हनवन्तसिंहजी के भ्राता सालसिंहजी को बादशाह अकबर ने जागीर में दिया था।

४—चांदाजी—मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात में लिखा है कि चांदाजी ने बहुतसे मनुष्यों को लेकर मारवाड़ के अधिपति राव चन्द्रसेनजी की ओर से मुसलमानों से बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया था। मुसलमानों की सेना बड़ी प्रबल थी तथापि चांदाजी ने उसको पीछे हटाकर जोधपुर के गढ़ में प्रवेश किया और रामपोल दरवाज़े से निकलते हुए [illegible] सात मुग़लों को तत्काल मार डाला। यह युद्ध वि० सं० १६२१ वैशाख कृष्णा १० (ई० स० १५६४ ता० ६ अप्रेल) को हुआ था। कविराजा बांकीदानजी के हस्तलिखित ऐतिहासिक संग्रह से विदित होता है कि चित्तोड़ दुर्ग पर इन्होंने नारायणदास सोलंकी को अपने हाथ से मारा था। इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान है कि कदाचित् अपने भाई सारंगदेवजी की मृत्यु का बदला लेने के लिए, जो सोलंकियों के हाथ से मारे गये थे, चांदाजी ने नारायणदास को मारा हो।

---

(१) [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] आदि ठिकाने जगमालजी की सन्तति के अधिकार में हैं और [illegible] ([illegible]) में भी इनके वंशजों का निवास है।

मारवाड़ में इनकी सन्तान के बहुत से ठिकाने हैं, जिनमें बलूंदा और कुड़की मुख्य हैं। इनके सिवा शाहपुरा राज्य में खामोर नामक ठिकाना भी इनके वंशजों के अधिकार में है। अजमेर प्रान्त में इनकी संतति के कब्ज़े में कराप, ढाल, तलार, पड़ा, बेड़ा, बड़ी और छोटी सोल, भाड़ोल, चांपानेरी प्रभृति अनेक छोटे छोटे ग्राम हैं। मेवाड़ में अमरत्या, वराव्यां, बड़ला, जैसिंहपुरा व खारड़ी आदि गांवों में इनकी संतति की भौम है।

५—करणजी
६—अचलाजी } इनके विशेष वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हो सके।
७—धीकाजी

८—पृथ्वीराजजी—इनकी संतति की मेवाड़ में चाखड़ला, आकोला, रे, रामपुरया आदि ग्रामों में भौम है तथा भैंसरोड़गढ़ ठिकाने में इनके वंशजों की जागीर में माथासर नामक ग्राम है। सोडार (बदनोर) में भी संतान है।

९—सारंगदेवजी—इनका भी विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका। कविराजा बांकीदानजी की पुस्तक से केवल इतना ही ज्ञात हो सका है कि यह सोलंकियों से युद्ध करके काम आये।

१०—प्रतापसिंहजी—ये चित्तोड़ के महाराणा रायमलजी के दौहित्र थे। महाराणा ने इनको पचास हज़ार रुपये वार्षिक आय का घाणेराव का परगना जागीर में प्रदान किया। प्रतापसिंहजी के उत्तराधिकारी उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपालदासजी हुए। गोपालदासजी के ज्येष्ठ पुत्र किशनदासजी थे। बांकीदानजी की ख्यात से ज्ञात होता है कि इन्होंने अपनी जागिर के घाणेराव[1] नामक गांव में महल बनवाकर वहीं अपनी राजधानी स्थापित की। किशनदासजी के उत्तराधिकारी दुर्जनसिंहजी हुए। दुर्जनसिंहजी के पीछे घाणेराव की गद्दी पर उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी विराजमान हुए। ठाकुर गोपीनाथजी बड़े प्रसिद्ध योद्धा

(१) आबू पर अचलेश्वर मन्दिर में विशाल लोहे के एक त्रिशूल पर एक लेख खुदा है जिसका आशय है कि यह त्रिशूल घाणेरा गांव में सं० १४६८ में बना और भाणा के ठाकुर मांडण और कुंवर भादा ने इसे अचलेश्वर को चढ़ाया। गौ० ही० ओझा, राजपूताने का इतिहास पृष्ठ २६५।

और प्रभावशाली सामन्त थे। महाराणा राजसिंहजी के समय में इन्होंने मुग़लों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया। महाराणा जयसिंहजी की भी इन पर बड़ी कृपा थी। इन्हीं से मेड़तियों की गोपीनाथोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। महाराणा अमरसिंहजी ने ठाकुर गोपीनाथजी को सेना देकर सिरोही पर भेजा। गोपीनाथजी ने सिरोही के १२ गांव गोड़वाड़ में मिलाये और सिरोही का आधा दाण मेवाड़ राज्य के अधीन किया। गोपीनाथजी की पोती का सम्बन्ध सिरोही के राजकुमार के साथ हुआ। गोपीनाथजी का देहान्त रामपुरे में हुआ।

ठाकुर गोपीनाथजी के चार पुत्र हुए—

१. सुरताणजी	३ अभयसिंहजी
२ अनोपसिंहजी	४ मोहब्बतसिंहजी

.. महाराणा जयसिंहजी ने चाणोद का ठिकाना अनोपसिंहजी को और कोठारिये[1] का ठिकाना अभयसिंहजी को इनकी वीरता के कार्यों से सन्तुष्ट होकर प्रदान किया। महाराणा अमरसिंहजी ने अभयसिंहजी को अपना वकील बनाकर दिल्ली में महाराज अजीतसिंहजी के पास भेजा, जहां महाराणा साहब का कार्य इन्होंने सफलतापूर्वक संपादन किया। घाणेराव का ठिकाना अद्यावधि इनके वंशजों के अधिकार में है। कर्नल टॉड साहब ने लिखा है कि घाणेराव के ठाकुर का ख़ास काम मेवाड़ के कुंभलगढ़ नामक क़िले की रक्षा करना था और इस ठिकाने की अनेक पीढ़ियां मुग़लों के आक्रमण से इस क़िले की रक्षा करने में काम आईं। ई० स० १८१९ (वि० सं० १८७६) में लिखते हुए टॉड साहब ने इस तरह वर्णन किया है—"राजपूतों को अपनी पुरातन प्रतिष्ठा की रक्षा करने का विचार इतना अधिक रहता है कि अब भी जब कभी घाणेराव का अधिकारी या उसका कोई नज़दीकी भाईबन्धु महाराणा के दरबार में उपस्थित होता है तब महाराणा का चांदी का घोटा रखनेवाला सेवक, 'कुंभलमेर को याद करो' यह शब्द उच्चारण करके उसको मुजरा करता है और अभी तक घाणेरावावाले को हरएक ख़ुशी के मौक़े पर महाराणा की तरफ़ से खिलअत बख़्शा जाता है"। वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में

(१) संभव है यह ठिकाना कुछ समय तक इनके अधिकार में रहा हो।

गोड़वाड़ प्रांत के मेवाड़-राज्य के अधिकार से निकलकर मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत हो जाने से घाणेराव का ठिकाना भी उसी समय से जोधपुर-राज्य के मातहत हो गया। महाराणा साहब के दरबार में घाणेराव के सामन्त की पांचवीं बैठक नियत थी। मेड़तियों की यह बैठक अभी तक दरबार में खाली रहती है[1] और जब कभी घाणेराववाले महाराणा साहब के दरबार में उपस्थित होते हैं तो उसी पर बैठते हैं। घाणेराव का ठिकाना मारवाड़ राज्य के मातहत हुआ उस समय वहां के ठाकुर वीरमदेवजी थे। घाणेराव के वर्तमान अधिकारी ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी हैं। प्रतापसिंहजी के वंशजों के अधिकार में घाणेराव के अतिरिक्त मारवाड़ राज्य में चाणोद, कोट, कोटड़ी ठिकाने हैं। मालवा प्रांत में इनकी संतति के अधिकार में बिरोल्या, मकरावण और वेल्यो आदि ग्राम हैं तथा अजमेर प्रांत के भराई नामक गांव में इनके वंशजों की भौम है।

११—मांडणजी—इनका भी विशेष वृत्तान्त विदित नहीं हो सका। कविराजा बांकीदानजी की हस्तलिखित पुस्तक से केवल इतना ही ज्ञात हुआ है कि इनका विवाह सोलंकियों के यहां हुआ था।

१२—सेखाजी, इनका बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया।

१३—खेमकरणजी—इनका भी बाल्यावस्था में ही परलोकवास हो गया था।

(१) मेजर इर्सेकिन रचित जोधपुर स्टेट का गज़ेटियर, पृष्ठ १८१।

छठा प्रकरण

राव जयमलजी

राव जयमलजी का जन्म

राव वीरमदेवजी का स्वर्गवास होने के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र राव जयमलजी वि० सं० १६०० के फाल्गुन (ई० स० १५४४ फरवरी) में मेड़ते के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था ३६ वर्ष से कुछ अधिक थी। इनका जन्म वि० सं० १५६४ आश्विन शुक्ला ११ शुक्रवार (ई० स० १५०७ ता० १७ सितम्बर) को हुआ था[1]। मेड़तिया राजवंश में राव जयमलजी सब से अधिक

---

(१) मारवाड़ के प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां की जन्मपत्रियों का एक प्राचीन संग्रह अजमेर के महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशंकरजी ओझा के पास है, उसमें भी राव जयमलजी की जन्मपत्री विद्यमान है। उसी के आधार पर राव जयमलजी के जन्मदिन का उल्लेख किया गया है।

जयमलजी की जन्मपत्री—

संवत् १५६४ आसोज सुदि ११ रा वीरमदे सुत जैमल जन्म ॥
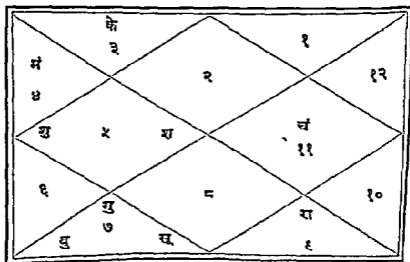
चतुरकुलचरित्र नामक रूपादेवी के इतिहास में उक्त संवत् की आश्विन शुक्ला ८ को

प्रातःस्मरणीय वीरशिरोमणि
राव श्री जयमलजी (मेड़ता व बदनौराधीश)

प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश हुए। वीरशिरोमणि राव जयमलजी का नाम न केवल राजपूताने में प्रत्युत सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। देशी इतिहासकारों ने तो आपके समुज्वल वीरचरित का अपनी ख्यातों और पुस्तकों में वर्णन किया ही है, परन्तु प्रतिपक्षी मुसलमान-लेखकों से भी इनकी अलौकिक वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा गया। अबुलफज़ल, निजामुद्दीन, बदायूनी तथा फ़िरिश्ता आदि मुग़लकाल के सभी प्रसिद्ध इतिहासवेत्ताओंने उनकी लिखी हुई तवारीख़ी किताबों में राव जयमलजी के लोकोत्तर शौर्य और साहस की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। वर्तमानकाल में इतिहास विद्या के परमानुरागी कर्नल टॉड, इलियट्, स्मिथ, काउन्टनोअर, स्ट्रेटन, वाल्टर तथा लेनपुल आदि अनेक प्रसिद्ध यूरोपियन ग्रंथकारों ने भी राव जयमलजी के वीररस से भरे हुए जीवन-चरित का बहुत ही गौरव के साथ वर्णन किया है।

राव जयमलजी के साथ का राव मालदेवजी का बर्ताव

राव वीरमदेवजी के समान राव मालदेवजी ने इनके साथ भी पूर्ण शत्रुता का भाव रक्खा, इसीसे इनकी भी आयु का अधिकांश भाग युद्ध में ही व्यतीत हुआ। राव मालदेवजी से इनके २२ युद्ध हुए, जिनमें जो विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, उनका वर्णन आगे किया जायगा। राव मालदेवजी जैसे प्रबल शत्रु के साथ निरन्तर युद्ध करते रहने से राव जयमलजी को बहुत ही भारी हानि उठानी पड़ी, जैसा कि आगे के वर्णन से पाठकों को भलीभांति विदित होगा। राव मालदेवजी को इन्होंने अनेक बार परास्त भी कर दिया[1] तथापि मेड़ते का राज्य जोधपुर जैसे सुविशाल राज्य का कहां तक सामना कर सकता था। राव मालदेवजी के पास द्रव्य की और सेना की कोई कमी न थी। पराजित हो जाने पर भी शीघ्र ही नये सैनिक एकत्र कर राव मालदेवजी पुनः मेड़ते पर चढ़ाई कर देते थे। राव जयमलजी को पहले के युद्ध की क्षति पूरी करने का अवकाश भी न मिलता था इतने में दूसरी बार मुक़ाबला करने की तैयारी करनी पड़ती थी। इससे शनैः शनैः मेड़ते

राव जयमलजी के जन्म होने का उल्लेख है, परंतु चंडू के यहां की जन्मपत्री से न मिलने के कारण तथा अन्य कोई दृढ़ प्रमाण इसके समर्थन में न होने से वह शुद्ध प्रतीत नहीं होता।

(१) विश्वेश्वरनाथजी रेऊ कृत भारत के प्राचीन राजवंश; भाग ३, पृ० १७१।

में द्रव्य और मनुष्य दोनों ही की कमी होने लगी तथापि महावीर राव जयमलजी का उत्साह ज़रा भी कम न हुआ। प्रत्येक बार बड़े साहस और निर्भीकता के साथ इन्होंने राव मालदेवजी से युद्ध किया और इनकी उपस्थिति में राव मालदेवजी मेड़ते पर कभी अधिकार न कर सके। केवल दो बार इनकी अनुपस्थिति में ही मेड़ते पर राव मालदेवजी अपना आधिपत्य स्थापित कर सके।

मेड़ते के राज्य-सिंहासन पर राव जयमलजी के विराजने के समय मारवाड़ के राज्य पर बादशाह शेरशाह का अधिकार था। राव मालदेवजी बड़ी विपत्ति की दशा में इधर उधर घूमते फिरते थे। लगभग डेढ़ वर्ष के पश्चात् ही वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ शुक्ला १३ (ई० स० १५४५ ता० २४ मई) को बादशाह शेरशाह का देहान्त हो गया और उसका पुत्र जलालखां सलीमशाह के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इस परिवर्तन के समय अपने पैतृक राज्य की पुनः प्राप्ति का उपयुक्त अवसर देखकर राव मालदेवजी ने चांपावत जैता भैरूंदासोत आदि को पठानों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। सोजत के पास युद्ध होने पर पठान सेना परास्त होकर भाग गई और जोधपुर पर राव मालदेवजी ने अधिकार कर लिया। मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात जिल्द १, पृष्ठ ७४ में लिखा है—"५२४ दिन तक जोधपुर पर बादशाह का अधिकार रहा। जोधपुर पर अपना अधिकार पीछा स्थापित करने के पश्चात् धीरे धीरे अपना सैन्य-बल बढ़ाकर मालदेवजी ने अजमेर को भी अपने कब्ज़े में कर लिया"। इस वृत्तान्त को सुनकर चित्तोड़ के महाराणा उदयसिंहजी ने भी अजमेर पर अपना अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया, परन्तु राव मालदेवजी के सेनापति राठोड़ पृथ्वीराजजी जैतावत ने आगे बढ़कर धनला नामक गांव के पास बड़ी वीरता से चित्तोड़ की सेना का मुक़ाबला किया और लड़ाई में हराकर उसको पीछे हटा दिया[1]। इस पराजय के कारण महाराणा का क्रोध और भी अधिक बढ़ गया और उन्होंने शीघ्र ही बहुत बड़ी सेना एकत्रित कर पुनः अजमेर पर चढ़ाई की। इस

जोधपुर से शेरशाह का अधिकार उठना

(१) विश्वेश्वरनाथजी रेउ कृत भारत के प्राचीन राजवंश, भाग ३, पृष्ठ १००। चतुरकुलचरित्र भाग १, पृष्ठ ४८।

अवसर पर सहायता के लिए निमंत्रित किये जाने से मेड़ताधीश राव जयमलजी भी पांच हज़ार सेना सहित महाराणा के पक्ष में सम्मिलित हुए, परन्तु युद्ध का प्रसङ्ग आने से पूर्व ही बादशाह सलीमशाह की सेना ने अजमेर राठोड़ों से छीन लिया था। इस कारण से दोनों ही पक्ष शान्त रहे वरना इस मर्तबा भी अवश्य ही बड़ा भयङ्कर युद्ध होता। महाराणा का पक्ष ग्रहण करने से मालदेवजी की जयमलजी से पुनः शत्रुता हो गई।

बीकानेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में राव मालदेवजी ने प्रबल सेना लेकर मेड़ते पर आक्रमण किया। राव जयमलजी भी युद्ध के लिए तैयार हुए और बीकानेर से भी सहायता मंगवाई, जिसपर बीकानेर के राव कल्याणमलजी ने तुरन्त सात हज़ार सवारों की सेना तथा अपने राज्य के निम्नलिखित प्रतिष्ठित सरदार इनकी सहायता के लिए भेजे—

राव मालदेवजी के साथ की राव जयमलजी की लड़ाई

१-महाजन के ठाकुर अर्जुनसिंहजी राठोड़
२-शृंगसर के ठाकुर शृंगजी राठोड़
३-चाचावाद के ठाकुर धणीरजी राठोड़
४-जैतपुर के राव कृष्णसिंहजी राठोड़
५-पूंगल के राव जैतसिंहजी भाटी
६-वैद्य महता अमराजी
७-बच्छावत सांगाजी

इस प्रकार विशाल सेना से सुसज्जित होकर पांच कोस दूर शत्रु-सेना के सम्मुख जाकर राव जयमलजी ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। राव मालदेवजी की सेना ने बड़ी बहादुरी से मुक़ाबला किया, परन्तु अन्त में मेड़ता और बीकानेर दोनों राज्यों की सेनाओं के संयुक्त आक्रमण के आगे जोधपुर की सेना ठहर न सकी। राव जयमलजी की जीत हुई और राव मालदेवजी को पराजित होकर युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। मेड़ता और बीकानेर के सैनिकों ने उनका पीछा किया तब अपने स्वामी के प्राणरक्षार्थ राठोड़ नगा भारमलोत बड़ी वीरता से लड़ा और वहीं स्वामी के लिए लड़ते लड़ते काम आ गया। इसके अतिरिक्त राठोड़ चांदा

आदि राव मालदेवजी के अन्य बड़े बड़े वीर सैनिक भी इस युद्ध में मारे गये और राव जयमलजी तथा बीकानेर की सेनाएं दोनों विजयी होकर वापस लौटीं। इस अवसर पर बीकानेर के वीर सैनिकों ने राव मालदेवजी के नक्क़ारा, निशान आदि राज्यचिह्न छीन लिये और विजय प्राप्त होने पर उन समस्त राज्यचिह्नों को राव जयमलजी के भेंट किये, परन्तु राव जयमलजी ने अपने वंश के पाटवी का इतना अनादर करना उचित न समझकर जुला अथवा जोलिया नामक एक मेड़ता के भांभी के द्वारा उन समस्त राज्यचिह्नों को वापस लौटा दिया। मेड़ते का भांभी नक्क़ारा, निशान इत्यादि लिये हुए लांबिया गांव के पास से निकला तब अपना मन खुश करने के लिए नक्क़ारा बजाने लगा। संयोगवशात् राव मालदेवजी भी उसी ग्राम में ठहरकर विश्राम ले रहे थे। उन्होंने नक्क़ारे की आवाज़ सुनकर समझा कि मेड़तियों की सेना आ पहुंची। बहुत भयभीत होकर उन्होंने अपने सामन्त राठोड़ चान्दाजी से कहा कि किसी प्रकार मुझे शीघ्र जोधपुर पहुंचा दो। चान्दाजी ने उनको बहुत सान्त्वना देकर कहा कि आप इतने क्यों घबड़ाते हैं, मैं अभी आपको जोधपुर पहुंचा देता हूं। फिर चान्दाजी ने राव मालदेवजी को सकुशल जोधपुर पहुंचाया। इसके पीछे जब मेड़ते का भांभी नक्क़ारा निशान इत्यादि लिये हुए जोधपुर पहुंचा तब राव मालदेवजी अपने पूर्व भय के कारण बहुत ही लज्जित हुए। इस पराजय से राव मालदेवजी इतने हतोत्साह हो गये कि बर्षों तक मेड़ते पर आक्रमण करने का साहस न कर सके; अतः इस शान्ति के समय में राव जयमलजी को मेड़ता-राज्य की उन्नति करने का सर्वोत्तम अवसर मिल गया। इन्होंने अनेक दर्शनीय राजभवनों का निर्माण कराकर राजधानी मेड़ता की शोभा खूब बढ़ाई।

महाराणा उदयसिंहजी का अजमेर, नागौर आदि पर अधिकार

वि० सं० १६१० के माघ (ई० स० १५५४ जनवरी) में बादशाह सलीमशाह का देहान्त हो गया। यह सुनकर राव मालदेवजी ने शीघ्र ही अपने सेनाध्यक्ष बगड़ी के सामन्त पृथ्वीराजजी जैतावत को अजमेर विजय करने के लिए भेजा। पृथ्वीराजजी ने तत्काल अजमेर पहुंचकर वहां के क़िले को चारों तरफ़ से घेर लिया, परन्तु शाही क़िलेदार ने अजमेर को महाराणा के अर्पण करना ही उचित

समझकर उनको इस वृत्तान्त से सूचित कर अजमेर आने का सन्देश भेजा। महाराणा उदयसिंहजी ने शीघ्र ही विशाल सेना एकत्रित कर अजमेर के लिए प्रस्थान किया। इस अवसर पर भी बीकानेर के राव कल्याणमलजी और मेड़ते के राव जयमलजी प्रभृति सहायक नरेश अपनी अपनी सेना सहित महाराणा साहब के साथ थे। चित्तोड़, बीकानेर और मेड़ता इन तीनों ही राज्यों की सेनाओं के एक ही पक्ष में एकत्रित हो जाने से जोधपुर के सेनापति पृथ्वीराजजी जैतावत युद्ध करने का साहस न कर सके और लज्जित होकर वापस ही लौट गये। अजमेर पर महाराणा का अधिकार हो गया और पुनः मेड़ता तथा बीकानेर की सेनाओं की सहायता से नागोर भी जीत लिया गया। नागोर विजय करने के उपरान्त महाराणा तो रणथंभोर के दुर्ग पर अधिकार करते हुए चित्तोड़ पधारे और राव जयमलजी ने अपनी राजधानी मेड़ते में पदार्पण किया।

महाराणा उदयसिंहजी का पक्ष ग्रहण करने से राव जयमलजी पर पुनः राव मालदेवजी क्रुद्ध हो गये और राव जयमलजी से इस विरोध का बदला लेने के लिए उन्होंने वि० सं० १६११ के वैशाख (ई० स० १५५४ अप्रेल) में मेड़ते पर चढ़ाई की। राव मालदेवजी के सेनापति पृथ्वीराजजी जैतावत ने जो अजमेर पर अधिकार करने में असफल हो जाने से लज्जित होकर अपने गांव बगड़ी के बाहर ही रहते थे, राव मालदेवजी को बहुत समझाया कि पहले अजमेर पर चढ़ाईकर उसको विजय करें, मेड़ते को इस अवसर पर जीतना सहज नहीं है, परन्तु राव मालदेवजी ने क्रोध के आवेश में उनकी बात स्वीकार न की और पृथ्वीराजजी को भी अपने साथ मेड़ते की तरफ़ ले गये। राव मालदेवजी के युद्धार्थ आने का वृत्तान्त सुनकर राव जयमलजी भी युद्ध के लिए तैयार हुए। यद्यपि इस आक्रमण के अचानक होने से राव जयमलजी को इतना समय न मिल सका कि वे चित्तोड़ और बीकानेर से सेना मंगवा सकें तथापि वीरशिरोमणि राव जयमलजी ने किंचिन्मात्र भी भयभीत न हो कर अपने सात हज़ार सवारों की फ़ौज लेकर बड़ी वीरता से शत्रुओं का मुक़ाबला किया। यद्यपि जोधपुर की सेना मेड़ते की सेना से चतुर्गुण अधिक थी तथापि मेड़तिया वीरों ने ऐसा

राव जयमलजी से लड़ाई में हारकर राव मालदेवजी का भागना

असीम साहस और पराक्रम दिखलाया कि जोधपुर की सेना के पांव उखड़ गये और पराजित होकर युद्धक्षेत्र से हटना पड़ा। राव मालदेवजी के हजारों सैनिक युद्ध में मारे गये, जिससे राव मालदेवजी को भी युद्ध से विमुख होकर भागना पड़ा। राव जयमलजी ने लड़ाई से भागते हुए राव मालदेवजी का पीछा किया तब मारवाड़ के सेनापति पृथ्वीराजजी ने अपने स्वामी के प्राणरक्षार्थ वापस फिर कर राव जयमलजी का मुक़ाबला किया और बड़ी वीरता से युद्ध कर वे समरभूमि में ही काम आये। अपने वीर स्वामिभक्त सेनाध्यक्ष के मारे जाने से राव मालदेवजी को अत्यन्त शोक हुआ और बहुत खिन्न होकर वे जोधपुर पहुंचे। इधर राव जयमलजी ने विजयश्री से विभूषित होकर बड़े आनन्द और समारोह के साथ अपनी राजधानी मेड़ते में प्रवेश किया।

इस युद्ध के थोड़े ही दिनों पीछे बगड़ी के ठाकुर पृथ्वीराजजी के सहोदर कनिष्ठ भ्राता देवीदासजी जैतावत अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु का बदला लेने के लिए तैयार हुए। इस बार राव मालदेवजी स्वयं तो पूर्व पराजित की लज्जा के कारण इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए, परन्तु अपने कनिष्ठ पुत्र चन्द्रसेनजी को अपनी संपूर्ण सेना देकर देवीदासजी की सहायता के लिए भेजा। इस अवसर पर भी अचानक आक्रमण होने के कारण राव जयमलजी बीकानेर आदि मित्रराष्ट्रों से सहायता प्राप्त न कर सके और इसके अतिरिक्त पूर्व के युद्धों में मेड़ता के बहुतसे वीर सैनिक भी काम आचुके थे तथापि अतुल साहसी वीराग्रणी राव जयमलजी ने निर्भीकता के साथ वि० सं० १६११ आषाढ़ कृष्णा १३ (ई० स० १५५४ ता० २१ मई) को मुक़ाबला करने के लिए सम्मुख प्रस्थान किया। दोनों पक्षों की भयंकर मुठभेड़ हुई। इस अवसर पर राव जयमलजी के पास जोधपुर की सेना से दशमांश भी सेना नहीं थी तो भी इनके सैनिकों ने लड़ने में कोई कसर न रक्खी, परन्तु विजय लाभ न हो सका। ऐसी अवस्था में भी राव जयमलजी का हृदय साहसपूर्ण बना रहा। युद्ध-क्षेत्र में विजय प्राप्त करना संभव न देखकर उन्होंने मेड़ता दुर्ग में प्रवेशकर वहीं से शत्रुओं पर आक्रमण करना उचित समझा। जोधपुर की फ़ौज ने मेड़ता नगर को चारों तरफ़ से घेर लिया और

देवीदासजी जैतावत से राव जयमलजी का युद्ध

लगभग एक मास पर्यन्त परस्पर दोनों सेनाओं का युद्ध होता रहा, परन्तु राव जयमलजी की वीरता और सावधानी से शत्रुओं को मेड़ता नगर में प्रवेश करने का अवसर न मिल सका[1]।

इन्हीं दिनों जब कि राव जयमलजी शत्रुओं से इस प्रकार अपनी राजधानी की रक्षा कर रहे थे, चित्तोड़ के महाराणा उदयसिंहजी बीकानेर के राव कल्याणमलजी की पुत्री से विवाह करने के निमित्त मिती भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के मुहूर्त पर बीकानेर पधार रहे थे कि मार्ग में मेड़ते के अवरोध का वृत्तान्त सुनकर वहां पधारे और दोनों पक्षों से तीन दिन तक युद्ध शान्त रखने की स्वीकृति लेकर राव जयमलजी से मिलने के लिए दुर्ग में गये और इनको अनेक प्रकार से समझा बुझाकर तथा यह प्रतिज्ञा कर कि यदि इस अवसर पर मेड़ता आपके हाथ से निकल जायगा तो सहायता करके मैं पीछा दिला दूंगा। चित्तोड़ नरेन्द्र महाराणा उदयसिंहजी मेड़ताधीश राव जयमलजी को विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अपने साथ बीकानेर ले गये। राव जयमलजी की अनुपस्थिति में मेड़ते पर जोधपुर का अधिकार हो गया।

मेड़ते पर राव मालदेवजी का अधिकार होना

विवाह करने के उपरान्त महाराणा साहब बीकानेर से चित्तोड़ पधारे और मेड़ता-राज्य से वंचित हो जाने के कारण राव जयमलजी को निर्वाह के निमित्त वि० सं० १६११ के आश्विन (ई० स० १५५४ सितम्बर) में १००० ग्रामों सहित बदनोर का प्रांत प्रदान किया, जो अनेक बार बादशाही आक्रमणों से न्यूनाधिक होने पर भी राव जयमलजी के वंशजों के अधिकार में चला आता है। १००० ग्रामों सहित बदनोर के प्रदान किये जाने का प्रामाणिक उल्लेख स्पष्टतया अमरकाव्य में निर्दिष्ट है। मेड़ता-राज्य की अपेक्षा बदनोर की जागीर हर तरह से आय और प्रतिष्ठा में न्यून होने के कारण राव जयमलजी ने मेड़ते को पुनः प्राप्त करने का उद्योग बराबर जारी रक्खा।

वि० सं० १६१२ (ई० स० १५५५) में मुग़ल बादशाह हुमायूं ने चढ़ाई करके सूर खानदान के अधिकार से पुनः दिल्ली के राज्य को विजय किया,

(१) पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ कृत भारत के प्राचीन राजवंश, तृतीयभाग पृष्ठ १७१।

हाजीखां पठान का अजमेर लेना और राव जयमलजी का मेड़ते पर पीछा अधिकार होना

परन्तु कुछ मास पीछे ही उसका देहान्त हो गया। तदुपरान्त वि० सं० १६१२ के फाल्गुन (ई० स० १५५६ फरवरी) में उसके पुत्र परम प्रसिद्ध जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ने दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित किया। उसने हेमूं दूसर और हाजीखां पठान को हराकर अपना राज्य जमाया हाजीखां पठान सूर बादशाह सलीमशाह का एक प्रबल सेनापति था और मेवात प्रांत (अलवर) का अधिकारी था। बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी नासिरुल्मुल्क नामक एक मुग़ल सेनाध्यक्ष को मेवात प्रांत का अधिकारी नियत किया और हाजीखां को वहां से निकालने का आदेश देकर नासिरुल्मुल्क को सेना सहित मेवात की तरफ़ भेजा। विजयी मुग़ल सेना का आगमन सुनकर हाजीखां तो नासिरुल्मुल्क के पहुंचने से पहले ही भयभीत होकर अलवर से भागकर अजमेर चला आया। अजमेर पहुंचकर हाजीखां ने चित्तोड़ के दुर्गाध्यक्ष को निकालकर वहां पर अपना अधिकार स्थापित किया। इस वृत्तान्त को सुनकर महाराणा ने हाजीखां पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी, परन्तु महाराणा की सेना के पहुंचने के पूर्व ही जोधपुर की सेना ने अजमेर पहुंचकर हाजीखां पर हमला किया। यह अवस्था देखकर हाजीखां ने चालाकी से कृत्रिम दीनता दिखलाकर महाराणा साहब को अपना सहायक बनाने के निमित्त उनसे निवेदन कराया कि 'हमको राव मालदेव मारता है हम तो बावले ही हैं'। महाराणा उदयसिंहजी ने हाजीखां के नम्र और दीन शब्दों से प्रभावित होकर उसका पक्ष ग्रहण कर लिया। महाराणा के हाजीखां के पक्ष में हो जाने से राव मालदेवजी की सेना युद्ध का साहस न कर वापस ही जोधपुर चली गई। महाराणा की सेना में इस चढ़ाई के अवसर पर बूंदी के राव सुरजनजी हाड़ा, मेड़ताधीश राव जयमलजी तथा रामपुरा के शासक राव दुर्गाजी सीसोदिया आदि बड़े बड़े प्रतिष्ठित नरेश थे। राव मालदेवजी की सेना के भयभीत होकर लौट जाने से महाराणा उदयसिंहजी ने उपयुक्त अवसर देखकर मेड़ते पर भी आक्रमण कर दिया और मारवाड़ के दुर्गाध्यक्ष को परास्तकर राव जयमलजी का मेड़ते पर अधिकार करा दिया।

महाराणा उदयसिंहजी ने हाजीखां से उसकी पूर्व प्रतिज्ञानुसार इस सहायता के बदले चालीस मन सोना, उसका सर्वश्रेष्ठ खास हाथी तथा रंगराय पातर (वेश्या) जो उसकी प्रेयसी थी, मांगी। सोना और हाथी देना तो हाजीखां ने स्वीकार कर लिया परन्तु वेश्या को देने से इन्कार कर दिया। इसी कारण महाराणा और हाजीखां के परस्पर शत्रुता हो गई। महाराणा ने बीकानेर के राव कल्याणमलजी और मेड़ता नरेश राव जयमलजी को साथ लेकर हाजीखां पर चढ़ाई की। इस बार चालाक हाजीखां ने राव मालदेवजी से मदद चाही। मालदेवजी का महाराणा से पहले ही विरोध हो चुका था, अतः बदला लेने का यह उपयुक्त अवसर देखकर उन्होंने राठोड़ देवीदासजी जैतावत और जैतमलजी जैसावत आदि प्रसिद्ध सेनापतियों की अध्यक्षता में १५०० सैनिकों को हाजीखां की सहायतार्थ भेजा। वि० सं० १६१३ फाल्गुन कृष्णा ६ (ई० स० १५५७ ता० २४ जनवरी) को हरमाड़ा गांव के पास दोनों पक्षों की सेनाओं का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। जोधपुर से सैनिक सहायता मिल जाने के कारण हाजीखां को महाराणा इस युद्ध में पराजित न कर सके। हाजीखां का एक तीर महाराणा के लगा और वे मूर्छित हो गये। अपने स्वामी की यह अवस्था देखकर चित्तोड़ की सेना व्याकुल होकर पराङ्मुख हो गई। महाराणा के अनेक बड़े बड़े प्रतिष्ठित सरदार, रामपुरा के राव दुर्गाजी चन्द्रावत, राठोड़ राव तेजसिंहजी, बालीसा सूजाजी, डोडिया भीमजी चूंडावत, छीतरजी आदि सरदार इस युद्ध में काम आये[१]।

महाराणा उदयसिंहजी की हाजीखां से लड़ाई

महाराणा की पराजय का वृत्तान्त सुनकर राव मालदेवजी ने जैतारण से मेड़ते पर आक्रमण किया। राव जयमलजी सेना-सहित इस समय महाराणा के साथ थे, अतः मेड़ते की रक्षार्थ बहुत ही कम सेना रह जाने से राव जयमलजी की अनुपस्थिति में मेड़ते पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। इस बार अपनी क्षुद्र बुद्धि और ईर्ष्यालु स्वभाव के कारण उन्होंने मेड़ते के समस्त राजभवनों का विध्वंस करा दिया,

मेड़ते पर फिर राव मालदेवजी का अधिकार

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र १५। मारवाड़ की ख्यात; जिल्द १, पृ० ७५-७६।

केवल एक श्रीचतुर्भुजजी के मन्दिर को अखंडित छोड़ा। मेड़ता के पुनः शत्रुओं के हस्तगत हो जाने से महाराणा उदयसिंहजी ने पूर्वानुसार राव जयमलजी को फिर बदनोर प्रांत प्रदान किया। हाजीख़ां की विजय का वृत्तान्त सुनकर बादशाह अकबर ने तुरन्त अजमेर पर आक्रमण करने के लिए शाहकुलीख़ां और कासिमख़ां की अधीनता में सेना भेजी। मुग़लवाहिनी का आगमन सुनकर पुनः हाजीख़ां भयभीत हो गया और युद्ध किये बिना ही वहां से गुजरात की तरफ़ भाग गया और कासिमख़ां ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। इसके अनन्तर नागोर पर भी शाही अधिकार हो गया और शाहकुलीख़ां ने जैतारण पर आक्रमण करके वहां के दुर्ग को भी अपने अधीन कर लिया।

राव जयमलजी के कनिष्ठ भ्राता जगमालजी किसी कारण अपने ज्येष्ठ भ्राता से अप्रसन्न होकर राव मालदेवजी के पास चले गये थे। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में मेड़ते में मालकोट नामक दुर्ग तैयार करवाकर राव मालदेवजी ने मेड़ते का आधा राज्य तो अपने अधिकार में रख लिया और देवीदासजी जैतावत को वहां का अधिकारी नियतकर बाकी आधा राज्य जगमालजी को प्रदान कर दिया।

वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में मालदेवजी ने देवीदासजी जैतावत को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। देवीदासजी ने बिहारी पठानों को पराजित कर जालोर को विजय कर लिया। राव जयमलजी बदनोर से राव मालदेवजी के राज्य में प्रायः आक्रमण किया करते थे अतः जालोर विजय करके देवीदासजी ने बदनोर पर भी आक्रमण कर दिया। राव जयमलजी ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया, परन्तु विपक्षियों के संख्या में बहुत अधिक होने से इनको बदनोर का भी परित्याग करना पड़ा।

देवीदासजी जैतावत का बदनोर पर अधिकार करना

यहां से राव जयमलजी चित्तोड़ की तरफ़ जाते थे कि बादशाह अकबर के ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर आने का वृत्तान्त सुनकर ये डीडवाणे के मुकाम पर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह से राव जयमलजी ने मेड़ता

मिरज़ा शरफ़ुद्दीन का राव जयमलजी को मेड़ता दिलाना

और बदनोर के अपहरण किये जाने का सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया। बादशाह ने राव जयमलजी का बड़ा सम्मान किया और मिरज़ा शरफ़ुद्दीनहुसैन को एक हज़ार सवारों की सेना के साथ मेड़ते पर आक्रमण करने का आदेश दिया। मेड़ते का दुर्ग इस समय राव मालदेवजी की तरफ़ से जगमालजी के अधिकार में था और पांच सौ वीर राजपूत भी राठोड़ देवीदासजी की अध्यक्षता में इस दुर्ग की रक्षार्थ नियत थे। मिरज़ा शरफ़ुद्दीन ने शाही हुक्म के मुताबिक मेड़ते पर चढ़ाई की। मुग़ल सेना के चार सवारों ने आगे बढ़कर बड़े साहस से क़िले के दरवाज़े पर तीर लगाये। राजपूतों ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर क़िले की दीवारों पर से इनपर ईंट, पत्थर और तीर चलाये, जिससे दो सवार तो वहीं मारे गये और शेष दो ज़ख्मी हो कर भागे। यह देखकर मिर्ज़ा ने आहिस्ते आहिस्ते काम लेना और क़िले को जीतने के लिए सामान इकट्ठा करना शुरू किया। क़िले की एक बुर्ज की तह तक सुरंग लगाई और बारूद भरकर वह उड़ा दी गई, जिससे बुर्ज धुनिये की रुई की तरह उड़ गई। बुर्ज के उड़ जाने से सारे क़िले में घबराहट छा गई। क़िले की दीवार में भँभा पड़ गया जिससे बादशाही लश्कर अन्दर घुसा, राजपूत जान से हाथ धोकर दिन भर खूब लड़ते रहे और रात को लड़ाई बन्द रही। राजपूतों ने रातभर में क़िले की मरम्मत कर उसे मज़बूत कर लिया, परन्तु अन्ततः राजपूत व्याकुल हो गये और क़िला इनके लिए क़ैदखाना बन गया। क़िले के आदमी संधि करके बाहर निकलना चाहते थे, परन्तु मिरज़ा इसे स्वीकार नहीं करता था। अन्त में यह निर्धारित हुआ कि क़िले के आदमी तमाम असबाब छोड़कर बाहर चले जावें। संधि के इसी नियम के अनुसार बादशाही लश्कर ने उनको बाहर जाने का मार्ग दे दिया। जगमालजी तो अपने अनुयायियों के साथ बाहर चले गये, परंतु वीर देवीदासजी ने मरने का इरादा किया और अपना सारा असबाब जलाकर पांच सौ सवारों के साथ वे शाही लश्कर से मुक़ाबले के लिए आये। मिरज़ा शरफ़ुद्दीन ने भी अपने प्रधान सहायक राव जयमलजी और राव लूणकरणजी की सम्मति लेकर युद्ध की तैयारी की। देवीदासजी ने भी वापस फिर कर शाही लश्कर से बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध किया, जिसका वर्णन करते हुए प्रसिद्ध इतिहास-

कार अबुलफ़ज़ल ने अपने ग्रंथ 'अकबरनामे' में इस प्रकार लिखा है—"देवीदास ऐसी मरदाना लड़ाई लड़ा कि दास्तान रुस्तम को दिखाया बलिक उसको भी भुला दिया। आखिरकार देवीदास घोड़े से गिरा और शाही फ़ौज के एक गिरोह ने तत्काल उसपर हमला कर उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये"। ऐसा भी कहा जाता है कि देवीदासजी लड़ाई में जख्मी होकर भाग गये। बादशाही लश्कर की विजय हुई और मेड़ते का कुल इलाका बादशाह के कब्ज़े में आ गया। इस प्रकार मारवाड़ की सेना को परास्त कर वि० सं० १६१६ चैत्र शुक्ला १५ (ई० स० १५६२ ता० २० मार्च) को राव जयमलजी ने पुनः मेड़ते पर अपना अधिकार स्थापित किया। मेड़ते को जीतने के पश्चात् मिरजा शरफ़ुद्दीन ने राव जयमलजी की सम्मति से नागोर पर भी, जो उस समय राव मालदेवजी के अधिकार में था, आक्रमण कर उसपर भी अधिकार कर लिया और बादशाह की मंजूरी हासिल करके मिरजा शरफ़ुद्दीन ने नागोर का दुर्गाध्यक्ष भी राव जयमलजी को ही नियत कर दिया।

राव मालदेवजी की मृत्यु

राव मालदेवजी को पुनः राव जयमलजी का इतना भाग्योत्कर्ष सहन न हो सका और बड़ी भारी सेना लेकर उन्होंने नागोर पर आक्रमण किया, परंतु राव जयमलजी और मिरजा शरफ़ुद्दीन इन दोनों ने मिलकर ऐसी वीरता से युद्ध किया कि राव मालदेवजी को पराजित हो कर बड़ी लज्जा से जोधपुर लौटना पड़ा[1]। इसी अंतिम पराजय के कुछ काल पश्चात् ही वि० सं० १६१६ कार्तिक शुक्ला १२ (ई० स० १५६२ ता० ७ नवम्बर) को राव मालदेवजी का स्वर्गवास हो गया। मेड़ता प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा अपूर्ण ही रही। राव मालदेवजी के पीछे जोधपुर के राज्यासन पर उनके कनिष्ठ पुत्र चंद्रसेनजी विराजमान हुए।

राव जयमलजी का मेड़ता छोड़ना

राव मालदेवजी के देहान्त के उपरान्त राव जयमलजी निश्चिन्त हो गये। तदतिरिक्त नागोर के प्राप्त हो जाने से और भी अधिक आनन्दित हुए, परन्तु परमात्मा को इनका यह राज्य-सुख थोड़े ही समय के लिए इष्ट था। अकस्मात् एक नया ही उपद्रव उत्पन्न हो गया।

(१) भारत के प्राचीन राजवंश, तृतीय भाग, पृ० १३४।

राव जयमलजी राजधानी मेड़ते में केवल डेढ़ वर्ष ही राज्य करने पाये थे कि वि० सं० १६२० के आश्विन (ई० स० १५६३ सितम्बर) में मिरज़ा शर्फ़ुद्दीन बादशाह से बाग़ी हो गया। मिरज़ा की बग़ावत का वृत्तान्त सुनकर बादशाह ने उसके स्थान में अजमेर की सूबेदारी के पद पर हुसैनकुलीख़ां को नियत कर दिया और शर्फ़ुद्दीन की कुल जागीर भी इसी को प्रदान कर दी। इस्माइल कुलीख़ां, मुहम्मदसादिक़ख़ां, मुहम्मदकुली तकवी, मिरकबहादुर इत्यादि बड़े बड़े स्वामिभक्त सेनाध्यक्षों की अध्यक्षता में हुसैनकुलीख़ां के साथ नागोर पर आक्रमण करने के लिए बादशाह ने सेना भेजी। शाही फ़ौज के आने का हाल सुनकर मिरज़ा शर्फ़ुद्दीन अत्यन्त भयभीत हो गया और अजमेर का दुर्ग तरख़न दीवाना के सुपुर्द कर स्वयं जालोर की तरफ़ चला गया। शाही लश्कर ने अजमेर दुर्ग के घेरा दिया, परन्तु तरख़न दिवाना ने बड़ी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से दुर्ग को शाही सेना के सुपुर्द कर स्वयं भी शाही फ़ौज में सम्मिलित हो गया। अजमेर पर अधिकार स्थापित करके हुसैनकुलीख़ां ने मेड़ता और नागोर की तरफ़ प्रस्थान किया। मिरज़ा शर्फ़ुद्दीन के बाग़ी हो जाने से बादशाह को यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि राव जयमलजी के परामर्श से ही मिरज़ा ने बग़ावत की है अतः नाराज़ होकर हुसैनकुलीख़ां को यह भी आज्ञा दे दी थी कि राव जयमल से भी मेड़ता और नागोर छीन लेना। इन सब घटनाओं पर विचार करके राव जयमलजी ने यह निर्धारित किया कि यदि मैं इस अवसर पर बादशाही फ़ौज का मुक़ाबला करूंगा तो बादशाह को मेरे प्रति जो सन्देह हुआ है वह अवश्य दृढ़ हो जायगा, अतः दूरदर्शिता के विचार से राव जयमलजी ने इस अवसर पर बादशाही फ़ौज का विरोध न कर स्वेच्छा से ही मेड़ता परित्याग कर देना श्रेष्ठ समझा। हुसैनकुलीख़ां का सम्मान पुरस्सर स्वागत करके उसको राव जयमलजी मेड़ते में ले गये और अपनी मर्ज़ी से प्रसन्नतापूर्वक मेड़ते का राज्य उसको सौंपकर सकुटुम्ब वहां से रवाना हो गये। राव जयमलजी के द्वारा मेड़ता राजधानी का यह अन्तिम परित्याग था।

हुसैनकुलीख़ां ने राव जयमलजी से मेड़ते का राज्य हस्तगत करके बादशाह की आज्ञानुसार वहां का अधिकार जगमालजी के सुपुर्द कर दिया।

राव जयमलजी से मेड़ते का छूटना और उनका महाराणा के पास चित्तोड़ जाना

इधर राव जयमलजी ने मेड़ते का परित्याग कर पुष्कर क्षेत्र में पदार्पण किया। यहां से इनका विचार अपने पैतृक राज्य की पुनः प्राप्ति के निमित्त बादशाह के पास दिल्ली जाने का था, परन्तु इसी अवसर पर महाराणा उदयसिंहजी ने चित्तोड़ दुर्ग पर अकबर की चढ़ाई की बड़ी आशंका होने से बड़े आग्रह के साथ चित्तोड़ आने का निमंत्रण उनके पास भेजा। इसपर चित्तोड़ राज्य के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के विचार से राव जयमलजी ने बादशाह के पास जाने के इरादे को छोड़कर तत्काल चित्तोड़ के लिए प्रस्थान कर दिया[1]। महाराणा उदयसिंहजी ने इनके साथ बड़े ही आदर का व्यवहार किया और पुनः १००० ग्रामों के साथ इनको बदनोर का प्रान्त प्रदान किया। महाराणा उदयसिंहजी ने अपने नाम से वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५६) में उदयपुर नगर बसाया और इसी वर्ष उक्त नगर से २ कोस पूर्व की तरफ़ उदयसागर तालाब की पाल का बनवाना शुरू किया, जो तीन वर्ष बाद वि० सं० १६१८ (ई० स० १५६२) में तैयार हुई। इस तालाब की प्रतिष्ठा वि० सं० १६२२ वैशाख शुक्ला ३ (ई० स० १५६५ ता० ३ अप्रैल)

---

(१) ऐसी भी जनश्रुति है कि जब इस अवसर पर राव जयमलजी चित्तोड़ पधार रहे थे तब मार्ग में गंगरार के निकटवर्ती जंगल में सैंकड़ों भीलों ने इनको प्रतिपक्षी समझकर आगे बढ़ने से रोका। राव जयमलजी के बहनोई वीरवर रावत पत्ताजी भी उस समय राव जयमलजी के साथ थे। भीलों की इस धृष्टता से उग्र स्वभाव रावत पत्ताजी को बड़ा क्रोध चढ़ आया और उन्होंने वहीं मरना मारना ठानकर भीलों के विरुद्ध युद्ध करने का विचार किया, परन्तु इस विषय में उन्होंने जब राव जयमलजी की सम्मति ग्रहण करने के लिए साङ्केतिक शब्दों में कहा कि 'अठै के उठै' अर्थात् यहीं काम आना या वहां चित्तोड़ दुर्ग पर चलकर। तब परम दूरदर्शी वीरशिरोमणि राव जयमलजी ने यही उत्तर दिया कि 'उठै' अर्थात् वहीं चित्तोड़ दुर्ग की रक्षार्थ विधर्मियों के विरुद्ध युद्ध करके ही काम आना श्रेष्ठ है। इन दोनों वीरों की इस बातचीत से भीलों को संदेह हुआ कि कहीं ये वीर चित्तोड़ के सहायक पक्ष के तो नहीं हैं। पूछने से सब हाल विदित हो जाने पर भीलों ने दोनों नरेशों से अपने अपराध की क्षमा चाही। भीलों का प्रधान नायक तो राव जयमलजी का इतना भक्त हो गया कि अंतिम समय तक इन्हीं की सेवा में रहा और चित्तोड़-संग्राम के अंतिम दिन वह भी राव जयमलजी के साथ मुसलमानों के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़कर काम आया। उसकी स्मृति में भी दुर्ग के समीप एक चबूतरा बना हुआ बतलाया जाता है।

को महाराणा उदयसिंहजी ने निज करकमलों से संपादित की। इस प्रकार नवीन राजधानी स्थिर हो जाने पर उपर्युक्त संवत् से महाराणा साहब अधिकतर वहीं विराजने लगे। इस कारण से महाराणा साहब ने राव जयमलजी को चित्तोड़ का दुर्गाध्यक्ष नियतकर दुर्ग के समस्त अधिकार उनको प्रदान कर दिये।

चित्तोड़ दुर्ग पर राव जयमलजी जिन भवनों में निवास करते थे वे अद्यावधि 'जयमल महल' के नाम से विख्यात हैं। चित्तोड़ दुर्ग पर एक तालाब भी 'जयमलजी का तालाब' नाम से प्रसिद्ध है, जिसके लिए भी संभावना है कि कदाचित् राव जयमलजी ने ही सैनिक आवश्यकताओं अथवा अन्य किसी कारण से निर्माण कराया हो। राव जयमलजी ने वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) के अनुमान पौष (दिसंबर) मास से चित्तोड़ में रहना प्रारम्भ किया और वि० सं० १६२२ (ई० स० १५६५) में वे चित्तोड़ के दुर्गाध्यक्ष नियत कर दिये गये। इसके दो वर्ष पीछे ही चित्तोड़ दुर्ग पर बादशाह अकबर का आक्रमण हुआ। इस अवसर पर महाराणा साहब ने राव जयमलजी को प्रधान सेनाध्यक्ष का भी पद प्रदान कर दिया था। इस सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर प्रकांड वीर राव जयमलजी ने जो प्रबन्धशक्ति, दूरदर्शिता, वीरता और स्वामिभक्ति प्रदर्शित की उसकी प्रायः सब ही इतिहासकारों ने मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा की है। जीवन के अन्तिम क्षण तक चित्तोड़ दुर्ग के गौरव और स्वतन्त्रता की रक्षार्थ अलौकिक वीरता से युद्ध करते हुए और चित्तोड़ के विपक्षियों का घमसान संहार करते हुए वीरशिरोमणि राव जयमलजी ने संसार में अमरकीर्ति छोड़कर अमरलोक को प्रयाण किया, जिसका सविस्तर वर्णन आगे किया जाता है।

बादशाह अकबर को अच्छी तरह ज्ञात हो गया था कि राजपूत नरेशों को अपना सहायक बनाना मुग़ल साम्राज्य को भारत में सुदृढ़ करने के लिए नितान्त आवश्यक है। यह भी बादशाह जानता था कि राजपूत नरेशों में सब से अधिक शक्तिसंपन्न और प्रभावशाली चित्तोड़ के महाराणा हैं, जिनके अधीन हो जाने पर अन्य सभी हिन्दू राजा

बादशाह अकबर की चित्तोड़ पर चढ़ाई

साम्राज्य के प्रभुत्व को स्वीकार कर लेंगे। उन्हीं दिनों महाराणा पर चढ़ाई कराने का कारण भी उपलब्ध हो गया। मालवे का सुलतान बाज़बहादुर अकबर के भय से भागकर महाराणा साहब की शरण में चला गया इसी कारण चित्तोड़ पर चढ़ाई करने का अकबर ने विचार किया। वि० सं० १६२४ आश्विन कृष्णा १२ (ई० स० १५६७ ता० ३१ अगस्त) को आगरे से मालवे की तरफ़ जाते हुए बादशाह अकबर ने बाड़ी नाम के स्थान पर डेरा डाला और वहां से रवाना होकर धौलपुर में मुक़ाम किया। इस स्थान पर महाराणा उदयसिंहजी के कनिष्ठ राजकुमार शक्तिसिंहजी, जिन्होंने अपने पिता से अप्रसन्न हो जाने से चित्तोड़ का परित्याग कर दिया था, बादशाह के पास उपस्थित हुए। एक दिन बादशाह ने हँसी में उनसे कहा कि हिन्दुस्तान के प्राय: सभी बड़े बड़े ज़मींदार मेरे मातहत हो चुके हैं, केवल एक राणा ही बाक़ी है, राणा पर मैं चढ़ाई करूं तो तुम मेरी क्या सहायता करोगे। राजकुमार शक्तिसिंहजी ने यह सुनकर अपने दिल में विचार किया कि यदि इस अवसर पर मैं बादशाह की सेवा में रहूंगा तो सब लोग यही समझेंगे कि मैं ही बादशाह को चित्तोड़ पर चढ़ाकर लाया, जिससे मेरी सर्वत्र बहुत बदनामी होगी। इस कारण उसी रात बादशाह को सूचना दिये बिना ही वे चित्तोड़ के लिए रवाना हो गये[1]। बादशाह को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उसे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और चित्तोड़ पर तुरन्त चढ़ाई करने का बादशाह ने पक्का विचार कर लिया। बादशाह ने चित्तोड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी और शिवपुर तथा कोटे के क़िलों पर अधिकार करता हुआ गागरौन पहुंचा। गागरौन पहुंचकर बादशाह ने आसफ़ख़ां और वज़ीरख़ां को मांडलगढ़ के दुर्ग पर, जो महाराणा के सुदृढ़ दुर्गों में से एक था, आक्रमण करने के लिए भेजा। इस दुर्ग की रक्षार्थ महाराणा की तरफ़ से राव बल्लूजी सोलंकी नियत थे, परन्तु इस मौक़े पर वे वहां न होकर चित्तोड़ में उपस्थित थे अत: सहज ही में मांडलगढ़ पर शाही अधिकार हो गया। बादशाह अकबर स्वयं मालवे की चढ़ाई की व्यवस्था कर गागरौन से चित्तोड़ की तरफ़ रवाना हुआ।

---

(१) अकबर नामे का बेवरिजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद, जिल्द २, पृ० ४४२-४३।

इधर राजकुमार शक्तिसिंहजी ने चित्तोड़ पहुंचकर बादशाह अकबर के चित्तोड़ पर चढ़ाई करने के पक्के इरादे और बड़ी भारी तैयारियों की सूचना महाराणा साहब को दी। इस वृत्तान्त को सुनकर महाराणा उदयसिंहजी ने अपने प्रधान सामन्त मेड़तिया कुलरत्न राव जयमलजी, सलूंबर रावत सांईदासजी, रावत साहिबखांजी चौहान, राव जयमलजी के छोटे भाई राठोड़ ईसरदासजी, राव बल्लूजी सोलंकी, राव संग्रामसिंहजी चौहान, डोडिया राव सांड़ाजी, आमेट के रावत पत्ताजी, रावत नेतसीजी आदि एवं महाराजकुमार प्रतापसिंहजी और शक्तिसिंहजी को परामर्श के लिए एकत्र किया। सब ने महाराणा साहब को यह सलाह दी कि गुजरात के सुलतान से लड़ते लड़ते मेवाड़ कमज़ोर हो गया है और अकबर भी अत्यन्त विशाल सेना लेकर चढ़ाई करने आ रहा है। अतः इस अवसर पर आपका यहां दुर्ग में विराजना उचित नहीं है, आपको रणवास और महाराजकुमारों को लेकर समस्त राजपरिवार के सहित दुर्गम पर्वतों के मध्य में किसी सुरक्षित स्थान में पधार जाना चाहिये। महाराणा साहब पहले तो इसपर सम्मत न हुए, परन्तु सरदारों के बारंबार अत्यन्त आग्रह पूर्वक निवेदन करने पर अन्त में उन्हें स्वीकार करना ही पड़ा। उन्होंने राठोड़ वीर राव जयमलजी को दुर्गाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष[1] नियत कर दुर्ग की रक्षा का और युद्ध का संपूर्ण भार इन्हीं को सौंप दिया तथा इनके पास ८००० वीर राजपूत सैनिक युद्धार्थ नियत कर दिये। महाराणा साहिब राजपरिवार सहित मेवाड़ के दक्षिणी पहाड़ों में चले गये। रावत नेतसी[2] आदि कतिपय सरदार सेवार्थ महाराणा साहिब के साथ गये शेष राज्य के सभी सामन्त प्यारी मातृभूमि चित्तोड़ दुर्ग की रक्षार्थ अपना तन मन न्योछावर करने के लिए अपनी अपनी सेना सहित वहीं दुर्ग में उपस्थित रहे।

अकबर ने भी मांडलगढ़ से कूचकर वि० सं० १६२४ मार्गशीर्ष कृष्णा ६

(१) अकबर नामा; अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० ४७२। तुज़ुक जहांगीरी; रॉजर्स एण्ड बेवरिज कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ४५। तबकाते अकबरी; इलियट् एण्ड डॉसन्, जि० ५, पृ० ३२७।

(२) ये कानोड़वालों के पूर्वज थे।

(ई० स० १५६७ ता० २३ अक्टूबर) बृहस्पतिवार को चित्तोड़ से तीन कोस उत्तर नगरी गांव में डेरा किया। उस समय आकाश मेघाच्छन्न हो रहा था, बादलों की भीषण गर्जना से पृथ्वी कम्पायमान हो रही थी, बिजलियां झकाझक चमक रही थीं और बड़ी तेज़ हवा चल रही थी। इसी कारण जब बादशाह ने क़िले की तरफ़ निगाह डाली तब उसको कुछ दिखाई न दिया, परन्तु आध घंटे बाद आकाश के मेघ रहित हो जाने पर बादशाह को चित्तोड़ का गगनभेदी सुदृढ़ दुर्ग नज़र आया। बादशाह ने क़िले पर घेरा डालने का इरादा कर वहां से कूच किया और जिस पर्वत पर चित्तोड़ का दुर्ग बना हुआ है उसके नीचे ही पहुंचकर डेरा कर दिया। क़िले पर घेरा डालने का काम बख़्शियों को सौंपा गया जो एक महीने में समाप्त हुआ। इसी अंतर में बादशाह ने आसफ़खां को रामपुरा के दुर्ग पर भेजा, जिसको उसने विजय कर लिया। महाराणा के उदयपुर और कुंभलमेर की तरफ़ चले जाने की खबर पाकर अकबर ने हुसैन-कुलीख़ां को बड़ी सेना देकर उधर भेजा। हुसैनकुलीख़ां ने उदयपुर पहुंचकर बहुत लूट मार की। उसने आसपास के प्रदेश में सब जगह महाराणा का पता लगाने की बहुत कोशिश की, परन्तु कहीं भी पता न लगने से अंत में उसको निराश होकर ही लौटना पड़ा।

इधर बादशाह ने चित्तोड़ पर अपना आक्रमण सफल होता न देखकर साबात[1] और सुरंगें बनाने का हुक्म दिया और जगह जगह मोर्चे क़ायम कराके तोपख़ाने से उनकी रक्षा की गई। साबात और सुरंगें बनाने के काम में शाही सैनिक बड़ी मुस्तैदी के साथ कटिबद्ध होकर लग गये। अनेक स्थानों पर

---

(१) फ़ारसी तवारीख़ों में साबात का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

हिन्दुस्तानी क़िलों में तोपें बन्दूकें आदि युद्ध सामग्री बहुत होने से उनको जीतने के लिए साबात बनाने का तरीक़ा निकाला गया था। साबात ऊपर से ढका हुआ एक चौड़ा रास्ता होता है, जिसके द्वारा क़िलेवालों की मार से सुरक्षित होकर हमला करनेवाले क़िले के पास तक पहुंच जावें। साबात को ढकने के वास्ते गाय, भैंस का मोटा चमड़ा काम में लाया जाता था। साबात की छत पर मोरचा क़ायम होता था जहां बंदूकची बैठकर क़िले-वालों पर मार करते थे। टेकरी के सदृश ऊंचे स्थान को भी साबात कहते हैं, जहां से क़िले-वालों पर मार की जा सके।

मोर्चाबन्दी की गई, परन्तु खास मोर्चे इनमें तीन थे। एक तो स्वयं बादशाह का मोर्चा, जो लाखोटा दरवाज़े (बारी) के सामने था। यहां पर खुद बादशाह, हसनखां चगताई, राव पतरदास, क़ाज़ी अलीबग़दादी, इख्तियारखां फ़ौजदार और कबीरखां आदि अफ़सरों के साथ बैठा करता था। इस मोर्चे के मुक़ाबले में क़िले के भीतर सेनाध्यक्ष राव जयमलजी ने अपना मोर्चा नियत किया। दूसरा मोर्चा क़िले से पूर्व की तरफ़ सूरजपोल दरवाज़े के सामने शुजातखां, राजा टोडरमल और कासिमखां, मीर बर्हबहर की अध्यक्षता में क़ायम किया गया। इसके मुक़ाबले पर क़िले में रावत साईंदासजी का मोर्चा था। शाही मोर्चे से क़िले तक एक सुरंग खोदी गई और दूसरे मोर्चे से क़िले तक एक साबात बनाई गई अर्थात् ऊपर से ढका हुआ एक चौड़ा रास्ता तैयार किया गया। तीसरा मोर्चा क़िले के दक्षिण की तरफ़ चित्तोड़ी बुर्ज के सामने था, जिसकी निगरानी पर ख्वाजा अब्दुलमजीद, आसफ़खां, वजीरखां आदि कई बड़े बड़े प्रसिद्ध अफ़सर नियत थे। क़िले के अन्दर इस मोर्चे के मुक़ाबले में बल्लूजी सोलंकी आदि बड़े बड़े वीर युद्धविशारद सरदार नियत थे। बादशाही सेना के अफ़सर आलमख़ां और आदिलखां वग़ैरह क़िले के चारों तरफ़ पहाड़ के नीचे बहुत दौड़ादौड़ करते थे, परन्तु उनके परिश्रम का कोई फल नहीं निकलता था। दुर्गस्थ सैनिक अपने अनुभवी सेनाध्यक्ष वीर-पुंगव राव जयमलजी की अध्यक्षता में अदम्य उत्साह से युद्ध करके शाही लश्कर को हतोत्साह कर रहे थे। प्रतिदिन शाही फ़ौज के बहुतसे वीर मारे जाते और अनेक ज़ख़्मी होते। साबात और सुरंग तैयार करने का काम बड़ी शीघ्रता से किया जा रहा था। हज़ारों मज़दूर मिट्टी डालने के काम पर ही लगे हुए थे। प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य क़िलेवालों के तीरों और गोलियों का निशाना बनकर यमद्वार को पहुंचते थे। इस कठिनता को देखकर बादशाह ने मज़दूरों को दिल खोलकर रुपया देना शुरू कर दिया।

एक दिन क़िले के सरदारों ने मिलकर सलाह की कि बादशाह के पास सेना और द्रव्य की कोई कमी नहीं है अतः यदि ऐसे प्रबल शत्रु से किसी प्रकार संधि हो जावे तो राज्य की रक्षा हो सके और शक्ति का भी ह्रास न हो।

यह विचारकर उन्होंने रावत साहिबखांजी चौहान और डोडिया ठाकुर सांडाजी को अकबर के पास संधि का प्रस्ताव उपस्थित करने को भेजा। बादशाह ने महाराणा की उपस्थिति के बिना संधि करना स्वीकार न किया। इसपर डोडिया सांडाजी ने कहा कि हमारे महाराणा पहाड़ी प्रदेश के राजा हैं इसलिए उनके उद्धत प्रकृति होने से हम इसकी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। इसपर आंबेर के राजा भगवानदासजी ने चुपके से बादशाह के कान में कहा कि यह सरदार जहांपनाह के हुजूर में बड़ी गुस्ताख़ी से पेश आता है। तब अकबर ने कहा कि यह तो अपने स्वामी का सच्चा शुभचिन्तक है, ऐसे नमकहलाल और वफ़ादार सेवक तो उल्टे इनाम के क़ाबिल हैं। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि डोडिया सांडाजी की बातों से प्रसन्न होकर उनसे कुछ मांगने को कहा। बादशाह के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने यही कहा कि मेरी केवल यही इच्छा है कि इस युद्ध में मारा जाऊं तो हिन्दू शास्त्र के अनुसार मेरी लाश जलवा दी जावे। कहते हैं कि अपना वचन पूरा करने के लिए युद्ध में मरे हुए सब राजपूतों को अकबर ने जलवा दिया था। यद्यपि मुसलमान अफ़सरों ने संधि करके चित्तोड़-विजय जैसे दुस्तर कार्य से हट जाने के लिए बादशाह से बहुत कुछ कहा था, परन्तु अपने शाही रोब और शान को बढ़ाने के लिए बादशाह ने ही स्वयं महाराणा के उपस्थित हुए बिना संधि की बातचीत करना मंजूर नहीं किया। संधि के प्रस्ताव के इस प्रकार स्वीकृत न होने पर दुर्गस्थ राजपूत निराश न हुए प्रत्युत उन्होंने पहले से भी दुगुने उत्साह से युद्ध करना प्रारम्भ किया। क़िले में कितने ही ऐसे तोपची थे, जो सुरंग खोदनेवालों और साबात बनानेवालों को गोलियां चला चलाकर मार डालते थे। अबुलफ़ज़ल लिखता है-"साबात बनानेवालों में से प्रतिदिन २०० आदमी मारे जाते थे। साबातें दिन दिन आगे बढ़ती थीं और सुरंगों के खोदने का काम भी बड़ी तेज़ी से जारी था"। तारीख़े अलफ़ी में लिखा है-"जब साबातें तैयार की जा रही थीं तब महाराणा के सैनिकों ने हमला करके इतने मुसलमानों को मारा कि ईंट पत्थर की तरह उनकी लाशों का ढेर लग गया"। प्राणों के भय से इस काम को करने के लिए बड़ी कठिनता से मज़दूर मिलते थे। बादशाह ने ख़र्चे की कुछ परवाह न की। मिट्टी डालने की मज़दूरी

यहां तक बढ़ी कि एक टोकरी मिट्टी के लिए सुवर्ण मोहर तक दी जाने लगी। अबुलफज़ल ने लिखा है-"मिट्टी का मूल्य सोने और चांदी के तुल्य हो गया था"।

इस अन्तर में दो सुरंगें क़िले के नीचे तक पहुंच गईं। एक में १२० मन और दूसरी में ८० मन बारूद भर दी गई। सैनिकों को हुक्म दिया गया कि वे हथियार बांधकर बिल्कुल तैयार खड़े रहें। जैसे ही सुरंगों के उड़ने से क़िले की दीवार टूटे वैसे ही फ़ौरन क़िले के अन्दर वे चले जावें और अधिकार कर लें। वि० सं० १६२४ माघ कृष्णा १ (ई० स० १५६७ ता० १७ दिसम्बर) को एक सुरंग में आग डाली गई, जिससे ४० राजपूतों सहित क़िले की एक बुर्ज उड़ गई। शाही सेना तत्काल क़िले में प्रवेश करने लगी कि इतने में अचानक दूसरी सुरंग भी उड़ गई। इससे शाही फ़ौज के ५०० सैनिक, जो दुर्ग में प्रवेश कर रहे थे, और कुछ दुर्गस्थ राजपूत तत्काल मारे गये[1]। सुरंग के इस विस्फोट का भयंकर धड़ाका ५० कोस तक सुनाई दिया। इन ५०० सैनिकों में, जो सुरंग के उड़ जाने से मारे गये, लगभग १०० प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित सैनिक थे, जिनमें से २० तो ऐसे विख्यात और उच्च सैनिक कर्मचारियों में से थे कि स्वयं बादशाह उनको भले प्रकार जानता था। राव जयमलजी ने दुर्ग का प्रबन्ध ऐसी उत्तमता से कर रक्खा था कि क़िले की जो दीवार विपक्षियों द्वारा उड़ा दी गई थी उसके स्थान में पहले जैसी नई दीवार तुरन्त बनाली गई। उसी दिन बीकाखोह और मोरमगरी की तरफ़ आसफ़ख़ां के मोर्चे से जो एक तीसरी सुरंग खोदी गई थी, वह भी उड़ाई गई, परन्तु उससे क़िले के केवल ३० आदमी ही मारे गये और कोई विशेष हानि दुर्ग को नहीं पहुंची। बादशाह को युद्ध में अब तक कोई विशेष सफलता नहीं हुई। वीर क्षत्रियों के जोश और हिम्मत को देखकर बादशाह भयभीत हो गया। अकबर को निश्चय हो गया कि राव जयमलजी जैसे युद्धविशारद परम अनुभवी सेनापति की उपस्थिति में दुर्ग विजय करना असंभव है, अतः लड़ाई के साथ साथ उसने कूटनीति का भी प्रयोग करना प्रारम्भ किया। राजा टोडरमल के द्वारा बादशाह ने राव

(१) ब्रिग्ज़कृत फ़िरिश्ते की तवारीख़ का अंग्रेज़ी अनुवाद।

यह विचारकर उन्होंने रावत साहिबख़ांजी चौहान और डोडिया ठाकुर सांडाजी को अकबर के पास संधि का प्रस्ताव उपस्थित करने को भेजा। बादशाह ने महाराणा की उपस्थिति के बिना संधि करना स्वीकार न किया। इसपर डोडिया सांडाजी ने कहा कि हमारे महाराणा पहाड़ी प्रदेश के राजा हैं इसलिए उनके उद्धत प्रकृति होने से हम इसकी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। इसपर आंबेर के राजा भगवानदासजी ने चुपके से बादशाह के कान में कहा कि यह सरदार जहांपनाह के हुज़ूर में बड़ी गुस्ताख़ी से पेश आता है। तब अकबर ने कहा कि यह तो अपने स्वामी का सच्चा शुभचिन्तक है, ऐसे नमकहलाल और वफ़ादार सेवक तो उल्टे इनाम के क़ाबिल हैं। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि डोडिया सांडाजी की बातों से प्रसन्न होकर उनसे कुछ मांगने को कहा। बादशाह के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने यही कहा कि मेरी केवल यही इच्छा है कि इस युद्ध में मारा जाऊं तो हिन्दू-शास्त्र के अनुसार मेरी लाश जलवा दी जावे। कहते हैं कि अपना वचन पूरा करने के लिए युद्ध में मरे हुए सब राजपूतों को अकबर ने जलवा दिया था। यद्यपि मुसलमान अफ़सरों ने संधि करके चित्तोड़-विजय जैसे दुस्तर कार्य से हट जाने के लिए बादशाह से बहुत कुछ कहा था, परन्तु अपने शाही रोब और शान को बढ़ाने के लिए बादशाह ने ही स्वयं महाराणा के उपस्थित हुए बिना संधि की बातचीत करना मंजूर नहीं किया। संधि के प्रस्ताव के इस प्रकार स्वीकृत न होने पर दुर्गस्थ राजपूत निराश न हुए प्रत्युत उन्होंने पहले से भी दुगुने उत्साह से युद्ध करना प्रारम्भ किया। क़िले में कितने ही ऐसे तोपची थे, जो सुरंग खोदनेवालों और साबात बनानेवालों को गोलियां चला चलाकर मार डालते थे। अबुलफ़ज़ल लिखता है-"साबात बनानेवालों में से प्रतिदिन २०० आदमी मारे जाते थे। साबातें दिन दिन आगे बढ़ती थीं और सुरंगों के खोदने का काम भी बड़ी तेज़ी से जारी था"। तारीख़े अलफ़ी में लिखा है-"जब साबातें तैयार की जा रही थीं तब महाराणा के सैनिकों ने हमला करके इतने मुसलमानों को मारा कि ईंट पत्थर की तरह उनकी लाशों का ढेर लग गया"। प्राणों के भय से इस काम को करने के लिए बड़ी कठिनता से मज़दूर मिलते थे। बादशाह ने ख़र्च की कुछ परवाह न की। मिट्टी डालने की मज़दूरी

क़िलेवाले भी बड़े उत्साह से युद्ध कर रहे थे और शतशः शाही सैनिकों का प्रतिदिन संहार कर डालते थे। कई बार तो स्वयं अकबर ही मरते मरते बचा। एक गोली बादशाह के पास तक पहुंच गई, परन्तु उससे पास में खड़ा हुआ आदमी ही मरा। क़िले में एक हज़ार बकसरिया पठान थे,जो गोली चलाने में बड़े निपुण थे। उनका निशाना कदाचित् ही खाली जाता था। पठानों का सरदार इस्माइल तो इस विद्या में बहुत ही प्रवीण था। जिस किसी को वह अपना लक्ष्य बनाता उसको अवश्य यमपुर पहुंचा देता था। एक बार स्वयं बादशाह अकबर को उसने अपना लक्ष्य बनाया, परन्तु संयोगवश गोली बादशाह के न लगकर उसके पास खड़े हुए एक सेनाध्यक्ष के लगी। इसपर बादशाह ने भी इस्माइल पर तुरन्त गोली चलाई। गोली इस्माइल के मस्तक में लगी, जिससे वह तत्काल काम आ गया। इस्माइल के मारे जाने से पठान सैनिक बहुत व्याकुल हो गये, परन्तु राव जयमलजी के आश्वासन से उनका उत्साह पूर्ववत् बढ़ गया और पुनः बादशाही सेना के संहार करने में वे दत्तचित्त हो गये[1]। अंत में राजा टोडरमल और क़ासिमखां की निगरानी में साबात बनकर तैयार हो गई। लगातार दो रात और एक दिन ऐसा घमसान युद्ध हुआ कि दोनों पक्ष की सेनाएं खाना पीना और सोना तक भूल गईं। शाही सैनिकों ने कितनी ही जगह क़िले की दीवारें तोड़ डालीं, परन्तु इसपर भी क़िलेवालों ने साहस न छोड़ा। बड़े उत्साह से वे मुक़ाबला करते रहे। मध्यरात्रि के समय शाही सैनिक गिरी हुई दीवारों की तरफ़ से क़िले में घुसना चाहते थे, परन्तु राजपूतों ने ऐसी बहादुरी से मुग़ल सेना का मुक़ाबला किया कि उसको पीछे ही हटना पड़ा। इसके पश्चात् राजपूतों ने कपड़ा, रुई, तेल और लकड़ियें लाकर जहां जहां क़िले की दीवार टूटी थी वहां इस अभिप्राय से इकट्ठी करलीं कि यदि शत्रु उस तरफ़ से क़िले में प्रवेश करने के लिए हमला करें तो फ़ौरन वहां आग लगाकर विपक्षियों को पीछे हटा दें। इस प्रकार आधी रात के घोर अंधकार में दोनों पक्षों की सेनाओं का भयंकर संग्राम हो रहा था।

हाथ की गोली से राव जयमलजी के एक भतीजे का भी काम आना लिखा है, पृ० ३११।

(१) मुंशी देवीप्रसादजी लिखित महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र, पृष्ठ १११।

सेनाध्यक्ष राव जयमलजी तन मन की सुधि भूलकर युद्ध-व्यवस्था में संलग्न थे। प्रतिक्षण राजपूतों के पूर्वजों का स्मरण दिलाकर वे उन वीरों का उत्साह बढ़ा रहे थे। बादशाह के पास विशाल सेना तथा अपरिमित युद्ध साधनों को देखकर राव जयमलजी को दुर्ग की रक्षा के निमित्त बड़ी चिन्ता हो रही थी, परन्तु इस कर्मवीर योद्धा ने कभी साहस का परित्याग नहीं किया। जैसे जैसे अधिक विपत्तियों का उनको सामना करना पड़ता था वैसे वैसे उनके हृदय में अलौकिक दिव्य शक्ति का नूतन संचार होता जाता था। स्वाधीनता के प्रकाश से उनका मुख मंडल देदीप्यमान हो रहा था। स्वतन्त्रता के अनन्य उपासक वीरशिरोमणि चित्रकूट-सेना-नायक ने सर्वस्व स्वतन्त्रता की वेदी पर बलिदान करना निश्चय कर लिया और यही सर्वस्व त्याग का पाठ अपने वीर भ्राताओं को भी पढ़ा दिया। चित्तोड़ के वीरों ने निश्चय कर लिया कि जबतक हममें से एक भी अवशिष्ट रहेगा, चित्तोड़ की स्वाधीनता का अपहरण न हो सकेगा। वीरकेसरी राव जयमलजी दुर्ग की रक्षा के निमित्त इस समय कैसे व्यग्र हो रहे थे और कैसे कैसे अपूर्व वीरता तथा साहस के भाव उनके चित्त में उदय हो रहे थे, निम्नलिखित प्राचीन पद्यों से पाठकों को इसका कुछ आभास होगा—

चवे एम जेमल चीतोड़ मत चलचले,
हेड हूँ अरिदल न दूँ हाथे ॥
ताहरे कमल पग चढ़े नह ताहरयां,
माहरे कमळ जे खवा माथे ॥ १ ॥
धड़क मत चत्रगढ जोधहर धीर पे,
गूढ गोरा दलां करूं गजशाह ॥
भुजा सूं मूझ जुध कमळ कमळां भिडे,
पछे तो कमळ पग देहि पतशाह ॥ २ ॥
दूद कुल आभरण धूहड़ हर दाखवे,
धीर मंड डरे मत करे धोखो ॥
पचासर माहरो शीश पड़ियां पछे,

जाएजे ताहरे शीश जोखो ॥ ३ ॥
साथ श्रायो कियो वीर रे सिंघळी,
हाम चित पूरवे काम हतवाह ॥
पुर अमर कबंध्र जैमल पाधारियो,
पछे पाधारियो कोट पतशाह ॥ ४ ॥

ऐसे भयानक समय में भी बादशाह अकबर स्वयं अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए मोर्चे पर क़िले की तरफ़ बन्दूक ताक कर बैठा था कि मशाल की रोशनी में दीवार के तीरकशों में से हज़ार मेखी जिरह बख्तर (एक प्रकार का जिरह बख्तर जो सरदारी का चिह्न समझा जाता था) पहने एक सरदार पर नज़र पड़ी, जो भग्नांश के समीप आकर दीवारों की मरम्मत तथा अन्य सैनिक कार्यों की निगरानी कर रहा था[1]। ये सरदार स्वयं राव जयमलजी ही थे, जो उस समय दीवार की मरम्मत की देखभाल कर रहे थे। बादशाह उस समय इनको पहचान न सका, परन्तु इनको हज़ार मेखी जिरह बख्तर पहने हुए देखकर केवल इतना ही अनुमान किया कि यह कोई क़िलेवालों का प्रतिष्ठित सरदार है। बादशाह अकबर ने तुरन्त निशाना लगाकर राव जयमलजी पर अपनी संग्राम नामक बन्दूक चला दी । बन्दूक छोड़ने के बाद शुजाअतख़ाँ और राजा भगवानदासजी से बादशाह ने कहा कि मेरा ख़याल है कि गोली निशाने पर लग गई। ख़ांजहां ने बादशाह से अर्ज़ की कि मैंने इस सरदार को आज सारी रात क़िले के प्रबन्ध की निगरानी करते हुए देखा है। अगर वापस नहीं आवे तो निश्चय जानिये कि गोली लग गई। एक घंटा भी नहीं गुज़रा था कि जब्बारकुली दीवाना ने ख़बर दी कि क़िले की दीवार के सुराखों में से कोई भी आदमी दिखाई नहीं देता। इधर बादशाह की बंदूक से निकली हुई गोली क़िले के भग्नांश के पुनः निर्माण का निरीक्षण करते हुए वीरपुंगव राव जयमलजी की जांघ में जाकर लगी, जिससे घायल होकर वे चलने में असमर्थ हो गये[2] ।

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामे का बेवरिजकृत अंग्रेज़ी अनुवाद ।

(२) अबुलफ़ज़ल ने राव जयमलजी का बादशाह की गोली के आघात से काम आना लिखा है, परन्तु यह सर्वथा असत्य है जैसा कि आगे के वृत्तान्त को पढ़कर पाठक स्वयं जान सकेंगे।

सेनापति राव जयमलजी के इस प्रकार घायल हो जाने से चित्तौड़ दुर्ग पर शोक के बादल छा गये। इस आकस्मिक दुर्घटना के वज्राघात से क़िले के सभी सरदार व्याकुल हो गये। चित्तौड़ दुर्ग की भावी दशा का चित्र उनके नेत्रों के सामने खिंच गया। किले में भोजन-सामग्री प्रायः समाप्त हुई देखकर और स्वयं गोली लगने के कारण ज़ख्मी हो जाने से विवेकशील महायोद्धा राव जयमलजी ने अब दुर्ग के कपाट खोलकर अन्तिम युद्ध करके ही राजपूत जाति के गौरव की रक्षा करना श्रेष्ठ समझा। इसी विचार से उन्होंने क़िले के सब सरदारों को अपने पास एकत्र किया और उनसे कहा कि दुर्ग में जो खाने पीने का सामान इकट्ठा किया गया था वह इतने दीर्घ काल के युद्ध में सब समाप्त हो गया है। इसलिए अब यही उचित प्रतीत होता है कि जौहर कर क़िले के दरवाज़े खोल दिये जावें और सब राजपूत केसरिया वस्त्र पहिनकर जीवन के अन्तिम क्षण तक बड़ी बहादुरी से लड़ते लड़ते ही वीरगति को प्राप्त करें। सेनाध्यक्ष की ज़ख्मी हालत और भोजन-सामग्री की बिल्कुल कमी देखकर सब सरदारों ने एक मत से राव जयमलजी की सलाह को स्वीकार किया और उसके अनुसार दूसरे ही दिन अन्तिम युद्ध करने का निश्चयकर अपनी अपनी स्त्रियों और बालबच्चों को जौहर करने की आज्ञा दे दी[1]। क़िले में रावत पत्ताजी सीसोदिया, रावत साहिबख़ांजी चौहान[2] और राठोड़ ईसरदासजी[3] इन तीनों

(१) महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशङ्करजी ओझा; राजपूताने का इतिहास जिल्द २, पृ० ७२७।

(२) ये कोठारियावालों के पूर्वज थे।

(३) ये राव जयमलजी के सहोदर कनिष्ठ भाई थे। अबुलफ़ज़ल ने अकबरनामे में साहिबख़ांजी को राठोड़ और ईसरदासजी को चौहान लिखा है, परन्तु यह सर्वथा भ्रममूलक और अशुद्ध है, क्योंकि राठोड़ों में साहिबख़ां नाम के कोई सरदार हुए ही नहीं। इस नाम के केवल चौहानवंशी कोठारिया रावतजी ही युद्ध में सम्मिलित थे। यदि साहिबख़ांजी और ईसरदासजी दोनों को चौहान मान लिया जाय तो भी असंगत होता है, क्योंकि इससे चौहानों की हवेलियों में दो स्थानों पर तथा राठोड़ों की हवेलियों में कहीं भी जौहर न होना प्रकट होता है, जो सर्वथा असंभव तथा ऐतिहासिक प्रमाणों के विरुद्ध है। सभी इतिहासकार क़िले में सीसोदिया, राठोड़ और चौहानों की हवेलियों (इन तीन स्थानों) में ही जौहर होना वर्णन करते हैं। पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने बनाये हुए राजपूताने के इतिहास की जिल्द २; पृ० ७२६

की हवेलियों में जौहर हुआ। शतशः राजपूत रमणियों और कुमारियों ने प्रज्वलित अग्नि में अपने वंश और धर्म के गौरव की रक्षार्थ अपने जीवन का बलिदान कर दिया। किले में अचानक धधकती हुई जौहर की अग्नि को देखकर बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ और शाही कर्मचारी तरह तरह के विचार प्रकट करने लगे। आंबेर के राजा भगवानदासजी ने कहा कि यह जौहर की अग्नि है, राजपूत जब मरने का निश्चय कर लेते हैं तब अपनी स्त्रियों और बच्चों को जौहर की अग्नि में जलाकर शत्रुओं पर टूट पड़ते हैं। इसलिए अब सावधान रहना चाहिये, कल क़िले के दरवाज़े खुलेंगे।

इधर किले में अपनी प्राण-प्रिय स्त्रियों तथा बाल-बच्चों को जौहर की अग्नि में भस्मसात् करने के उपरान्त राजपूत वीर निश्चिन्त होकर अन्तिम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। बड़े हर्ष और उमंग के साथ चित्तोड़ के साहसी योद्धाओं ने केसरिया वस्त्र पहिनकर अमल-पान किया। दुर्गाध्यक्ष राव जयमलजी ने भी केसरिया पोशाक धारणकर विपत्तियों के सम्मुख पूर्ण रीति से आर्य जाति के महत्व तथा स्वाधीनता के प्रेम को प्रमाणित करने का संकल्प कर लिया। अपने हाथ से राव जयमलजी ने सरदारों को अमल-पान कराया[1]।

में साहिबख़ांजी को चौहान लिखा है, परन्तु इसके अगले ही पृष्ठ पर क़िले में जौहर के स्थानों का वर्णन करते हुए उन्होंने भी भ्रम से अबुलफ़ज़ल के अनुसार साहिबख़ांजी को राठोड़ और ईसरदासजी को चौहान लिख दिया, परन्तु कर्नल टॉड साहब अबुलफ़ज़ल के लेख से भ्रान्त न हो सके। उन्होंने यथार्थ निर्णय करके ईसरदासजी को राठोड़ ही लिखा है (टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृष्ठ २६०)। हमारी ख्यातों में भी जिस प्रकार मुसलमानों की तवारीख़ों में लिखा है उसी प्रकार ईसरदासजी का हाथियों के दांत उखाड़ देना तथा कितने ही हाथियों को तलवार, जमधर आदि हथियारों से मार डालना, ऐसी अनेक कथाएं लिखी हुई हैं। कविराजा बांकीदासजी ने अपनी ख्याति और रामनारायण दूगड़ ने भी अपनी पुस्तक 'वीरभूमि चित्तोड़-गढ़' पृष्ठ ८६ में हाथियों के साथ युद्ध करने में ईसरदासजी की वीरता की प्रशंसा करते हुए उनको स्पष्टतया राठोड़ ही लिखा है। ईसरदासजी के हाथियों के साथ युद्ध करने के सम्बन्ध में बहुतसे प्राचीन पद्य भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें से एक नीचे उद्धृत किया जाता है—

बड़ढ ईसर पाड़िया बढंग तणे परिघांग। हाढ न आवै हाथियां कारीगरां रे काम॥

(१) कमध केसरिया पोसाक करि लिए अमल कर थाप।
करवे सगाह नेमस कहो, कहर बचन मुख काप॥

सेनाध्यक्ष की अन्तिम मनुहार को चित्तोड़ के महापराक्रमी योद्धाओं ने बड़े प्रेम और सत्कार से स्वीकार किया। अब राजपूतों के उत्साह की कोई सीमा न रही। बढ़ते हुए रणोन्माद के कारण वे युद्ध के लिए अधीर हो उठे और बड़ी उत्सुकता से दुर्ग के कपाट खोलने के लिए अरुणोदय की प्रतीक्षा करने लगे। पूर्व दिशा में लालिमा का अवलोकन करते ही राजपूतों ने क़िले के दरवाज़े खोल दिये। दरवाज़े खोल दिये जाने से रणोन्मत्त वीरों के हृदयों में ऐसा हर्ष और उत्साह उत्पन्न हुआ कि मानो साक्षात् स्वर्ग के द्वार खोल दिये गये हों। क्षत्रिय योद्धा तुरन्त मुसलमानों पर टूट पड़े। बादशाह की फ़ौज ने भी, जो पहले से तैयार खड़ी थी, राजपूतों का बड़ी बहादुरी से मुक़ाबला किया। दोनों सेनाओं में घमसान युद्ध होने लगा[1]। बादशाह की गोली लगने से ज़ख्मी हो जाने के कारण राव जयमलजी घोड़े पर चढ़ने में असमर्थ हो गये, परन्तु जीवन के अन्तिम क्षण तक विपत्तियों से युद्ध करने की प्रबल उत्कंठा वीर-केसरी के हृदय में विद्यमान थी। रणांगण में विधर्मियों का संहार करते हुए शत्रुओं के शस्त्राघात से ही मृत्यु लाभ करने की इनकी इच्छा थी। वीर राव जयमलजी के इस अतुल साहस को देखकर राठोड़ वीर कल्लाजी[2] ने इनको अपने कंधों

कर कर केसरियाह भर भर खोया भूपती।
सूका वन हरियाह यूं वांका भड़ ऊठिया ॥

(१) उदयागर रवि ऊगतां तोप वजी तरवार।
तोप न मावे रावतां भारतवालो भार ॥

(२) कल्लाजी रंढेला ग्राम के निवासी थे। ये छपन्या राठोड़ थे। रंढेला ग्राम जयसमुद्र से क़रीब दस मील और सलूंबर से छः मील के फ़ासले पर है। महाराणा की सेना में इनके प्रविष्ट होने के सम्बन्ध में ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि रंढेला ग्राम के समीपवर्ती टोकर ग्राम में जब महाराणा का पधारना हुआ तब किसी गृह-कलह के कारण रंढेला परित्याग कर कल्लाजी टोकर ग्राम में मेदपाटेश्वरों की सेवा में उपस्थित हुए। उस समय भीलों ने वहां बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। गीगला नामक गांव में छः सात भीलों को मारकर कल्लाजी ने सब विद्रोह शान्त कर दिया। इनकी वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने इनको प्रतिष्ठित सैनिक पद पर नियत कर दिया। कल्लाजी आजन्म अविवाहित ही रहे। चित्तोड़ के प्रसिद्ध संग्राम में इन्होंने जो लोमहर्षण एवं अद्भुत प्रकार की वीरता प्रकट की उसका सर्वत्र बड़ा प्रभाव पड़ा। कल्लाजी पर बड़ी श्रद्धा हो जाने से इनकी स्मृति में एक मन्दिर बनवाकर आस पास के लोग बड़ी भाव-भक्ति

पर बिठाकर कहा 'अब आप रणाकांक्षा को मन भरकर पूरी कर लीजिये'। निदान अपने राठोड़ भाई वीरवर कल्लाजी के स्कन्धारूढ़ होकर[1] अतुल

से इनकी मानता करने लगे। इस स्थान पर प्रतिवर्ष नवरात्रि में रविवार को बड़ा मेला भरता है। हज़ारों यात्री इकट्ठे होजाते हैं और पूर्ण भक्ति से अनेक वस्तुएं कल्लाजी के मन्दिर में चढ़ाते हैं। इनकी पूजन में विशेषतः केसर का उपयोग होता है। मेवाड़ राज्य तथा अनेक बड़े बड़े ठिकानों की तरफ़ से भी कल्लाजी के भेंट चढ़ाई जाती हैं। उनके मन्दिर का पुजारी उनके वंश का पाटवी ही होता है। रंडेला में पुजारियों का निवासस्थान कल्लाजी की पोल के नाम से प्रसिद्ध है।

(१) मेवाड़ की समस्त ख्यातों के आधार पर। डाक्टर स्ट्रेटन; चित्तोड़ एण्ड दी मेवाड़ फेमिली। रायबहादुर पण्डित गौरीशंकरजी ओझा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृष्ठ ७२८।

राव जयमलजी और कल्लाजी के इस युद्ध के सम्बन्ध में अनेक कवितायें उपलब्ध होती हैं, परन्तु स्थानाभाव से केवल एक ही दी जाती है; जो उदयपुर निवासी कविराव मोहनजी से प्राप्त हुई है—

तहां कलियांन पिठ्ठ चढ्यो जयमल्ल कढ्यो,
धाका डारि शाका करि धरनि धुजोई हैं।
मुण्ड उड़ि जान लागे रुण्ड हू नचान लागे,
खल बल खंडन खपान लागे सोई हैं॥
भीरु भजिजांन लागे वीरजे जुझांन लागे,
खग्गन बजांन लागे द्वेहू भुज दोई हैं।
एक अङ्ग च्यार पान देखिकें डरांन लागे,
धूज मुगलांन जांन च्यार भुज योई हैं॥ १॥
टोपनकों फोरि दीनें कवचन तोरि दीने,
हवद विथोरि दीनें धधकि धकायो हैं।
म्लेच्छनकों मारि दीनें हाथिन पछारि दीनें,
तुरंग उथारि दीनें फुल्लि बिफरायो हैं॥
गिरिन हलाय दीनें दिग्गज डुलाय दीनें,
अचला चलाय दिव्य पौरुष दिखायो हैं।
वीर जयमल्ल रन ठेलिकें दुरग काज,
ऐसो खग खेल खेल सुरग सिधायो हैं॥ २॥

दोहा

करत शीश जयमल्ल को, क्रोध हेरि कलियांण।
धीर दुखित है धरनि पें, छयो क्रोध कलियांन॥ ३॥

साहसी राव जयमलजी दोनों हाथों में बिजली के समान चमकती हुई तलवारों को लेकर युद्धार्थ बाहर निकले। गोली के ज़ख्म से अत्यन्त अशक्त हो

कवित्त

श्रोण अँखियांन छायो पौरुष भुजांन छायो,
सुबल महांन छायो वीर बलवांन के।
उर उतसाह छायो दोपिन के दाह छायो,
आनंद अथाह छायो जुमभत जवांन के॥
मार २ नाद छायो शस्त्र वादों वाद छायो,
महा उनमाद छायो भीरु मुगलांन के।
सुज्जस जहांन छायो देखनकों भानुं छायो,
क्रोध अप्पमांन छायो वीर कलियांन के॥ ४॥
किल्लातें कढत वीर कल्ला की कृपांन वही,
जाहिकी दहल्लातें दिलेस उर दाह दाह।
कैते दिल चल्ला चल चल्ला भये चौंधि रहे,
केतेही भटल्ला टल्ला लगतजु त्राह त्राह॥
जहां शंभु जोगनीन अच्छरीन ठल्लाजेते,
छोह धकधल्ला होय कहत धल्लाहल्लाह।
जहां पें कतल्ला भये आवत मुसल्ला केते,
मल्ला २ तजि मुख हल्ला करे आह आह॥ ५॥
बिज्जसी विकासित है दिसहू दिसांन बीच,
दुस्सह दहल देय दुहुन कों दाटती।
भमकि २ भुकि भड़ति भड़ाके सेंतु,
मीरन के मुंडन दड़ाके से डड़ाटती॥
भीरन भ्रमावती घुमावती प्रबीरन कों,
पल में उड़ल छुली पीरन पछाटती।
वहि यों कल्यांन की कृपान बेग पूरन लें,
कूरन के कठिन करेजन कों काटती॥ ६॥
सुघड़ कलियान को ठहांन पायो वाही दिन,
एघड़ ले कृपान चल मुंड पें लिजे गयो।
पारद की कहासी चमूं साह की अपार ताहि,
शाहु ज्यों निगासि वीर रस तें भिजे गयो।

जाने पर भी उन्होंने रोमांचकारी आत्मोत्सर्ग और पराक्रम प्रदर्शित किया। अपने नेता के उदाहरण से राजपूत सरदारों का उत्साह द्विगुण हो गया। मुसलमानों की अपेक्षा संख्या में बहुत कम होने पर भी राजपूतों ने इतनी प्रचंडता से मुग़ल-दल पर आक्रमण किया कि अनेक बार परास्त होकर उनको पीछे हटना पड़ा, परन्तु अन्त में नदी की बाढ़ के समान आगे बढ़ती हुई असंख्य मुग़ल सेना का राजपूत कहां तक मुक़ाबला कर सकते थे। राजपूत वीर धीरे धीरे काम आने लगे। अतुल पराक्रमी राव जयमलजी भी दोनों हाथों से तलवारें चलाकर धड़ाधड़ शत्रुओं का संहार करते हुए हनुमान-पोल और भैरव-पोल के बीच काम आये। रणांगण में इन महावीर का जहां अन्तिम शयन हुआ वहां ६ स्तंभों की एक छत्री इनकी स्मृति में बनवा दी गई, जो आजतक विद्यमान है और संसार में इनकी समुज्ज्वल देदीप्यमान कीर्ति को प्रकाशित कर रही है। राव जयमलजी के समीप ही राठोड़ कल्लाजी ने भी वीरगति को प्राप्त किया। उनकी भी यादगार में छत्री निर्माण कराई गई, जो अबतक मौजूद है। डोडिया सांडाजी घोड़े पर सवार होकर शत्रु-सेना को काटते हुए गंभीरी नदी के पश्चिमी किनारे पर मारे गये[1]।

इधर केसरिया वस्त्र पहिने हुए क्षत्रिय बड़ी वीरता से शाही सेना का

तिच्छन दुधारी औ कटारी तें छिदत तन,
धरनी परयौन धर स्तानक निजै गयो ॥
बनि जयथंभा करि आहव अचम्भा कैसो,
त्यागि क्रोध मोह दंभा रम्भा पै रिझै गयो ॥ ७ ॥

वार्ता

इण भांत वीर क्षत्रियां कृपाण बाही ।
जणासूं साहरी अपार सैना जका संक खाई ॥
जद बादशाह हरोळ में मत्त हाथियांने हँकाया ।
दुधारा सूंडां मझाय पीठांने पिछ बाढेन धकाया ॥
जठी धीरवीर रावत पत्तो मत्त हाथियां पै उम्हायो ।
सिंघरे समान हाथ बतावण ने सामने आ सम्हायो ॥

(१) डोडिया सांडाजी सरदारगढ़वालों के पूर्वज थे।

मुक़ाबला कर रहे थे। अन्त में राजपूतों के उत्साह को कम होता न देखकर बादशाह ने साबात के सामने से खूनी हाथियों को लाने की आज्ञा दी। इन हाथियों की सूंडों में खांडे पकड़वाकर वे आगे बढ़ाये गये। पहले गिर्दबाज़ और धोकर नाम के मस्त हाथी राजपूतों पर आक्रमण करने के लिए बढ़ाये गये। इनके पश्चात् मधुकर, जंगिया, शब्दलिया और कादिरा नाम के हाथी लाये गये। इन हाथियों ने राजपूतों का घोर संहार करना प्रारम्भ किया, परन्तु वीर क्षत्रियों के शौर्य की कहां तक प्रशंसा की जावे, इतने पर भी उनका धैर्य तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वे पूर्ववत् गंभीर भाव से जैसे मुग़ल सैनिकों का मुक़ाबला कर रहे थे अब इन मदोन्मत्त हाथियों का सामना करने लगे। राठोड़ वीर ईसरदासजी ने मधुकर नाम के विशाल हाथी को देखकर उसका नाम पूछा और नाम के ज्ञात होने पर एक हाथ से दांत पकड़ा तथा दूसरे से उस पर तलवार का वार करके कहा-'वीरता के गुणग्राहक अपने मालिक से मेरा मुजरा कहना'। इस मुजरे के कहलाने का तात्पर्य यह था कि एक मर्तबा पहले ईसरदासजी की वीरता पर मुग्ध होकर बादशाह अकबर ने इनको बुलाया और जागीर का लोभ देकर अपने पास ही रखना चाहा था, परन्तु इन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया-'मैं फिर कभी बादशाह से मुजरा करूंगा'। अपने इस वचन की पूर्ति के लिए ही ईसरदासजी ने बादशाह को गुणग्राहक बतला कर अपना यह मुजरा कहलाया। जंगिया हाथी की सूंड एक बहादुर राजपूत ने काट डाली और अनेक हाथियों के दांत राजपूतों ने तोड़ डाले। इससे कई हाथी तो मर गये और बहुतसे सैनिकों को कुचलते हुए भाग निकले। बादशाह अकबर ने भी, जो एक बड़े हाथी पर बैठा हुआ था, कई हज़ार पैदल सेना सहित दुर्ग में प्रवेश किया। राजपूतों की बहादुरी और हिम्मत देखकर वह चकित हो गया। महावीर रावत पत्ताजी ने बड़ी बहादुरी से युद्ध किया। गोविन्दश्याम के मन्दिर के पास पहुंचकर बादशाह ने देखा कि एक महावत ने एक योद्धा को अपने हाथी के नीचे कुचला दिया और हाथी की सूंड से लिपटा हुआ जब वह बादशाह के सामने लाया गया तब महावत ने अर्ज़ किया-'मैं इसका नाम नहीं जानता, परन्तु यह कोई प्रतिष्ठित सरदार प्रतीत होता है, क्योंकि

इसके चारों तरफ़ सैकड़ों आदमियों ने युद्ध करके प्राण दे डाले हैं।' अन्त में ज्ञात हुआ कि ये महावीर स्वयं रावत पत्ताजी ही थे। जिस समय हाथी उनको सूंड में लपेट कर लाया था उस समय कुछ जीवन उनमें अवशिष्ट था, परन्तु थोड़ी ही देर पीछे उनकी वीर आत्मा ने नश्वर शरीर का परित्याग कर अमर-लोक को प्रयाण कर दिया[1]।

प्रारंभ में ५० हाथी लाये गये, परन्तु राजपूतों को परास्त होता न देखकर उनकी संख्या बढ़ाई जाने लगी। यहांतक कि अन्त में उनकी संख्या ३०० तक पहुंच गई तो भी राजपूतों का धैर्य अब भी विचलित न हुआ। वे पूर्ववत् उत्साह से विपक्षियों का संहार करते रहे। बादशाह उनकी वीरता को देखकर चकित हो गया और विजय के लिए बारम्बार खुदा से मिन्नत करने लगा[2]। खूनी हाथी राज-पूतों पर बड़ा भयङ्कर आक्रमण करने लगे, परन्तु अतुल साहसी क्षत्रिय योद्धाओं ने ऐसी वीरता से उनका सामना किया कि बहुत से तो मारे गये और बहुत से क्षतविक्षत होकर युद्ध से भाग निकले। बादशाह स्वयं राजपूतों के इस अलौ-किक पराक्रम को अवलोकन कर रहा था। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् बाद-शाह ने वर्णन किया कि जंगिया हाथी की सूंड को तलवार के वार से एक राजपूत ने काट डाली, जिससे वह तुरन्त मर गया। कदिरा नाम का हाथी ज़ख्मों के लगने से घबराकर क़िले की तरफ़ बहुत से सैनिकों को कुचलता हुआ भाग गया। अज़मतखां, जो उसपर बैठा हुआ था, बुरी तरह ज़ख्मी हो गया, जिससे थोड़े दिनों के बाद मर गया। शब्दलिया हाथी दुर्ग में जब राजपूतों पर आक्रमण कर रहा था तब एक राजपूत ने दौड़कर उसपर खड्ग का प्रहार किया, जिसके ज़ख्म से क्रुद्ध होकर उसने उसी राजपूत को अपनी सूंड में लपेट लिया इतने में एक और राजपूत सैनिक उस हाथी के सामने आया। हाथी ने इस सैनिक पर हमला किया तो पहले राजपूत ने सूंड में से छूटकर पीछे से तलवार मारी।

सूरजपोल दरवाज़े पर रावत साईंदासजी बड़ी वीरता से युद्ध करके

---

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा; जिल्द २, पृष्ठ ४७३-७४।

(२) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा।

काम आये। इनकी सहायता करने के लिए दूसरे मोर्चों से राजराणा जैताजी सज्जावत और राजराणा सुल्तानजी आसावत पहुंचे। ये भी बड़ी बहादुरी से लड़कर वहीं मारे गये। इस प्रकार राजपूत अन्त तक बड़ी बहादुरी से मुसलमानों का मुक़ाबला करते रहे। सैनिकों के अतिरिक्त लगभग तीस हज़ार चित्तोड़ के प्रजाजन भी इस युद्ध में मारे गये। इतने आदमियों के मारे जाने का कारण यह था कि इन्होंने सरभरा (सैनिकों के लिए खाने पीने का इन्तिज़ाम) आदि युद्ध-सम्बन्धी कार्यों में पूरा भाग लिया था और अन्तिम दिन भी युद्ध में सम्मिलित हुए थे, जिससे क्रुद्ध होकर बादशाह ने इनको मारने के लिए क़त्ल-आम का हुक्म दे दिया था। क़िले पर जो एक हज़ार पठान बन्दूकची थे उनपर भी बादशाह बहुत क्रुद्ध था। उनको बहुत सख़्त सज़ा दी जाती, परन्तु वे क़िले पर शाही अधिकार होने के पहले ही अपने बच्चों और स्त्रियों को लेकर वहां से निकल गये थे। शाही सैनिकों ने उनको अपनी ही सेना के आदमी समझकर कुछ रोक टोक न की। क़िले पर सर्वत्र विशेषतः महाराणा के राजमहलों के सामने, समिद्धेश्वर महादेवजी के मन्दिर के पास और रामपोल दरवाज़े पर, जहां पत्ताजी काम आये थे, हज़ारों आदमियों की लाशों का ढेर लग गया। शाही लश्कर के भी हज़ारों सिपाही मारे गये।

चित्तोड़ के इस प्रसिद्ध युद्ध में, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, मेवाड़ के बहुत से सरदार अलौकिक वीरता प्रदर्शित करके काम आये, जिनमें विशेषतः सलूंबर के रावत साईदासजी, सादड़ी के राजराणा सुलतानजी आसावत, बेदले के राव संग्रामसिंहजी चौहान, देलवाड़े के राजराणा जैताजी सज्जावत, रावत साहिबख़ांजी और राठोड़ नेतसीजी[1] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हमारी वंशावलियों से विदित होता है कि राव जयमलजी इस युद्ध में निज के शतशः सैनिकों सहित काम आये, जिनमें निम्नलिखित प्रतिष्ठित सरदार थे—

१—कनिष्ठ भ्राता ईसरदासजी

२—अर्जुनसिंहजी रायमलोत मेड़तिया

(१) ये केलवा वालों के पूर्वज थे।

३—भ्रातृज अजीतसिंहजी
४—कूंपावत उदयभाणजी
५—भाणेज भाऊसिंहजी
६—राठोड़ मानसिंहजी
७—सोनिगरा रायसिंहजी
८—परमार मालदेवजी
९—सुरजणोत रूपसिंहजी
१०—डोडिया रामदासजी
११—घरू सेनापति राठोड़ भीमसिंहजी
१२—अहाड़ा फतेसिंहजी
१३—खडिया शूरजी

इन सरदारों के अतिरिक्त शिवड़ पुरोहित रेखाजी भी काम आये। इनकी स्त्री ग्राम पचडोल्या में सती हुई। यह ग्राम राव दूदाजी ने वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में शिवड़ पुरोहित गोंदाजी को प्रदान किया था।

वि० सं० १६२४ चैत्र कृष्णा १३ (ई० स० १५६८ ता० २५ फरवरी) को मध्याह्न के समय चित्तोड़ के क़िले पर बादशाह अकबर का अधिकार हो गया। तीन दिन तक बादशाह ने दुर्ग पर ही ठहरकर वहां का प्रबन्ध किया। इसके बाद अब्दुलमजीद आसफ़खां को चित्तोड़ का हाकिम नियत कर वह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के वास्ते अजमेर पैदल ही रवाना हुआ १० रोज अजमेर में ठहरकर बादशाह आगरे चलागया। महाराणा चार मास तक पहाड़ों में रह कर अपने रहे सहे राजपूतों को एकत्रित कर उदयपुर आये और वहां के राजमहलों को, जो अधूरे रह गये थे, पूरा किया।

बादशाह अकबर का रणथंभोर लेना

चित्तोड़ विजय के एक वर्ष पश्चात् ही बादशाह ने रणथंभोर के दुर्ग पर भी आक्रमण कर दिया। उस समय महाराणा की तरफ़ से रणथंभोर के क़िलेदार बूंदी के राव सुरजनजी हाड़ा मुक़र्रर थे। बादशाह ने एक ऊंचा साबात बनवाकर वहां से गोलंदाजी शुरू करवाई। इससे क़िले की दीवारें टूटने लगीं और मकान गिरने लगे। अन्त में

राजा भगवानदासजी कछवाहा और उनके पुत्र मानसिंहजी तथा अमीरों के बीच में पड़ने से राव सुरजनजी ने अपने कुंवर दूदाजी और भोजराजजी को बादशाह की सेवा में भेज दिया। स्वयं उपस्थित होने के विषय में रावजी ने बादशाह को यह कहलाया कि यदि कोई शाही कर्मचारी मुझे लेने के लिए आवे तो मैं भी उपस्थित हो सकता हूं। इसपर बादशाह ने हुसैनकुलीखां को रावजी के लाने के वास्ते भेजा। राव सुरजनजी ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर मुजरा किया और क़िले की चावियां बादशाह के सुपुर्द कर दीं। अकबर ने मेहतरखां को दुर्ग का अधिकारी नियत कर दिया। बादशाह की अधीनता स्वीकार करने से राव सुरजनजी पहले तो गढ़ कटंगा के क़िलेदार और बाद में चुनार के हाकिम नियत किये गये।

बादशाह अकबर बहादुरी और वफ़ादारी का पूरा क़द्रदान था। राव जयमलजी और रावत पत्ताजी की अलौकिक वीरता उसके हृदय पर ऐसी अंकित हो गई कि वह उसे कभी विस्मरण न कर सका।

बादशाह का राव जयमलजी और रावत पत्ताजी की पाषाण की गजारूढ़ मूर्तियां बनवाना

उनकी वीरता पर मुग्ध होकर बादशाह अकबर ने राव जयमलजी और रावत पत्ताजी की पाषाण की गजारूढ़ मूर्तियां बनवाईं और शाही क़िले के प्रधान द्वार पर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ स्थापित कराईं। सच्ची वीरता इसी का नाम है, जिससे शत्रु भी इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं और स्वयं मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगते हैं। अकबर जैसे प्रतिपक्षी और विजातीय सम्राट् से भी जिन महावीरों की कीर्तिरक्षार्थ इतनी चेष्टा किये बिना नहीं रहा गया, उनके अनुपम पराक्रम और शौर्य का लेखनी के द्वारा यथार्थ वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। बादशाह अकबर ने, जो सच्ची वीरता का हार्दिक उपासक था, अपने चित्तौड़ विजय के स्मारक रूप में जयस्तम्भ इत्यादि के बनवाने की अपेक्षा वहां के सर्वप्रधान योद्धाओं की मूर्तियां निर्माण कराना ही श्रेष्ठ समझा। जहां वीरता और स्वामिभक्ति की बादशाह ने इतनी प्रतिष्ठा की वहां स्वामी-द्रोह और विश्वासघात के प्रति अपनी घृणा भी प्रकट कर दी। रणथंभोर के दुर्ग को, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, अपने स्वामी से विश्वासघात करके सौंप देने के कारण उसने

प्रसिद्ध वीर रावत श्री पत्ताजी जगावत

बूँदी के राव सुरजनजी की मूर्ति कुत्ते की सी बनवाई[1]। राव सुरजनजी यह देखकर बड़े लज्जित हुए और अपने पुत्र दूदाजी को राजकाज सौंपकर 'काशी-वास करने चले गये। वहीं पर वि० सं० १६४२ (ई० स० १५८५) में इनका देहान्त होगया। काशी में इनके बनवाये हुए बड़े बड़े महल हैं।

इतिहासवेत्ताओं का मत है कि वीरशिरोमणि राव जयमलजी और रावत पत्ताजी की ये मूर्तियां प्रारम्भ में आगरे के शाही क़िले के द्वार पर दोनों तरफ़ स्थापित की गई थीं। बाद में जब बादशाह शाहजहां ने शाहजहानाबाद के नाम से दिल्ली में नवीन राजधानी स्थापित कर वहां शाही क़िला निर्माण कराया तब इन मूर्तियों को आगरे से मंगवाकर दिल्ली के क़िले के मुख्य द्वार पर स्थापित करा दीं। बादशाह औरंगज़ेब ने सं० १७२६ में धर्मद्वेष के कारण उनको तुड़वाकर टुकड़े ज़मीन में गड़वा दिये[2]। महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी ओझा

---

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात (काशी नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण), प्रथम भाग पृष्ठ १११। पं० गौरीशंकरजी ओझा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ७३२।

(२) मुंशी देवीप्रसादजी; औरंगज़ेबनामा; भाग २, खंड ४, पृ० १०।

पंडित गौरीशंकरजी ओझा; उदयपुर का इतिहास; जिल्द १, पृष्ठ ४१७।

इटली के यात्री निकोलो मनूकी (Niccolas Manucci) ने, जो औरंगज़ेब के समय में भारतवर्ष में आया था, स्टोरिया डो मोगोर (Storia do Mogor) नामक पुस्तक में इन मूर्तियों के तोड़े जाने का स्वयं देखा हुआ वृत्तान्त लिखा है कि एक दिन बादशाह औरंगज़ेब ने, शाहजहां के तमाम हाथी, जो गिनती में तीन हज़ार से अधिक थे, अपने सामने लाने की आज्ञा दी। उन हाथियों में एक हाथी, जो सब से बड़ा था और शाहजहां को बहुत प्रिय था, महावतों के बहुत प्रयत्न करने पर भी क़िले में नहीं आया। उसका नाम 'खल्क-प-दाद' था। इसपर बादशाह बहुत क्रुद्ध हुआ और किसी तरह अपने सामने लाने की आज्ञा दी। महावतों ने उसको तीन दिन तक भूखा प्यासा रक्खा, इसके पश्चात् रास्ते को हरी टहनियों व गन्नों (ईख) से सजाकर, उसको बाहर निकाला और बादशाह के सामने 'आम-ख़ास' के चौक में उपस्थित किया। महावत के सलाम करने का संकेत देने पर उसने सलाम किया, परन्तु यह समझने पर कि वह धोखा देकर उसकी इच्छा के विरुद्ध यहां लाया गया है, वह हाथी बदल गया और अपने साथ की हथिनियों को अपने सूंड से अलग हटाकर बाहर की तरफ़ दौड़ा। क़िले से बाहर निकलते हुए उसने दरवाज़े पर एक पत्थर का बना हुआ हाथी देखकर समझा कि यह असली हाथी है और उसका रास्ता रोकने आ रहा है; अतः उस पर आक्रमण करके उसको तोड़ डाला। बादशाह औरंगज़ेब ने कुरान का अनुयायी होने के

भी इनकी मूर्तियों को जहांगीर के समय में आगरे में होना अपने बनाये हुए उदय-पुर के इतिहास के महाराणा अमरसिंहजी के प्रकरण में उनके गौरव का वर्णन करते हुए पृ० ४०१ में लिखते हैं—"जैसे बादशाह अकबर अपने साथ लड़नेवाले वीर राजपूतों का सम्मान करता था, वैसे ही जहांगीर भी किया करता था। जैसे अकबर ने बदनोर के वीर जयमल और आमेट के वीर पत्ता की हाथियों पर बैठी हुई पाषाण की मूर्तियां बनवाकर उन्हें आगरे के क़िले के द्वार के दोनों ओर स्थापित करवाईं और उनका आदर किया, वैसे ही बादशाह जहांगीर ने भी अजमेर में रहते समय महाराणा अमरसिंह और कुंवर कर्णसिंह की पूरे क़द की संगमरमर की खड़ी मूर्तियां बनवाकर उन्हें आगरे के क़िले में दर्शन के झरोखे के नीचे बाग़ में खड़ी करवाईं। इस प्रकार जहांगीर के समय आगरे में मेवाड़ के चार वीरों की मूर्तियां उनकी वीरता के स्मारक रूप विद्यमान थीं।" ई० स० १६६३ (वि० सं० १७२०) में इन दोनों गजारूढ़ मूर्तियों को फ्रांस देश के प्रसिद्ध यात्री बर्नियर ने दिल्ली में शाही क़िले के दिल्ली दरवाज़े नामक मुख्य द्वार पर लगी हुई देखीं और उसके तीन वर्ष पश्चात् ई० स० १६६६ (वि० सं० १७२३) में फ्रांस देश के ही एक दूसरे यात्री एम० डी० थेवेनाट ने भी इन मूर्तियों को उसी स्थान पर देखा था। ई० स० १८६३ (वि० सं० १९२०) में दिल्ली के क़िले में एक स्थान के खोदे जाने पर मूर्तियों के अनेक भग्नांश निकले[1]। उनमें से कुछ टुकड़ों को जोड़कर ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२३) में दिल्ली के क्वीन्सगार्डन में एक गजारूढ़ मूर्ति स्थापित की गई थी, जो बाद में टाउनहॉल के सामने लगाई गई। वहां से जब यह मूर्ति हटाई गई तब बहुतसे टुकड़ों के टूट जाने के कारण बाद में वह जुड़ नहीं सकी। उस मूर्ति के टुकड़े दिल्ली के

कारण उसके सामने जो दूसरा हाथी बना हुआ था उसको भी तुड़वा दिया। इन हाथियों पर जयमल और पत्ता की दो मूर्तियां थीं, जिन्होंने अकबर के मुक़ाबले में वीरतापूर्वक चित्तोड़ की रक्षा की थी। (इन्डियन टेक्स्ट सीरीज़; स्टोरिया डो मोगोर, निकोलो मनूकी कृत; रॉयल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृष्ठ ९, १०, ११)।

(१) ये भग्नांश किनकी मूर्तियों के हैं, इस विषय में पुरातत्ववेत्ताओं में मतभेद है। कुछ इनको मलजी व रावत पत्ताजी की होना मानते हैं और दूसरे किसी अन्य की

अजायबघर में विद्यमान हैं। उन्हीं मूर्तियों के अनुकरण में आर० डी० मेकन्जी नामक एक प्रसिद्ध यूरोपियन शिल्पकार ने ई० स० १६०३ (वि० सं० १९६०) में दो हाथी बनवाये, जो अभी तक दिल्ली में मौजूद हैं।

बर्नियर ने इन मूर्तियों के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए लिखा है—

"The entrance of the fortress presents nothing remarkable except two large elephants of stone placed at either side of one of the principal gates. On one of the elephants is seated the statue of Jai Mall the renowned Rajah of Chitor; on the other is the statue of Patta his brother. These are the brave heroes who, with their still braver mother, immortalised their names by the extraordinary resistance which they opposed to the celebrated Akbar; who defended the towns besieged by that great Emperor with unshaken resolution; and who, at length reduced to extremity, devoted themselves to their country, and chose rather to perish with their mother in sallies against the enemy than submit to an insolent invader. It is owing to this extraordinary devotion on their part, that their enemies have thought them deserving of the statues here erected to their memory. These two large elephants, mounted by the two heroes, have an air of grandeur, and inspire me with an awe and respect which I cannot describe."[1]

अर्थात् "दुर्ग में प्रवेश करते ही सब से अधिक महत्वपूर्ण और दर्शनीय वस्तु विशाल पाषाण के दो हाथी हैं, जो दुर्ग के मुख्य द्वार पर दोनों तरफ़ रक्खे हुए हैं। इनमें से एक हाथी पर तो चित्तौड़ के प्रसिद्ध राजा जयमल की मूर्ति स्थापित है और दूसरे पर उसके भाई पत्ता की। ये ही वे वीर हैं, जिन्होंने अपनी वीर माता के साथ बादशाह अकबर का असाधारण पराक्रम के साथ मुक़ाबला करके अपने नामों को अमर कर दिया, जिन्होंने अलुगरण धैर्य से

(१) बर्नियर्स ट्रेवल्स इन दी मोगल एम्पायर; कान्सटेबल स्मिथ सम्पादित; पृ० २५६-५७।

नगर की रक्षा की, जिसको बादशाह ने घेर लिया था। जब वे बादशाही आक्रमण से बिल्कुल तंग आ गये तब उन्होंने स्वदेश की रक्षार्थ अपना तन, मन अर्पण कर दिया और एक धृष्ट आक्रमणकर्त्ता के अधीन हो जाने की अपेक्षा अपनी जननी के साथ शत्रुओं पर आक्रमण करके मर जाना ही श्रेष्ठ समझा। यह इनके असाधारण त्याग का ही कारण है कि इनके शत्रुओं ने इनको इसके योग्य समझा कि इनकी यादगार में मूर्तियां बनवाकर यहां लगवा दीं। इन दोनों विशाल हाथियों पर इन वीरों के चढ़े होने से एक अपूर्व ही प्रभावशाली दृश्य नेत्रों के सामने उपस्थित होता है, जिससे मेरे हृदय में इन महापुरुषों के प्रति ऐसे गौरव और सम्मान के भाव उत्पन्न होते हैं, जिनका मैं वर्णन भी नहीं कर सकता।"

बर्नियर ने यहां पर भ्रम से राव जयमलजी को सेनापति न लिखकर चित्तोड़ का राजा और पत्ताजी को उनका भाई लिख दिया है, जो वास्तव में राव जयमलजी के बहनोई थे।

ऐसा भी प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर ने राव जयमलजी और रावत पत्ताजी की, जो मूर्तियां बनवाकर लगवाई, उनपर निम्नलिखित एक दोहा[1] भी खुदवाया—

जयमल बड़तां जीवणे पत्तो बायें पास।
हिन्दू चढ़िया हाथियां अड़ियो जस आकास॥

इन मूर्तियों का निर्माण कराना बादशाह अकबर के सच्चे वीरपूजक होने का सब से बड़ा प्रमाण है।

वीरशिरोमणि राव जयमलजी और वीराग्रणी रावत पत्ताजी इन दोनों महापुरुषों के वीर-चरित का इतना प्रभाव फैल गया कि ये सर्वत्र दिव्यशक्ति-संपन्न सिद्ध योद्धा माने जाने लगे। नैपाल देशान्तर्गत भाट गांव प्रांत के मल्लवंशी राजा भूपतीन्द्र मल्ल ने तो इन महावीरों को भगवती के गण समझ कर इनकी मूर्तियां अपने बनवाये हुए भगवती ईश्वरी के मंदिर के द्वार पर बड़े सम्मान से प्रतिष्ठित कराई[2]। वहां के निवासी इनको दिव्य पुरुष समझकर

(१) यह रूपाहेली ठाकुर चतुरसिंहजी के भेजे हुए ऐतिहासिक संग्रह से प्राप्त।
(२) भाटगांव नामक नगर नैपाल की राजधानी काटमांडू से नौ मील दूर है।

आजतक बड़ी भावभक्ति से इनका पूजन करते हैं। भाट गांव के उपर्युक्त नरेश ने यह मंदिर अपने राज्य में भैरव-कृत उपद्रवों को शांत करने के निमित्त तंत्र-शास्त्र की विधि के अनुसार निर्माण कराया था। यह अपूर्व गौरव वीरशिरोमणि राव जयमलजी और वीरवर रावत पत्ताजी को ही प्राप्त है कि नेपाल जैसे सुदूर प्रदेशों में भी अद्यावधि इतनी श्रद्धा और सम्मान के साथ इनका पूजन किया जा रहा है[1]।

राव जयमलजी का व्यक्तित्व

राव जयमलजी एक अत्यन्त बुद्धिमान्, धीर, कृतज्ञ, उदार और विचारशील नरेश थे। आपको अपने वंश की मर्यादा के पालन करने का और जाति तथा धर्म के गौरव की रक्षा करने का सदैव बहुत विचार रहता था। राव मालदेवजी के साथ भी, जिन्होंने इनसे इतनी शत्रुता कर रक्खी थी, इन्होंने कैसी उदारता का व्यवहार किया कि राव मालदेवजी को युद्ध में परास्त कर जब राव जयमलजी के सैनिकों ने उनके नक्कारा निशान इत्यादि राज्यचिह्न छीन लिए तब अपने वंश के पाटवी का इतना तिरस्कार करना उचित न जानकर उदारचरित राव जयमलजी ने बड़े आदर के साथ तुरन्त वापस लौटा दिये। इस सम्बन्ध में पाठकगण राव जयमलजी की उदारता और भ्रातृ-सौजन्य के साथ राव मालदेवजी के परम ईर्ष्यालु स्वभाव, भ्रातृद्वेष और कुटिल क्षुद्र बुद्धि की तुलना करें। कहां तो राव जयमलजी के इतनी उदारता के विचार कि जीते हुए राज्य-चिह्न भी वापस भेज दिये और कहां राव मालदेवजी के क्षुद्र कुटिल विचार कि मेड़ता नगर के हस्तगत हो जाने पर वहां के समस्त राजप्रासादों को नष्टकर वहां हल चलवा दिये और मेड़ता छोड़कर मेवाड़ में बदनोर पर भी इनका राज्य करना सहन नहीं हुआ इसीसे बदनोर पर भी इन्होंने आकर अधिकार कर लिया[2]। यदि राव

भूपतीन्द्र मल्ल ने उपर्युक्त मन्दिर वि० सं० १७६० में निर्माण कराया था (विन्सेन्ट स्मिथ; हिस्ट्री आफ् फाइन आर्ट इन इंडिया एंड सीलोन; भाग २, पृष्ठ ४८)।

(१) राइट; हिस्ट्री आफ् नेपाल (कैम्ब्रिज संस्करण), पृष्ठ ११४। इस पुस्तक में भाटगांव के उपर्युक्त मन्दिर का चित्र भी है।

(२) बदनोर पर राव मालदेवजी का अधिकार बहुत कम समय तक रहा, क्योंकि

मालदेवजी अपने पूर्वजों के तुल्य मेड़ता राज्य से परस्पर सौहार्द और सहानुभूति का व्यवहार रखते तो राठोड़ों की शक्ति कितनी बढ़ जाती। राव जयमलजी बड़े दृढ़-प्रतिज्ञ थे। इनके वीरव्रत पालन की कहांतक प्रशंसा की जावे। चित्तोड़ नरेन्द्र महाराणा संग्रामसिंहजी के निरुपम स्नेह और मानव्यवहार के वशीभूत होकर इनके पिता राव वीरमदेवजी ने चित्तोड़ के निमित्त अपना मस्तक अर्पण करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। चित्तोड़ राज्य को जब जब भी आवश्यकता पड़ी, राव वीरमदेवजी ने प्रत्येक अवसर पर सेना सहित उपस्थित होकर अलौकिक वीरता प्रदर्शित की। चित्तोड़ राज्य के प्रति राव वीरमदेवजी का इतना अधिक अनुराग था कि मृत्यु-समय अपने पुत्रों को भी इसी प्रकार चित्तोड़ राज्य की रक्षार्थ उद्यत रहने का आदेश किया। अपने पिता की ऐसी आकांक्षा देखकर पाटवी राजकुमार जयमलजी ने उनके सामने यह प्रतिज्ञा की कि पूज्यवर आप चिन्ता न करें आपके इस पुत्र का शीश मेवाड़ के ही निमित्त अर्पण है[1]। इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का राव जयमलजी ने किस प्रकार विचार रक्खा, यह पाठकगण पूर्व के वृत्तान्तों को पढ़कर अवश्य जान गये होंगे। चित्तोड़ नरेश की सहायतार्थ प्रत्येक युद्ध में राव जयमलजी सम्मिलित हुए। मेवाड़ राज्य की सहायता करने से इनको अपने वंश के पाटवी जोधपुर नरेश राव मालदेवजी से भी विरोध करना पड़ा तथा अपने राज्य से भी वंचित होना पड़ा, परन्तु इतने पर भी कभी अपनी प्रतिज्ञा से विमुख नहीं हुए। अंतिम बार जब इन्होंने मेड़ते का परित्याग किया तब इनका विचार बादशाह के पास जाने का था। यदि राव जयमलजी उस समय शाही दरबार में चले जाते तो निस्सन्देह बादशाह इनकी वीरता की पूरी क़द्र करता और मेड़ते का राज्य अवश्य ही इनको पुनः प्रदान कर देता, परन्तु इस अवसर पर महाराणा उदयसिंहजी ने राव जयमलजी से अन्यत्र न जाकर चित्तोड़ दुर्ग पर ही निवास करने का आग्रह किया। इस संदेश के पाने से महाराणा के

महाराणा उदयसिंहजी ने थोड़े ही समय के बाद पुनः इस स्थान पर अपना अधिकार कर लिया।

(१) रायसाहब हरविलासजी शारदा के ऐतिहासिक संग्रह के आधार पर।

साथ के अपने घनिष्ठ सम्बन्ध और पुराने व्यवहार तथा अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को स्मरण कर राव जयमलजी ने अन्य सब विचारों का परित्याग कर चित्तोड़ दुर्ग की रक्षार्थ महाराणा के पास ही रहने का निश्चय किया।

पाठकगण प्रतिज्ञापूर्ति में राव जयमलजी की दृढ़ता का अवलोकन करें, जिन्होंने अपने राज्य की पुनः प्राप्ति के निश्चित उद्योग का परित्याग कर दिया, परन्तु अपने वचन को कभी नहीं छोड़ा। क्षणभंगुर सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति का विचार न रखकर ऐसे त्याग, प्रवीरता और प्रतिज्ञा-पालन के उच्चतम सिद्धान्तों के पालन से ही राव जयमलजी ने अजर अमर कीर्ति संपादित की। इनका यशःशरीर सर्वदा संसार में स्थिर रहेगा और मानवजाति को वीरव्रत पालन का सन्मार्ग प्रदर्शित करता रहेगा। राव जयमलजी जैसे वीर थे वैसे ही भगवद्भक्त भी थे। मेड़तिया कुल के इष्टदेव भगवान् श्रीचतुर्भुजजी के ये अनन्य भक्त थे। भक्तमालादि ग्रन्थों में इनकी प्रगाढ़ भक्ति के विषय में अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं, परन्तु विस्तारभय से उनका यहां उल्लेख नहीं किया गया।

हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज़, फ्रांसीसी, जर्मन, पुर्तगाली आदि सभी जातियों के इतिहास-लेखकों ने राव जयमलजी के अनुपम पराक्रम का बड़े गौरव के साथ वर्णन किया है। राजपूत इतिहास के अद्वितीय विद्वान् महानुभाव कर्नल जेम्स टाड ने जिन शब्दों में राव जयमलजी की वीरता का वर्णन किया है वह पाठकों के अवलोकनार्थ हिन्दी अनुवाद सहित नीचे उद्धृत किया जाता है—

But the names which shine brightest in this gloomy page of the annals of Mewar, which are still held sacred by the bard and the true Rajput, and immortalized by Akbar's own pen, are Jaimall of Badnor and Patta of Kelva, both of the sixteen superior vassals of Mewar. The first was a Rathor of the Mertiya house, the bravest of the brave clans of Marwar; the other was head of the Jagawarts, another grand shoot from Chonda. The names of

'Jaimall and Patta' are 'as household words,' inseparable in Mewár, and will be honoured while the Rajput retains a shred of his inheritance or a spark of his ancient recollections.[1]

इसी जिल्द के पृष्ठ ५८२ में लिखा है—

'Jaimall was destined to immortalize his name beyond the limit of Maroo. He was hospitably received by the Rana who assigned to the heir of Mundore the rich district of Badnor. How he testified his gratitude for this reception, nobler pens than mine have related. Abul Fazl, Herbert, the chaplain to Sir Thomas Roe, Bernier, all honoured the name of Jaimall; and the chivalrous Lord Hastings than whom none was better able to appreciate Rajpoot valour, manifested his respect by his desire to conciliate his descendant, the present brave baron of Badnor.'

इन अवतरणों का हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है—

'परन्तु मेवाड़ के इतिहास के विपत्तियों के वृत्तान्तों से भरे हुए पत्रों में सब से अधिक प्रकाशमान नाम बदनोर के जयमल और केलवा के पत्ता के हैं, जो मेवाड़ के उच्च श्रेणी के सोलह उमरावों में से थे और जिनके नामों को अद्यावधि प्रत्येक चारण और सच्चे राजपूत पवित्र मानते हैं और जिनको स्वयं अकबर ने अपनी कलम से अमर कर दिया है। इनमें राव जयमलजी मारवाड़ की वीर शाखाओं में सब से अधिक बहादुर राठोड़ों की मेड़तिया शाखा के थे और पत्ता चूंडावतों की एक प्रधान शाखा जगावतों के पाटवी थे। जयमल और पत्ता के नाम घर घर में विख्यात हैं, जिनको मेवाड़ से कभी पृथक् नहीं किया जा सकता और जब तक राजपूतों के पास उनके पूर्वजों की सम्पत्ति का कुछ भी अंश अथवा पुरातन घटनाओं की कुछ भी स्मृति बाकी रहेगी तबतक उनके नाम बड़े सम्मान और गौरव के साथ याद किये जायेंगे'।

'जयमल को मारवाड़ देश की सीमा के बाहर अपने नाम को अमर

(१) टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृष्ठ २६१। पापुलर संस्करण।

करने का सौभाग्य विधाता ने प्रदान किया था। राणा ने उसका आतिथ्यसत्कार के साथ स्वागत किया और मंडोर के राजवंशज राव जयमल को बदनोर का ज़रखेज प्रांत प्रदान किया। इस सम्मान के बदले उसने जो कृतज्ञता प्रकट की उसका वर्णन मुझसे अधिक प्रतिभाशाली लेखकों की क़लम से किया गया है। अबुलफ़ज़ल, हर्बर्ट, सर टॉमस रो[1] के पादरी तथा बर्नियर, इन सब विख्यात लेखकों ने जयमल के नाम का सम्मान किया है और वीरता के परम अनुरागी लार्ड हेस्टिंग्स[2] ने, जिनसे अधिक राजपूतों की वीरता की क़द्र और कोई नहीं कर सकता था, जयमल के वंशधर बदनोर के वीर सामन्त को सन्तुष्ट रखने की इच्छा प्रगट करके जयमल के प्रति अपने आदर के भाव को प्रकाशित किया।

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने अपनी बनाई हुई 'मीरांबाई का जीवनचरित' नामक पुस्तक में लिखा है—"लार्ड हेस्टिंग्स ने बदनोर के तत्कालीन सामन्त (मेरे विख्यात पूर्वज) ठाकुर जैतसिंहजी को लिखा था कि मैं आपके प्रसिद्ध पूर्वज राव जयमलजी के पुरुषार्थ की प्रशंसा करता हूं और उनके प्रसिद्ध नाम का आदर करता हूं"। काउन्टनोअर नामक जर्मन लेखक ने अपनी लिखी हुई 'अकबर' नामक पुस्तक में राव जयमलजी को इनके अद्भुत पराक्रम और अनुपम शौर्य के कारण 'Lion of Chitor' अर्थात् 'चित्तोड़-केसरी' लिखा है। सतीशचन्द्र मिश्र

---

(१) सर टॉमस रो इग्लैंड के बादशाह प्रथम जेम्स का राजदूत था। यह वि० सं० १६७२ (ई०स० १६१५) में बादशाह जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ था और तीन वर्ष तक भारत में रहकर इग्लैंड को वापस लौटा था। इसने अपने रोज़नामचे में तत्कालीन भारत का पूरा वृत्तान्त लिखा है।

(२) लार्ड हेस्टिंग्स वि० सं० १८६६ से १८७६ (ई० स० १८१२-१८२२) तक भारत के गवर्नर जनरल थे। उनके समय में बदनोर की गद्दी पर ठाकुर जैतसिंहजी विराजमान थे। कतिपय कारणों से ठाकुर जैतसिंहजी कुछ असन्तुष्ट हो गये थे, इसलिए लार्ड हेस्टिंग्स ने, जो राव जयमलजी के अनुपम विक्रम और रोमांचकारी आत्मोत्सर्ग के वृत्तान्तों को पढ़कर मुग्ध होगये थे, इनके वंशधर बदनोर के सामन्त ठाकुर जैतसिंहजी के मनोमालिन्य को दूर कर प्रसन्न रखने के लिए पोलिटिकल एजेंट कर्नल टॉड को लिखा था।

प्रोफ़ेसर ऑफ़ हिस्ट्री हिन्दू एकेडेमी दौलतपुर (बंगाल), तथा डी० एन० घोष प्रोफ़ेसर ऑफ़ इंग्लिश देहली, इन दोनों विद्वानों ने अपनी बनाई हुई महाराणा प्रतापसिंहजी के जीवनचरित्र की पुस्तक में, जिसका पूर्व वक्तव्य बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड रोनाल्डशे ने लिखा है, वीरपुंगव राव जयमलजी के अद्वितीय पराक्रम, असाधारण अनुभव और युद्ध-कौशल का बड़े गौरव के साथ वर्णन करते हुए लिखा है कि प्रातःस्मरणीय वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंहजी ने भी उनके पास कुछ दिनों तक रहकर सैनिक शिक्षाविषयक अनुभव प्राप्त किया था। रणछोड़ भट्ट कृत 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य में भी राव जयमलजी और रावत पत्ताजी का बादशाह अकबर के विरुद्ध वीरता से युद्ध करने का वर्णन किया गया है[1]। इस प्रकार अनेक इतिहास के ग्रन्थों में राव जयमलजी के शौर्यादि गुणों का पर्याप्त रूप से वर्णन किया गया है।

राव जयमलजी ने ६० वर्ष, ५ मास और १७ दिन की अवस्था में चित्तोड़ के प्रसिद्ध संग्राम में आर्यजाति की स्वाधीनता की रक्षा करते हुए वीर गति प्राप्त की। इन्होंने २४ वर्ष राज्य किया, जिनमें अंतिम चार वर्ष पर्यन्त मेड़ता परित्याग करने के अनन्तर बदनोर[2] में अपनी राजधानी नियत कर इसी प्रांत में इन्होंने शासन किया। इनके शासन-काल में, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, निरन्तर घोर विपत्तियों के पड़ते रहने पर भी इन्होंने कभी क्षत्रियोचित साहस का परित्याग नहीं किया। धन्य है वीरशिरोमणि आपने अपने अनुपम वीर-चरित से राजपूत जाति का मुख उज्वल कर दिया। चित्तोड़ के जगत्प्रसिद्ध संग्राम में राव जयमलजी ने जिस प्रकार असीम पराक्रम प्रदर्शित

---

(१) *चित्रकूटेऽथ योद्धास्य राठौडो जयमलो रणम्।*
पत्ता सीसोदिया चक्रे दिल्लीशेन महायशाः॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; चतुर्थ सर्ग, श्लोक १६।

यह महाकाव्य महाराणा जयसिंहजी के समय में पचीस शिलाओं पर खुदवाकर राजसमुद्र नामक तालाब के नोचौकी नामक बांध के ताकों में जगदा दिया गया था, जो अद्यावधि विद्यमान है।

(२) बदनोर के अलावा कोठारिया और करेड़ा के प्रान्तों पर भी इनका अधिकार होना कविराजा बांकीदानजी की हस्तलिखित ख्यात से ज्ञात होता है।

करके देश की स्वाधीनता और जाति के गौरव की रक्षार्थ प्राणों को उत्सर्ग कर दिया वह सदैव राजपूतों के स्वातन्त्र्य-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण रहेगा और संपूर्ण आर्यजाति को सर्वदा उसका अभिमान रहेगा। जब तक संसार में वीरता की प्रतिष्ठा और स्वाधीनता के उच्चभावों का गौरव तथा सत्यता और प्रतिज्ञा पालन का आदर रहेगा तबतक राव जयमलजी का निर्मल वीरचरित समुज्ज्वल सुवर्णाक्षरों से लिखा हुआ इतिहास के पृष्ठों को देदीप्यमान करता रहेगा।

राव जयमलजी का क़द लम्बा, शरीर पुष्ट, विशाल नेत्र और वक्षःस्थल चौड़ा था। इनका रंग गेहुँआ और चहरा प्रतिभाशाली था। इनके बड़ी बड़ी मूँछें थीं, परन्तु ये दाढ़ी नहीं रखते थे।

राव जयमलजी की सन्तति

हमारी वंशावलियों में राव जयमलजी के तीन राणियां होने का उल्लेख है, जिनसे सोलह राजकुमार और दो राजकुमारियों ने जन्म लिया। राणियों के नाम निम्नलिखित क्रम से निर्दिष्ट हैं—

१—राणी सोलंकी केवलकुँवरी, लूणवाड़ा के राणा रणधीरसिंहजी की पुत्री।

२—राणी निर्वाण विनयकुँवरी, खंडेला के राजा केशवदासजी की पुत्री।

३—राणी सोलंकी पद्मकुँवरी, देसूरी के राव केसरीसिंहजी की पुत्री।

राजकुमारियों के नाम तथा वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में इस प्रकार लिखा है—

१—राजकुमारी गुमानकुँवरी का विवाह गंगरार के राव बख्तावरसिंहजी चौहान से हुआ।

२—राजकुमारी गुलाबकुँवरी का पाणिग्रहण सीसोदिया रावत पंचायणजी से किया गया।

जैसा कि ऊपर लिखा है राव जयमलजी के १६ राजकुमार थे। राव जयमलजी के स्वर्गारोहण के उपरान्त इनके पुत्रों को मेड़ता के स्वाधीन राज्य के नष्ट हो जाने से मेवाड़, मारवाड़ एवं दिल्ली प्रभृति राज्यों में निवास करना पड़ा। इनमें मेड़ता परित्याग के अनन्तर राव जयमलजी की मुख्य राजधानी बदनोर के राज्यासन पर इनके पंचम पुत्र मुकुन्ददासजी विराजमान हुए,

जिनके वंश में बदनोर का ठिकाना विद्यमान है। इनका विस्तृत वृत्तान्त आगे लिखा जायगा। शेष पुत्रों का वृत्तान्त अनुसन्धान करने से जहां तक ज्ञात हो सका है, वह संक्षेप से नीचे निर्दिष्ट किया जाता है।

१—सुलतानसिंहजी—इनसे सुलतानोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। राव जयमलजी के चित्तोड़ में काम आजाने के पश्चात् ये बादशाह अकबर की सेवा में चले गये। बादशाह ने इनको कुछ प्रान्तों सहित मेड़ते का राज्य और ढाई सौ का मन्सब प्रदान किया, परन्तु मेड़ते का राज्य थोड़े ही समय इनके अधिकार में रहा। बांकीदानजी की ख्यात से यह भी ज्ञात होता है कि बादशाह अकबर ने मेड़ते के छै[1] भाग करके उन्हें अपने मंसबदारों को बांट दिया था। वि० सं० १६३१ (ई० स० १५७४) में बादशाह ने इनको बीकानेर के राजा रायसिंहजी के साथ जोधपुराधीश राव चंद्रसेनजी के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा और इसके दूसरे वर्ष बादशाह अकबर ने जो गुजरात पर चढ़ाई की उसमें बहादुरी से लड़कर ये काम आये। इनके वंशजों के अधिकार में मारवाड़ में जावला, गुलर, भखरी आदि ठिकाने हैं। सुरताणजी के पुत्र गोपालदासजी के द्वितीय पुत्र हरनाथजी थे। हरनाथजी जावला के अधिकारी हुए। हरनाथजी के कनिष्ठ पुत्र जगरूपजी[2] मेवाड़ में आये।

(१) सं० १६४८ में बादशाह अकबर ने सुलतानसिंहजी जयमलोत को दुनाडो और मलारणां परगने के अतिरिक्त मेड़ते का कुछ भाग और द्वारकादासजी, गोविन्ददासजी अखैमलोत, राठोड़ दासोपातावत और जैतमालोत, राठोड़ मुकन्ददासजी माधोसिंहोत और राव अमरसिंहजी को शेष भाग प्रदान कर दिया।

(२) बड़ी रूपाहेली ठा० चतुरसिंहजी के ऐतिहासिक संग्रह से विदित होता है कि एक समय बादशाह के दरबार में किसी कारण से रुष्ट होकर जगरूपजी ने म्यान से कटारी [illegible] निकाल ली और कई प्रतिष्ठित शस्त्रधारियों को धराशायी करते हुए स्वयं समर [illegible] मनसबदारों के अनेक वार होने के कारण काम आये।

जिनको जागीर में फाकरका (दौलतगढ़) ग्राम प्रदान किया गया। इस समय इनके वंशजों की जागीर में मेवाड़ में देवरया बहादरपुरा फुलांची व लालसिंहजी का खेड़ा (देवगढ़) नामक ग्राम हैं। इसके अतिरिक्त इनके वंशजों की मेवाड़ के सवाईगढ़ आदि ग्रामों में भौम भी है।

२-शार्दूलजी—इनसे शार्दूलोत शाखा चली। जब यह मिर्ज़ा शरफुद्दीन के कुटुम्ब को लाने नागौर गये तब वहां के आमिल से झगड़ा हो जाने के कारण वीरतापूर्वक लड़कर युद्ध में ४० राजपूत सहित काम आये[1]। इनकी संतान के अधिकार में मारवाड़ में कई छोटे छोटे ठिकाने हैं। मेवाड़ में धोली इत्यादि और मालवा प्रांत में गुगरी का ठिकाना है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ में गुरजणी आदि में इनके वंशजों की भौम भी है।

३-केशवदासजी—इनसे केशवदासोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। इन्होंने भी बादशाह की सेवा में रहकर बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनपर बादशाह की बड़ी कृपा थी। बादशाह ने इनको तीनसौ का मंसब प्रदान किया था। केशवदासजी के वंशजों के अधिकार में मारवाड़ में बड़ू, बूड़सू तथा चोरावड़ आदि ठिकाने हैं। कुछ इतिहास-लेखकों ने इनको केशवदास मारू लिख दिया है, जो भूल है। केशवदास मारू इनसे भिन्न थे। यह राव मालदेवजी के कनिष्ठ पुत्र रायमलजी के पुत्र थे।

४-माधोदासजी—इनसे माधोदासोत शाखा का प्रारम्भ हुआ। इनके वंशजों के अधिकार में जोधपुर राज्यान्तर्गत बड़े बड़े प्रतिष्ठित ठिकाने हैं, जिनमें मुख्य रीयां, आलणियावास,

(१) पं० गौरीशङ्करजी ओझा से प्राप्त कविराजा बांकीदानजी के हस्तलिखित ऐतिहासिक संग्रह से; पृ० १३४-१३५।

मारकर इन्होंने वीर गति प्राप्त की। वहां इनकी यादगार में एक चबूतरा बनवा दिया गया था, जो आजतक विद्यमान है। इनकी संतान के मारवाड़ में भोणी इत्यादि ठिकाने हैं।

१३–द्वारकादासजी—मारवाड़ और मेवाड़ में इनके वंशजों के कई छोटे छोटे ठिकाने हैं। मालवा प्रांत में इनके अधिकार में पांचोरी का ठिकाना है। इसके सिवाय अजमेर में पीछोल्या तथा मेवाड़ में रायला के पास लोट्यास गांव में इनकी संतति की भौम भी है और रायसिंहपुरा, गुढा व ऊंचा में भी भौम है।

१४–अनोपसिंहजी—इनका विशेष वृत्तान्त विदित नहीं हो सका। चतुरकुल चरित्र मे इनके वंशजों के अधिकार में मारवाड़ चाणोद का ठिकाना होना लिखा है, परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि चाणोद के ठिकाने के मूल पुरुष अनूपसिंहजी इनसे भिन्न थे। यह घाणेराव के अधिकारी गोपीनाथजी के कनिष्ठ पुत्र थे।

१५–नारायणदासजी—इनके वंशजों की जागीर में मारवाड़ में लांबिया, श्यामगढ़ (सांभर के पास) और चोसला आदि ग्राम हैं।

१६–अचलदासजी—इनका भी विशेष वृत्तान्त उपलब्ध न हो सका।

मेड़ताकुलभूषण वीरवर ठाकुर मुकुन्ददासजी, बदनोर

सातवां प्रकरण

ठाकुर मुकुन्ददासजी

ठाकुर मुकुन्ददासजी राव जयमलजी के पांचवें पुत्र थे। ये खंडेला के निर्वाण राजा किशनदासजी के दौहित्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५९४ ज्येष्ठ सुदि १० (ई० स० १५३७ ता० १९ मई) को हुआ था। राव मालदेवजी और राव जयमलजी के परस्पर निरन्तर युद्ध होते रहने से तथा मेड़ता-राज्य के अनेक बार राव जयमलजी के अधिकार से निकल जाने के कारण मुकुन्ददासजी की बाल्यावस्था बड़े कष्ट में व्यतीत हुई थी। मुकुन्ददासजी को अपने पिता की ओर से अनेक ग्रामों सहित पालड़ी का जिला प्रदान हुआ था[1], परन्तु मेड़ता-राज्य पर इनके पिता (राव जयमलजी) का अधिकार न रहने से इन्होंने भी वहां रहना उचित नहीं समझा और उपर्युक्त पितृदत्त ग्रामों को छोड़कर ये अपने नाना के यहां खंडेले चले गये। इसके बाद ये अधिकतर वहीं रहने लगे।

ठाकुर मुकुन्ददासजी का जन्म

वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में राव जयमलजी के चित्तोड़ दुर्ग पर काम आ जाने के अनन्तर उनके पुत्र सुरताणजी और केशवदासजी प्रभृति तो मेड़ता राज्य की पुनः प्राप्ति के निमित्त बादशाह अकबर के पास चले गये, जहां अनेक युद्धों में बड़ी वीरता प्रदर्शित करके उन्होंने बड़ी जागीरें तथा शाही दरबार में मंसब वग़ैरह की बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की, परन्तु मेड़ता परित्याग के अनन्तर राव जयमलजी के मुख्य स्थान बदनोर के अधिकार को प्राप्त करने का श्रेय ठा० मुकुन्ददासजी को ही मिला। राव जयमलजी के शेष पुत्रों ने मारवाड़, मालवा प्रभृति राज्यों

ठाकुर मुकुन्ददासजी को बदनोर की जागीर मिलना

(१) पालड़ी का क़स्बा 'कांटों की पालड़ी' के नाम से मशहूर है। इस नाम के पड़ने के सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुति प्रसिद्ध है कि मुकुन्ददासजी खोजीजी नामक एक महात्मा को बड़ी श्रद्धापूर्वक पुष्कर क्षेत्र से पालड़ी ले गये थे। इसी महात्मा के यहां के झाड़ियों को वरदान देने से पालड़ी गांव में बड़े बड़े कांटे उत्पन्न होने लगे। 'पारीक' मासिक पत्र से उद्धृत।

में अनेक बड़ी बड़ी जागीरें प्राप्त कीं। अपने पिता राव जयमलजी के परलोक वास का समाचार पाकर ठाकुर मुकुन्ददासजी अपने ननिहाल खंडेला से, जहां उस समय ये निवास करते थे, बदनोर १६२८ में पधारे। इनके मेवाड़ में आने के समाचार सुनकर महाराणा उदयसिंहजी को असीम हर्ष हुआ। उन्होंने बड़े सम्मान के साथ ठाकुर मुकुन्ददासजी को अपने पास बुलाया। इस निमंत्रण को पाकर ठाकुर मुकुन्ददासजी महाराणा के दर्शनार्थ बागोर के मुकाम उपस्थित हुए, जहां उस समय सेना सहित महाराणा विराज रहे थे। महाराणा उदयसिंहजी ने अपने कर-कमल से इनकी न्योछावर[1] की और बड़ी आदर प्रतिष्ठा के साथ बदनोर का प्रांत इनको प्रदान किया, जो पहले इनके पिता के अधिकार में था[2]। बदनोर की राजगद्दी पर राव जयमलजी के उत्तराधिकारी ठाकुर मुकुन्ददासजी हुए और संपूर्ण राज्य-प्रतिष्ठा के अधिकारी भी यही थे। यद्यपि राव जयमलजी के ज्येष्ठ पुत्र सुरताणजी थे तथापि बदनोर की गद्दी पर, जहां परित्याग करने के अनन्तर राव जयमलजी ने अपनी मुख्य राजधानी नियत की थी, उनके विराजने से मेड़तिया राठोड़ों में हमारा वंश ही पाटवी माना जाता है[3]। राजपूताने में प्रचलित रीति भी यही है कि पाटवी स्थान का अधिकारी ही पाटवी माना जाता है।

महाराणा प्रतापसिंहजी का मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर विराजना

वि० सं० १६२८ फाल्गुन शुक्ला १५ (ई० स० १५७२ ता० २८ फरवरी) को महाराणा उदयसिंहजी का गोगुंदे में स्वर्गवास हो गया। अपनी राणी भटियाणीजी पर विशेष प्रेम होने के कारण उन्हीं के पुत्र जगमालजी को महाराणा उदयसिंहजी ने अपना उत्तराधिकारी नियत कर दिया था, परन्तु सरदारों ने ज्येष्ठ राजकुमार प्रतापसिंहजी को सब प्रकार से योग्य तथा राज्य के न्यायोचित

(१) चतुरकुल चरित्र; भाग १, पृष्ठ ८३।

(२) बदनोर का प्रांत 'बधनोरा' नाम से प्रसिद्ध है। यह परगना बहुत विस्तृत एवं पूर्व में फूलिया तक फैला हुआ था।

(३) महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास; जिल्द १, पृ० ४८१।

अधिकारी समझकर उन्हीं को राज्य-सिंहासन पर विराजमान किया। वीर-शिरोमणि महाराणा प्रतापसिंहजी की ठाकुर मुकुन्ददासजी पर विशेष प्रीति थी, क्योंकि एक तो उम्र में ये उनके बराबर थे, दूसरे शौर्यादि नृपोचित विविध गुणों से भी ये विशेष रूप से अलंकृत थे। महाराणा साहब की कृपा से प्रोत्साहित होकर इन्होंने अपने तीन भाई हरिदासजी, रामदासजी और श्यामदासजी को भी मारवाड़ से मेवाड़ में बुला लिया। महाराणा प्रतापसिंहजी ने रामदासजी को अनेक ग्रामों सहित गंगरार और श्यामदासजी को गोगावास का पट्टा प्रदान किया तथा हरिदासजी को देलाणे की जागीर दी।

वीराग्रणी महाराणा प्रतापसिंहजी स्वतन्त्रता के अनन्य उपासक थे। उन्होंने पवित्र सीसोदिया वंश की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने का संकल्प कर लिया। मेवाड़ का बहुतसा समभूमि प्रदेश मुगलों के अधिकार में चला गया था और अवशिष्ट भाग को भी अपने अधीन करने के लिये अकबर कटिबद्ध हो रहा था, परन्तु अतुल साहसी महाराणा प्रतापसिंहजी के हृदय में इतनी विपत्तियों का सामना करते हुए भी कुछ व्याकुलता नहीं हुई। यह इन्हीं के दृढ़ अध्यवसाय, असीम वीरता और प्रगाढ़ देशभक्ति का परिणाम था कि अकबर जैसा शत्रु भी, जो संसार के तत्कालीन बादशाहों में सब से अधिक बलशाली था, मेवाड़ की स्वतंत्रता का अपहरण न कर सका।

वि० सं० १६२६ (ई० स० १५७२) में बादशाह अकबर ने गुजरात फ़तह करके आंबेर के राजकुमार मानसिंहजी के आधिपत्य में डूंगरपुर और उदयपुर की तरफ़ फ़ौज भेजी। मानसिंहजी की सहायता के लिए इस फ़ौज के साथ शाह कुलीखां, मुरादखां, मुहम्मद कुलीखां, सैयद अब्दुल्ला, राजा भारमल के छोटे पुत्र जगन्नाथजी कछवाहा, राजा गोपालदासजी, बहादुरखां, लश्करखां, जलालखां और बूंदी के राव भोजदेवजी हाड़ा आदि अन्य बड़े बड़े सरदार भी भेजे गये। बादशाह की आज्ञा थी की जो नरेश शाही आधिपत्य को स्वीकार कर ले उसको किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय, परन्तु जो साम्राज्य के प्रभुत्व को अंगीकार न करे उसको पर्याप्त दंड दिया जावे। डूंगरपुर के रावल आसकरणजी युद्ध में पराजित होकर

आंबेर के कुंवर मानसिंहजी का उदयपुर आना

पहाड़ों में चले गये और बादशाही फ़ौज ने डूंगरपुर पर कब्ज़ा कर लिया। इसके पश्चात् राजकुमार मानसिंहजी थोड़ी सी सेना लेकर वि० सं० १६३० के आषाढ़ (ई० स० १५७३ जून) में उदयपुर आये। महाराणा प्रतापसिंहजी ने उनका स्वागत किया और उदयसागर तालाब की पाल पर उनके लिए गोठ (स्वागत भोज) का प्रबंध किया, परन्तु इस भोज में महाराणा ने स्वयं सम्मिलित न होकर आतिथ्य सत्कार के लिए अपने ज्येष्ठ राजकुमार अमरसिंहजी को नियत किया। कुंवर अमरसिंहजी ने भोजन की सब सामग्री लगवाकर मानसिंहजी से भोजन करने के लिए कहा, परंतु महाराणा साहब के बिना मानसिंहजी ने भोजन करना स्वीकार नहीं किया। महाराणा प्रतापसिंहजी ने मानसिंहजी से कहलाया कि मैं इस समय अजीर्ण के कारण भोजन में सम्मिलित नहीं हो सकता, परन्तु मानसिंहजी को इससे संतोष नहीं हुआ। महाराणा प्रतापसिंहजी का असली अभिप्राय समझकर मानसिंहजी अत्यंत अप्रसन्न होकर तुरन्त भोजन छोड़कर चले गये[१]। डोडिया सामन्त भीमसिंहजी के द्वारा कुंवर मानसिंहजी ने महाराणा प्रतापसिंहजी से कहलाया कि मैं आपके अजीर्ण रोग की औषधि भली प्रकार जानता हूं। अभी तक तो आपके साथ हमने भलाई का ही व्यवहार किया है, परन्तु अब भविष्य में आपको सावधान रहना चाहिये। इन शब्दों को सुनकर कुलाभिमानी वीर-केसरी महाराणा प्रतापसिंहजी का भी क्रोध प्रज्वलित हो उठा और उन्होंने अवहेलनापूर्वक कुंवर मानसिंहजी को यह उत्तर भेजा कि यदि अपनी शक्ति से आओगे तो मालपुरे तक पेशवाई की जायगी और बादशाह के बल के भरोसे आवोगे तो जहां मौका

---

(१) राणा सों भोजन समय गही मान यह बान।
हम क्यों जेंवें आपहूं जेंवत हो किन आन ॥ १ ॥
कुंवर आप आरोगिये राणा भाख्यो हेरि।
मोहि गरानी सी कछु अबै जेइहूं फेरि ॥ २ ॥
कही गरानी की कुंवर गई गरानी जोहि।
अटक नहीं कर देऊंगो तुरत चूरण तोहि ॥ ३ ॥
दियो ठेल कांसों कुंवर उठे सहित निज साथ।
कुसू थांभ भीर हो कसो वीर इनायत हाथ ॥ ४ ॥

होगा वहीं खातिर करेंगे। भीमसिंहजी ने महाराणा के उपर्युक्त शब्द ज्यों के त्यों मानसिंहजी से कह दिये। इनके और भीमसिंहजी के आपस में कुछ ज़ुबानी तकरार हुई, जिसपर भीमसिंहजी ने भी क्रुद्ध होकर मानसिंहजी से कहा कि जिस हाथी पर तुम चढ़कर आवोगे उसी पर भाला मारूं तो मेरा भी नाम भीमसिंह है, अपने मालिक को साथ लेकर जल्दी आना। ऐसे कठोर शब्दों से मानसिंहजी भी बहुत क्रुद्ध होकर उसी वक्त वहां से रवाना हो गये। इसके पश्चात् वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में आमेर के राजा भगवानदासजी और राजा टोडरमलजी भी बादशाह की आज्ञानुसार महाराणा प्रतापसिंहजी को समझाने आये। इन्होंने अनेक प्रकार से महाराणा को समझाया, परन्तु स्वाधीनता के पुजारी महाराणा प्रतापसिंहजी कब इनकी प्रलोभनात्मक बातों के वशीभूत हो सकते थे। उन्होंने किसी भी हालत में बादशाह के अधीन होना स्वीकार नहीं किया।

इस प्रकार जब बादशाह अकबर अनेक बार उद्योग करने पर भी महाराणा प्रतापसिंहजी को समझा बुझाकर अपने अधीन नहीं कर सका तब

बादशाह का कुंवर मानसिंहजी को मेवाड़ पर ससैन्य भेजना

उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वि० सं० १६३३ चैत्र शुक्ला ५ (ई० स० १५७६ ता० ५ मार्च) को आमेर के कुंवर मानसिंहजी के आधिपत्य में एक बड़ी भारी सेना महाराणा को पराजित करने के लिए भेजी। मानसिंहजी के साथ गाज़ीखां बदख्शी, ख्वाजा गयासुद्दीन अली, आसिफ़खां, सय्यद अहमदखां, सय्यद हाशिमखां, जगन्नाथजी कछवाहा, सय्यद राजू, मेहतरखां, माधवसिंहजी कछवाहा, राय लूणकर्णजी तथा मुजाहिद बेग आदि बड़े बड़े सामन्तों को बादशाह ने इस चढ़ाई में शरीक होने का हुक्म दिया। कुंवर मानसिंहजी ने मांडल में पहुंचकर अपनी फ़ौज का वहीं डेरा डाला और मेवाड़ के हमवार प्रदेशों के बहुत से स्थानों में शाही थाने स्थापित कर दिये। इस अवसर पर ठाकुर मुकुन्ददासजी सपरिवार पश्चिमी पहाड़ों की तरफ महाराणा साहब के ही साथ थे इसलिए बदनोर की रक्षार्थ अल्प सेना रहने से इस स्थान पर भी शाही अधिकार हो गया। बदनोर के इस तरह ठाकुर मुकुन्ददासजी के अधिकार से निकल

२२

जाने के कारण महाराणा साहब ने इनको निर्वाह के निमित्त विजयपुर का परगना प्रदान किया। बादशाही सेना का आगमन सुनकर महाराणा ने भी सब सरदारों से परामर्श कर लड़ाई का सब सामान दुरुस्त कर लिया।

कुंवर मानसिंहजी ने शाही लश्कर के साथ खमणोर के नज़दीक हल्दी-घाटी के पास पहुंचकर बनास नदी के किनारे डेरा किया। महाराणा प्रताप-सिंहजी भी अपनी सेना को लेकर शाही सेना का मुक़ाबला करने के लिए गोगून्दे से रवाना हुए। राजपूतों ने नज़दीक पहुंचकर बादशाह की सेना पर बड़े साहस और उत्साह से हमला किया।

हल्दी घाटी की लड़ाई

कुंवर मानसिंहजी ने इस युद्ध में शाही सेना की इस प्रकार व्यवस्था की कि दक्षिण पार्श्व में तो बारहा के सैयद, वाम पार्श्व में गाजीख़ां बदख़्शी और राय लूणकर्णजी, हरावल (अग्रभाग) में कछवाहा, जगन्नाथजी, ख़्वाजा गयासुद्दीन अली और आसिफ़ख़ां तथा चंदावल (पृष्ठ भाग) में कछवाहा माधोसिंहजी और मेहतरख़ां आदि बहुत से अमीरों को नियत किया। वीरपुंगव महाराणा प्रताप-सिंहजी ने भी बड़ी सावधानी और दूरदर्शिता से अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया। महाराणा ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया, जिनमें एक भाग का सेनाध्यक्ष तो हकीम सूर नामक पठान शाहज़ादा नियत किया गया और दूसरे भाग के सेनापतित्व को स्वयं महाराणा प्रतापसिंहजी ने ही ग्रहण किया। महाराणा ने अपनी सेना के दक्षिण पार्श्व में ग्वालियर के राजा राम-शाहजी तंवर को उनके पुत्रों शालिवाहन, भवानीसिंह और प्रतापसिंह सहित तथा भामाशाह को उसके भाई ताराचन्द के साथ नियत किया और वामपार्श्व में सादड़ी के राजराणा बींदाजी झाला (उपनाम मानसिंहजी) और सोनिगरा मानसिंहजी को मुक़र्रर किया। हरावल में वीरशिरोमणि राव जयमलजी के सुभट पुत्र रामदासजी, डोड़िया भीमसिंहजी, सलूंबर रावत कृष्णदासजी और रावत सांगाजी रक्खे गये। चंदावल में भीलों के सरदार मेरपुर का राणा पूंजा, पड़िहार कल्यान आदि नियत किये गये। ठाकुर मुकुन्ददासजी इस युद्ध में महाराणा के प्रधान अंग-रक्षक थे। वि० सं० १६३३ ज्येष्ठ शुक्ला २ को दोनों पक्षों में भयंकर संग्राम हुआ। राजपूतों ने ऐसी प्रबल वीरता से युद्ध किया

कि शाही सेना अत्यन्त व्याकुल होकर अस्त व्यस्त होने लगी । मेड़तिया वीर रामदासजी ने ऐसी प्रचंडता से आक्रमण किया कि शाही हरावल तो मैदान से भाग ही निकली। मुसलमानों की शेष सेना भी भागने को ही थी कि शाही चंदावल के नायक मेहतरखां ने ढोल बजाया और हल्ला मचाकर फ़ौज को हिम्मत बंधाई। बदायूनी ने अपनी बनाई हुई पुस्तक मुन्तखबुत्तवारीख में लिखा है कि शाही फ़ौज की हरावल जो पहले ही हमले में भाग निकली थी, बनास नदी को पार कर ५-६ कोस तक भागती ही रही, परन्तु मेहतरखां के ढोल बजाने तथा हल्ला मचाने से भागती हुई सेना को कुछ आशा बंधी। मेहतरखां ने क्या कहा इस सम्बन्ध में बदायूनी ने तो कुछ नहीं लिखा, परन्तु अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि सेना में यह अफवाह फैल गई कि बादशाह स्वयं आ पहुंचा है। इससे शाही सैनिकों की फिर से हिम्मत बढ़ गई और उन्होंने असह्यवेग से क्षत्रियों पर आक्रमण किया। राजपूतों ने भी बड़ी बहादुरी से मुक़ाबला किया। महाराणा की हरावल के सेनानायक राठोड़ वीर रामदासजी और ग्वालियर के राजा रामशाहजी तंवर इन दोनों ने ऐसी वीरता दिखलाई, जिसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। शाही सेनापति कुंवर मानसिंहजी के राजपूत, जो हरावल के वाम पार्श्व में थे, भाग निकले, जिससे आसफखां को भी भागना पड़ा। यदि शाही सेना के दक्षिण पार्श्व के सैयद लोग बहादुरी के साथ युद्ध में टिके न रहते तो अवश्य ही जैसा कि बदायूनी ने लिखा है शाही सेना की बदनामी के साथ हार होती।

वीर-केसरी महाराणा प्रतापसिंहजी नीले घोड़े चेटक पर सवार थे। उन्होंने अपने घोड़े को चक्कर दिलाकर धर्मयुद्ध के नियमानुसार शत्रु को सावधान करने के लिए कुंवर मानसिंहजी से कहा कि जहांतक होसके वीरता दिखाओ, प्रतापसिंह आ पहुंचा है। यह कहकर महाराणा प्रतापसिंहजी ने भाले का वार किया, परन्तु मानसिंहजी के हौदे में झुक जाने से महाराणा का बर्छा उनके कवच में ही लगा और वे बच गये[1]। इस समय महाराणा के

(१) बाही राण प्रतापसी बख़्तर में बर्छी।
जाणे झींगर जाल में मुंह काढे मच्छी॥

घोड़े के अगले दोनों पैर मानसिंहजी के हाथी की सूंड के सिर पर लगे, जिससे उसकी सूंड में पकड़ी हुई तलवार से चेटक का पिछला एक पैर ज़ख्मी हो गया। महाराणा ने मानसिंहजी को मारा गया समझकर घोड़े को पीछा मोड़ लिया। हल्दीघाटी से अनुमान दो मील दूर बलीचा गांव के निकट एक नाले के पास चेटक का देहान्त हुआ जहां उसका चबूतरा बना हुआ है।

इस रोमहर्षण संग्राम में वीरशिरोमणि राव जयमलजी के पुत्र और ठाकुर मुकुन्ददासजी के कनिष्ठ भ्राता वीरवर रामदासजी बहुत ही बहादुरी, दृढ़ता और निर्भयता के साथ शत्रुओं से लड़कर काम आये। इस लड़ाई में वीरता से युद्धकर काम आनेवाले प्रसिद्ध योद्धाओं का अबुलफ़ज़ल, अल बदायूनी आदि इतिहास-लेखकों ने जो वर्णन किया है उसमें सबसे प्रथम बड़े गौरव के साथ राठोड़ रामदासजी का वृत्तान्त निर्दिष्ट किया है। राठोड़ रामदासजी के अतिरिक्त मेवाड़ के अन्य भी बहुत से सरदार बीदाजी झाला, राजा रामशाहजी तंवर अपने तीनों पुत्रों सहित, रावत नेतसीजी सारंगदेवोत, डोडिया भीमसिंहजी तथा राठोड़ शंकरदासजी[1] आदि बड़ी वीरता प्रदर्शितकर युद्ध में मारे गये। इस भयंकर युद्ध में बदायूनी ने दोनों पक्षों के ५०० सैनिकों का मारा जाना लिखा है, जिसमें १२० मुसलमान और ३८० हिन्दू थे। इन हिन्दुओं में शाही सेना के भी हिन्दुओं की संख्या अन्तर्गत है। हल्दीघाटी की लड़ाई में मुसलमानों की अपेक्षा कछवाहों की ही संख्या अधिक थी इससे इस युद्ध में शाही सेना की ही अधिक हानि होने का अनुमान होता है। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रतापसिंहजी की ही निस्सन्देह विजय होती, परन्तु शाही सेना के चंदावल में बादशाह के आने का शोर मचने से महाराणा ने दूरदर्शिता के कारण उस समय सुरक्षित पर्वतों में ही अपनी सेना सहित लौट जाना उचित समझा। इससे वास्तविक विजय का इस युद्ध में कोई निर्णय न हो सका। महाराणा के लौट जाने के बाद भी शाही सेना इतनी भयभीत हो रही थी कि उसको महाराणा का पीछा करने का साहस नहीं होसका। मुगल

(१) ये अकबर के विरुद्ध चित्तोड़ की लड़ाई में मारेजानेवाले राठोड़ नेतसीजी के पुत्र और केलवावालों के पूर्वज थे।

वीरश्रेष्ठ राठोड़ रामदासजी जयमलोत

सैनिकों को प्रति क्षण यही डर लग रहा था कि कहीं महाराणा हमपर दुबारा न टूट पड़ें। दूसरे दिन गोगून्दे पहुंचने पर भी बादशाही सैनिकों का भय दूर नहीं हुआ। रात्रि के समय कहीं राणा आक्रमण न कर दे इस भय के कारण गोगूंदे के चारों तरफ़ खाई खुदवाकर घोड़ा न फांद सके इतनी ऊंची दीवार बनवाई। महाराणा ने लड़ाई के बाद अपने ज़ख्मी सैनिकों को कोल्यारी गांव में ले जाकर उनका इलाज करवाया। फिर अपने राजपूतों और भीलों की सहायता से महाराणा ने कुल पहाड़ी नाके और रास्ते रोक लिये, जिससे गोगूंदे में पड़ी हुई शाही सेना के लिए रसद आदि सामान के पहुंचने का रास्ता भी रुक गया और इन विपत्तियों के कारण उसकी बुरी दशा होने लगी। कुंवर मानसिंहजी को गोगूंदे में रहते हुए चार मास बीत गये, परन्तु उनसे कुछ न बन पड़ा, जिससे बादशाह ने नाराज़ होकर उनको और आसफ़ख़ां को वापस चले आने की आज्ञा लिख भेजी और उनकी गलतियों के कारण मानसिंहजी तथा आसफ़ख़ां की बादशाह ने ड्योढ़ी बन्द कर दी।

वीरवर ठाकुर मुकुन्ददासजी ने भी इस युद्ध में बड़ी वीरता प्रदर्शित की। हल्दीघाटी के इस युद्ध के बाद महाराणा प्रतापसिंहजी ने शीघ्र ही थाने-

बादशाह अकबर का स्वयं मेवाड़ में आना

वालों को निकालकर मेवाड़ का अधिकांश प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इससे क्रुद्ध होकर इसी संवत् के कार्तिक मास में बादशाह अकबर स्वयं अजमेर से गोगून्दे आया। गोगून्दे से बादशाह अकबर ने कुतुबुद्दीनख़ां, राजा भगवानदासजी और कुंवर मानसिंहजी को महाराणा का पीछा करने के लिए पहाड़ों में भेजा, परन्तु वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंहजी कब इनसे भयभीत होनेवाले थे। जहां जहां वे गये वहां महाराणा ने उनपर हमला किया। अन्तमें पराजित होकर उनको लाचार बादशाह के पास

महाराणा को वश में न कर सके। महाराणा ने जगह जगह इनपर आक्रमण किये, जिससे तंग आकर इनको भी पराजित होकर वापस लौटना पड़ा।

इन सब पराजयों के कारण मुग़लों का उत्साह इतना क्षीण हो गया कि महाराणा की सेना से मुक़ाबला करने का उनको साहस ही नहीं होता था।

शाहबाजख़ां का मेवाड़ पर भेजा जाना

यह देखकर बादशाह को अत्यन्त क्रोध हुआ और महाराणा को किसी प्रकार पराजित करने के लिए शाहबाजख़ां के आधिपत्य में एक बड़ी भारी सेना वि० सं० १६३५ द्वितीय आश्विन शुक्ला १५ (ई० स० १५७८ ता० १५ अक्टोबर) को रवाना की। इस सेना में आमेर के राजा भगवानदासजी, कुंवर मानसिंहजी, सैयद कासिम, सैयद हाशिम, ग़ाज़ीख़ां बदख़्शी, मिर्ज़ाख़ां ख़ानख़ाना इत्यादि अन्य भी बहुत से बड़े बड़े शाही उमराव सम्मिलित थे। शाहबाज़ख़ां कुम्भलगढ़ विजय करने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु राजा भगवानदासजी और मानसिंहजी को इस सन्देह से, कि राजपूत होने के कारण वे कहीं महाराणा के विरुद्ध लड़ने में सुस्ती न करें, शाहबाज़ख़ां ने वापस बादशाह के पास भेज दिया। लाचार भगवानदासजी और मानसिंहजी को शाही सेनापति की आज्ञा के कारण लौटना पड़ा। पाठकगण इस स्थल पर विचार करें कि आंबेर के कछवाहों का कितना नैतिक पतन हो गया था कि स्वयं तो एक विजातीय साम्राज्य के अधीन हुए सो हुए, परंतु अन्य स्वजातीय नरेशों की भी स्वतंत्रता सहन नहीं कर सके, जैसा कि इतिहास साक्षी दे रहा है। राजस्थान के वीर राजवंशों को मुग़ल साम्राज्य के अधीन कराने में कछवाहों ने ही मुख्य भाग लिया था अपनी जातीयता का कुछ भी विचार न रखकर अनेक अपमान सहते हुए भी एकमात्र स्वतंत्र स्वजातीय नरेन्द्र आर्यकुलकमलदिवाकर महाराणा प्रतापसिंहजी को विधर्मियों के अधीन करने के लिए उन्होंने अपनी शक्ति के अनुरूप किसी उद्योग को अवशिष्ट नहीं छोड़ा, परन्तु वीरकुलकेसरी महाराणा का प्रण सर्वशक्तिमान् भगवान् जगदीश ने सदैव अटल रक्खा। महाराणा प्रतापसिंहजी ने कभी किसी सम्राट् के आगे सिर नहीं झुकाया[1], उन्होंने तो सदा भगवान् एकलिंगजी को ही अपना सम्राट् समझा,

(१) श्रीशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंहजी के यशोगान में अनेक कवित्त और

जिससे इनकी अमरकीर्ति सदैव संसार में स्थिर रहेगी। भगवानदासजी और मानसिंहजी को अपने पास से रुख़सत कर शाहबाज़ख़ां आगे बढ़ा। महाराणा इस समय कुंभलगढ़ के दुर्ग में निवास करते थे। जब शाहबाजखां ने कुंभलगढ़ को भी जाकर घेर लिया तब महाराणा यह सोचकर कि यहां रसद आना कठिन हो जायगा, इससे थोड़ी सी सेना वहां छोड़कर शेष सेना सहित राणपुर में चले गये। मुग़लों ने क़िले पर बड़ी प्रचंडता से आक्रमण किया। दुर्गस्थ वीर राजपूतों ने बड़ी वीरता से इनका मुक़ाबला किया। क़िले में अकस्मात् एक तोप के फटजाने से लड़ाई का सामान जलगया, जिसपर राजपूतों ने क़िले के द्वार खोल दिये और दिल खोलकर वे बड़ी बहादुरी से लड़ने लगे। राव भाणजी सोनगरा और बहुत से नामी राजपूत क़िले के दरवाज़ों और मंदिरों पर लड़ते हुए काम आये। शाहबाजख़ां ने क़िले पर अधिकार कर गाज़ीख़ां बदख़्शी को वहां नियत कर दिया और स्वयं महाराणा का पीछा करने के लिए बांसवाड़े की तरफ़ रवाना हुआ, परंतु अंतमें थककर उसको भी महाराणा का पीछा छोड़ना पड़ा। शाहबाजखां निराश होकर बादशाह के पास लौट गया। शाहबाज़ख़ां के मेवाड़ से लौट जाने पर महाराणा छप्पन प्रदेश की तरफ़ चले गये और वहीं अपना निवासस्थान नियत किया तथा चामुंडा माता का एक मंदिर भी बनवाया, जो आज तक मौजूद है।

इन्हीं दिनों भामाशाह ने मालवे पर चढ़ाई कर वहां से पचीस लाख रुपये और बीस हज़ार अशर्फ़ियां दंड में लेकर चूलिया ग्राम में महाराणा को

दोहे उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कदे न नामै कंध अकबर ढिग आवै न औ।
सूरजवंश सम्बन्ध पाले राण प्रतापसी॥
सुखहित स्याल समाज हिन्दू अकबर बस हुआ।
रोसीलो मृगराज पजै न राण प्रतापसी॥
अकबरिये इकबार दागल की सारी दुनी।
अण दागल असवार एकज राण प्रतापसी॥
माई एहा पूत जण जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधके जाण सिराणै सांप॥

भामाशाह की मालवे पर चढ़ाई

भेंट कीं। तदन्तर महाराणा ने दिवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया और शाही सेना को परास्तकर उस स्थान पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस प्रकार मुग़लों से निरन्तर युद्ध करके मांडल और चित्तोड़ के अतिरिक्त उदयपुर सहित ३२ दुर्ग महाराणा प्रतापसिंहजी ने अपने अधिकार में कर

महाराणा प्रतापसिंहजी का स्वर्गवास

लिये। इन सभी युद्धों में ठाकुर मुकुन्ददासजी ने अपनी असीम वीरता का पूर्ण परिचय दिया तथा बदनोर पर भी पुनः अपना अधिकार कर लिया। वि० सं० १६५३ माघ शुक्ला ११ (ई० स० १५६७ ता० १६ जनवरी) को भारत के आदर्श वीर हिन्दुआसूर्य वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंहजी अपने अमर यश को छोड़ सम्पूर्ण प्रजा को शोकसागर में निमग्नकर स्वर्ग को सिधारे। महाराणा प्रतापसिंहजी के पश्चात् इनके ज्येष्ठ महाराजकुमार अमरसिंहजी मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए।

महाराणा प्रतापसिंहजी के स्वर्गवास का समाचार जब बादशाह अकबर के पास पहुंचा तब वह उदास होकर स्तब्ध सा हो गया। उसकी यह दशा देखकर दरबारी लोगों को आश्चर्य हुआ कि महाराणा की मृत्यु से तो बादशाह को प्रसन्न होना चाहिये था, किन्तु यह इसके विपरीत खिन्न चित्तसा क्यों हो गया। उस समय चारण दुरसा आढाने, जो वहां उपस्थित था, नीचे लिखा हुआ छप्पय कहा—

> अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी।
> गो आडा गवडाय, जिको वहतो धुर वामी॥
> नवरोजे नह गयो न गो आतसां न वल्ली।
> न गो झरोखा हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली॥
> गहलोत राण जीती गयो दसण मूंद रसणा डसी।
> नीसास मूक भरिया नयण तो मृत शाह प्रतापसी॥

यह सुनकर बादशाह ने इस कवि को इनाम दिया और कहा कि इसही ने मेरा भाव ठीक समझा है।

हिन्दूपति महाराणा प्रतापसिंहजी ने अनेकानेक विपत्तियां सहते हुए

भी कभी बादशाह की मातहती स्वीकार न की और सदैव शाही सेनाओं का मुक़ाबला कर उनको पराजित ही करते रहे। इनकी वीरता, कुलाभिमान और स्वाधीनता की रक्षा करने के अटल व्रत की हिन्दू, मुसलमान और यूरोपियन सभी जाति के इतिहास-लेखकों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। जैसे महाराणा साहसी और अतुल शौर्य-संपन्न थे वैसे ही उनके उमराव सरदार भी रणोत्साह से उन्मत्त हो रहे थे और अपने स्वामी की रक्षार्थ युद्ध में प्राणोत्सर्ग करना ही अपना पवित्र क्षात्रधर्म मानते थे।

महाराणा प्रतापसिंहजी का व्यक्तित्व

इसके आठ वर्ष पश्चात् वि० सं० १६६२ कार्तिक शुक्ला १४ (ई० स० १६०५ ता० १५ अक्टूबर) को मुग़ल बादशाह अकबर का भी देहान्त हो गया। इसके बाद शाहज़ादा सलीम जहांगीर के नाम से दिल्ली का बादशाह हुआ।

बादशाह अकबर की मृत्यु

वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष (ई० स० १६०५ नवम्बर) में बादशाह जहांगीर ने शाहज़ादे परवेज़ के आधिपत्य में मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये बहुत ही बड़ी सेना भेजी। प्रायः सब ही बड़े बड़े शाही मंसबदार अपनी अपनी जमीयतों के साथ इस सेना में उपस्थित थे। परवेज़ के आने की खबर पाकर महाराणा अमरसिंहजी ने अपने देश को इस अभिप्राय से उजाड़ दिया कि शाही सेना को खाने पीने का कोई सामान मिल न सके। जब शाही सेना अजमेर से मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये रवाना हुई तब मेवाड़ के वीर सैनिकों ने देसूरी, बदनोर, मांडल, मांडलगढ़ और चित्तोड़ की तलहटी की शाही सेनाओं पर हमला करना शुरू किया। शाहज़ादे परवेज़ ने बादशाह की आज्ञानुसार महाराणा अमरसिंहजी के पितृव्य सगरजी को, जो मेवाड़ से अप्रसन्न होकर बादशाह की सेवा में चले गये थे, चित्तोड़ के राज्यासन पर बैठा दिया, परन्तु मेवाड़ राज्य का उत्तम आबादी का हिस्सा बदनोर, हुरड़ा, मांडल, जहाजपुर, मांडलगढ़ वगैरह तो बादशाही अधिकार में ही रक्खे गये और केवल चित्तोड़ से पूर्व का कुछ इलाक़ा सगरजी को प्रदान किया गया। वि० सं० १६६२

बादशाह जहांगीर का शाहज़ादे परवेज़ को मेवाड़ पर भेजना

(ई० स० १६०६) में शाहज़ादे परवेज़ ने ऊंटाला और देवारी के मध्य भाग पर हमला किया। महाराणा अमरसिंहजी ने भी अपने राजपूतों को एकत्रित कर शाही फ़ौज पर हमला करने का विचार किया। महाराणा का आदेश पाकर राजपूतों ने बड़े उत्साह और पराक्रम से मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध किया। इस लड़ाई में दोनों तरफ़ के शतशः वीर काम आये। बादशाही फ़ौज की बड़ी हानि हुई और शाहज़ादा परवेज़ भागकर मांडल की तरफ़ चला गया। इस युद्ध में ठाकुर मुकुन्ददासजी ने बड़ी वीरता से लड़कर अनेक शत्रुओं का संहार किया।

वि० सं० १६६५ चैत्र शुक्लपक्ष (ई० स० १६०८ मार्च) में बादशाह जहांगीर ने महाबतखां नामक प्रसिद्ध सेनापति को बड़ी प्रबल सेना देकर मेवाड़ विजय करने भेजा। महाबतखां ने बड़े अभिमान के साथ शाहज़ादे परवेज़ की पराजय का पूरा बदला लेने की घोषणा करके मेवाड़ में प्रवेश किया और जगह जगह शाही थाने स्थापित करता हुआ ऊंटाले पहुंचा। वहां पर महाराणा अमरसिंहजी ने एकाएक अपने सरदारों सहित पहाड़ों में से निकलकर शाही फ़ौज पर हमला कर दिया। राजपूतों के प्रचंड आक्रमण के आगे मुसलमानों के पैर उखड़ गये, महाबतखां पराजित होकर युद्ध-क्षेत्र से भाग निकला और जितने थाने महाबतखां ने मेवाड़ में नियत किये थे सब के सब उठा दिये गये। इस युद्ध में शाही सेना के हज़ारों सैनिक मारे गये। वीरवर ठाकुर मुकुन्ददासजी और बेगूं के रावत मेघसिंहजी आदि मेवाड़ के उमराव सरदारों ने इस युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखलाया। महाबतखां के पराजित हो जाने से बादशाह जहांगीर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसको वापस बुला लिया।

बादशाह का महाबतखां को मेवाड़ पर भेजना

महाबतखां के स्थान में अब्दुल्लाखां नामक अन्य सेनापति को विशाल सेना सहित मेवाड़ विजय करने के लिये भेजा। वि० सं० १६६६ के चैत्र मास (ई० स० १६०९ मार्च) में राणपुर में अब्दुल्लाखां के साथ मेवाड़ की सेना का घोर संग्राम हुआ। इस संग्राम में मेवाड के वीर राजपूतों ने रोमांचकारी पराक्रम दिखलाया। इस अवसर पर क्षत्रियों की क्रोधाग्नि और भी अधिक इसलिए भड़क उठी थी

बादशाह का अब्दुल्लाखां को मेवाड़ पर भेजना

कि दुष्ट मुगल सैनिकों ने हिन्दुओं को मार्मिक कष्ट पहुंचाने के लिये मंदिरों और मूर्तियों का तोड़ना शुरू कर दिया था। विधर्मी शत्रुओं के इस नीच कृत्य को धर्मप्राण वीर क्षत्रिय कब सहन कर सकते थे। वीरशिरोमणि ठाकुर मुकुन्ददासजी ने बड़ी निर्भयता से मुगलों पर आक्रमण किया। अपरिमित पराक्रम से युद्ध हुआ। वीराग्रणी ठाकुर मुकुन्ददासजी ने अपने महावीर पिता राव जयमलजी के तुल्य शौर्य प्रदर्शित कर शत्रुओं का घमसान संहार करते हुए वीरगति पाई[1]। इनके अनुयायी सैनिकों ने मुगल दल को तितर बितर कर डाला और बहुतसे यवन सैनिक मारे गये तथा अन्य प्राण लेकर भाग निकले। ठाकुर मुकुन्ददासजी के हाथ से महमदअली नाम का एक प्रसिद्ध मुगल सेनापति भी मारा गया, जिसके सम्बन्ध में निम्नांकित प्राचीन कविता भी उपलब्ध हुई है—

श्याम काम सुधार मुकुन्द भुजां बल महपति।
महमदअली न मार पछे आप रण पोढिया॥

ठाकुर मुकुन्ददासजी के कनिष्ठ भ्राता हरिदासजी भी बड़ी वीरता से लड़कर इसी युद्ध में काम आये[2]। इनके अन्य कनिष्ठ भ्राता श्यामदासजी भूनाल के संग्राम में काम आये जहां उनके स्मारक के रूप में एक चबूतरा अभी तक बना हुआ है। इस प्रकार वीरशिरोमणि राव जयमलजी के चारों ही पुत्र, जो मेवाड़ में आये, बड़ी वीरता से इस राज्य की रक्षार्थ बादशाही सेनाओं से युद्ध कर काम आये। इनके इस निरुपम रोमांचकारी आत्मोत्सर्ग से राव जयमलजी के पुत्रों का भी मेवाड़-राज्य के निमित्त कितना प्रगाढ़ अनुराग था, इसका पाठक भलीप्रकार अनुमान कर सकते हैं। मेड़तियाकुलदीपक इन प्रकांड वीरों की अनुपम स्वामिभक्ति की कहां तक प्रशंसा की जावे कि जिन्होंने

---

(१) महामहोपाध्याय रायबहादुर पंडित गौरीशङ्करजी ओझा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ७६७।

(२) हरिदासजी के अतिरिक्त इस युद्ध में देवगढ़ के रावत दूदाजी, पूर्णमलजी शक्तावत, सादड़ी के राजराणा देदाजी झाला, चौहान केशवदासजी आदि मेवाड़ के अन्य भी कई नामी सामन्त काम आये। वही; पृष्ठ ७६७।

मेवाड़ में पदार्पण करते ही अपने स्वामी के निमित्त असीम पराक्रम प्रदर्शित करते हुए सर्वों ने अपने प्राणों का समर-भूमि में उत्सर्ग कर दिया।

ठाकुर मुकुन्ददासजी अत्यन्त दानशील और गुणग्राहक नरेश थे। इन्होंने लगभग ३८ वर्ष पर्यन्त राज्य किया। इनके समय में बदनोर राज्य की वार्षिक आय लगभग पांच लाख रुपयों के थी। मृत्यु समय इनकी अवस्था ७२ वर्ष के लगभग थी। इनकी वीरता का इसीसे अनुमान हो सकता है कि इतनी अधिक आयु हो जाने पर भी इन्होंने ऐसे पराक्रम से शत्रुओं का मुक़ाबला किया और अनेक शत्रुओं का संहार करके स्वयं काम आये।

ठाकुर मुकुन्ददासजी का व्यक्तित्व

इनका क़द लम्बा, वक्षस्थल चौड़ा, चेहरा रोबदार, आंखें बड़ी और रंग गेहुआं था। ये प्राचीन रीति के अनुसार केवल मूंछ ही रखते थे।

हमारे भाट, राणीमंगों की ख्यातों के अनुसार ठाकुर मुकुन्ददासजी के निम्नलिखित चार राणियां थीं—

ठाकुर मुकुन्ददासजी की संतति

१—राणावत श्यामकुंवरी चित्तोड़ के महाराणा रत्नसिंहजी की पुत्री।

२—शीशोदनी राजकुंवरी देवलियाप्रतापगढ़ की।

३—कछवाही मोतीकुंवरी।

४—गौड़ रसकुंवरी राजगढ़ के राजा सूरजमलजी की पुत्री।

ठाकुर मुकुन्ददासजी के निम्नलिखित तीन राजकुमार हुए—

१—भगवानदासजी—इनका बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया।

२—मनमनदासजी—बदनोर की राजगद्दी पर ठाकुर मुकुन्ददासजी के उत्तराधिकारी हुए। इनका विस्तृत वर्णन अगले प्रकरण में लिखा जायगा।

३—रुन्दासनदासजी—इनका भी देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया।

आठवां प्रकरण

ठाकुर मनमनदासजी

ठाकुर मनमनदासजी, जो माधोमनदासजी के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, का जन्म विक्रम संवत् १६१४ (ई० स० १५५७) में हुआ था। ये चित्तोड़ के महाराणा रत्नसिंहजी के दौहित्र थे। ठाकुर मनमनदासजी अत्यन्त प्रबल योद्धा थे। इन्होंने कुँवर पदवी में ही महाराणा प्रतापसिंहजी और अमरसिंहजी की सेवा में रहकर मुसलमानों के विरुद्ध बड़ी वीरता से युद्ध किये थे। गद्दी पर बैठने के पश्चात् भी इनके जीवन का अधिकांश भाग युद्ध में ही व्यतीत हुआ।

ठाकुर मनमनदासजी का जन्म

हमारी ख्यातों से ऐसा विदित होता है कि विक्रम संवत् १६४८ (ई० स० १५९१) में दलेलखां नामक एक मुग़ल सेनाध्यक्ष ने मेवाड़ पर आक्रमण किया, जिसका मुक़ाबला करने के लिए महाराणा प्रतापसिंहजी ने कुँवरपदे में ही मनमनदासजी को सेनापति बनाकर विशाल सेना सहित भेजा। राजनगर के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। मनमनदासजी ने युद्ध में अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। मुग़ल सेनापति दलेलखां युद्ध में हाथी पर बैठा हुआ था। मनमनदासजी 'चन्द्रभाण' नामक घोड़े पर सवार थे। इन्होंने ऐसे वेग से दलेलखां पर बर्छी का वार किया कि वह उसके आघात से हाथी पर से नीचे गिर पड़ा और तत्काल उसका प्राणान्त हो गया। सेनापति के मरते ही मुग़ल सेना तुरन्त युद्ध-क्षेत्र से भाग निकली। इस प्रकार विजय प्राप्त करके जब मनमनदासजी महाराणा प्रतापसिंहजी की सेवा में उपस्थित हुए तब उन्होंने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर इनको आज्ञा प्रदान की कि तुम्हारा नक्कारा सदैव हरावल में बजा करेगा। इस अवसर पर मनमनदासजी के कनिष्ट भँवर दलपतिसिंहजी और परशुरामजी भी महाराणा की सेवा में उपस्थित थे। मनमनदासजी के मुग़ल सेनापति दलेलखां को समरक्षेत्र में धराशायी करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित एक प्राचीन दोहा भी उपलब्ध हुआ है—

ठाकुर मनमनदासजी की दलेलखां से लड़ाई

असं चढ़ियो कमधज अनड़ मुगल कठेडा माय।
मार दियो मुकनेशरा बलवत बरछी घाय॥

दलेलखां की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसके भाई दिलदारखां ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। इसका मुक़ाबला करने के लिए महाराणा ने मनमनदासजी के कुमार दलपतिसिंहजी और परशुरामजी को नियत किया। इन दोनों कुमारों ने प्रबल सेना लेकर तुरन्त युद्धार्थ प्रयाण किया। कनेछण के समीप दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। दलपतिसिंहजी और परशुरामजी ने बड़ी निर्भयता से शत्रु-सेना पर आक्रमण किया और अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करते हुए ये दोनों ही वीर भ्राता समरभूमि में काम आये।

देलवाड़े के राजराणा मानसिंहजी भाला का विवाह महाराणा उदयसिंहजी की राजकुमारी से हुआ था, जिनके शत्रुशालजी हुए। मानसिंहजी के अन्य कुमार कल्याणजी और आसकरणजी थे। हल्दीघाटी के युद्ध में मानसिंहजी के काम आ जाने पर देलवाड़े के अधिकारी शत्रुशालजी हुए। महाराणा प्रतापसिंहजी की बहिन के पुत्र शत्रुशालजी बड़े अभिमानी और तेज़मिज़ाज थे। महाराणा साहब के साथ भी पारस्परिक वार्तालाप में वे बड़ी उग्रता प्रदर्शित करते थे। किसी कारणवश देलवाड़े में दस्तक होने पर महाराणा प्रतापसिंहजी से रूबरू में ही शत्रुशालजी की तक़रार हो गई। वे अप्रसन्न होकर बाहर आने लगे तो महाराणा साहब ने उनके अंगरखे का दामन पकड़कर रोकना चाहा, परन्तु उन्होंने पेशकब्ज़ से दामन फाड़ डाला। इसपर महाराणा प्रतापसिंहजी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर फ़रमाया—"शत्रुशाल के नामवाले को मैं कभी अपने राज्य में न रक्खूंगा"। इसके प्रत्युत्तर में शत्रुशालजी ने निवेदन किया—"मैं भी यावज्जीवन कभी सीसोदियों की नौकरी नहीं करूंगा"। यह कहकर शत्रुशालजी मेवाड़ छोड़कर जोधपुर के महाराज सूरसिंहजी के पास चले गये। महाराणा प्रतापसिंहजी मनमनदासजी से इनकी असाधारण वीरता और प्रगाढ़ स्वामिभक्ति के कारण अत्यन्त संतुष्ट थे इसलिए शत्रुशालजी के चले जाने के पश्चात् देलवाड़े का ठिकाना कुंवरपदे की अवस्था में ही उन्होंने मनमनदासजी को प्रदान कर

कुंवर मनमनदासजी को देलवाड़े की जागीर मिलना

दिया[1] और शपथ-पूर्वक मनमनदासजी को फ़रमाया कि आपके जीवन में देलवाड़े का अधिकार आपके पास से कभी नहीं हटाया जायगा।

ठाकुर मनमनदासजी का बदनोर की गद्दी पर बैठना

वि० सं० १६६४ और १६६५ में दो बड़े युद्ध जो मुग़ल सेनाओं से हुए थे उनमें भी इन्होंने बड़ी वीरता प्रकट की थी और शत्रुओं का संहार करते हुए स्वयं भी अत्यन्त घायल हुए थे। इस प्रकार कुंवर-पदे की अवस्था में ही मनमनदासजी ने अपनी अलौकिक वीरता और प्रगाढ़ स्वामिभक्ति के कारण बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करके वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०९) में इनके पूज्य पिता ठाकुर मुकुन्ददासजी के राणपुर के युद्ध[2] में काम आ जाने पर बदनोर की राजगद्दी पर ये विराजमान हुए।

सगरजी का चित्तोड़ छोड़ना

मुसलमानों के अनेकबार मेवाड़ की सेना से पराजित होजाने पर भी बादशाह जहांगीर का उत्साह भग्न न हुआ। बादशाह ने जैसे भी संभव होसके मेवाड़ को विजय करना ही निश्चय कर लिया। मुग़ल सेना ने पुनः मेवाड़ पर बड़े जोश के साथ हमला किया। महाराणा अमरसिंहजी की शक्ति को क्षीण करने के लिए बादशाह ने इनके पितृव्य सगरजी को चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा दिया था, परंतु सगरजी ने सात वर्ष तक ही चित्तोड़ का शासन किया। तदनन्तर अनेकबार अपमानित किये जाने के कारण स्वयं ही महाराणा अमरसिंहजी को चित्तोड़ का शासन सौंपकर सगरजी कंधार के पहाड़ी ज़िलों में चले गये। इस प्रकार सहज ही में मेवाड़ का समस्त प्रदेश महाराणा के हस्तगत हो गया। इसी सिलसिले में बदनोर भी, जो मुसलमानों के आक्रमणों के कारण ठाकुर मनमनदासजी के अधिकार से पृथक् हो गया था, पुनः इनको प्राप्त हो गया।

बादशाह ने चतुर्थबार शाहज़ादे परवेज़ के आधिपत्य में मेवाड़ को विजय करने के निमित्त एक विशाल सेना फिर भेजी। खमणोर के पास बड़ा

(१) महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २; पृष्ठ ८०३।

(२) इस युद्ध में ठा० मनमनदासजी ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की और एक बार केलवा ग्राम के पास अब्दुल्लाख़ां की सेना पर ऐसा छापा मारा जिससे उसको पराजित होकर भागना ही पड़ा। गौ० ही० ओझा; राजपूताने का इतिहास; पृष्ठ ४८९।

बादशाह जहांगीर का शाहज़ादे परवेज़ को पुनः मेवाड़ पर भेजना

भयङ्कर युद्ध हुआ। राजपूतों ने प्राणपण से युद्ध किया मुग़लों की विशाल सेना इस थोड़ीसी क्षत्रिय सेना के सम्मुख ठहर न सकी और रणभूमि से पीठ दिखाकर भाग पड़ी। यह युद्ध वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में हुआ था। इस युद्ध में भी ठाकुर मनमनदासजी वीरता से यवनों का दमन करते हुए घायल हुए थे। तदनन्तर जहांगीर ने अपने पौत्र के अधिकार में एक सेना मेवाड़ पर फिर भेजी, परन्तु इस वार भी शाही सेना ही परास्त हुई। इस अवसर पर भी ठाकुर मनमनदासजी ने बड़ा साहस प्रदर्शित किया था।

अनेक वार परास्त होने पर भी मुग़लों ने मेवाड़ का पीछा नहीं छोड़ा। शाहज़ादे खुर्रम की अधीनता में पुनः एक बड़ी भारी मुग़लों की सेना ने वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में मेवाड़ पर चढ़ाई की। शाही सेना से लगातार युद्ध होने के कारण मेवाड़ के अधिकांश वीर मारे जाचुके थे। अतः इस आक्रमण को सुनकर महाराणा साहब और उनके समस्त सामंतों को मातृभूमि की रक्षार्थ बड़ी चिंता उपस्थित हुई, तथापि इन रणरसिक राजपूत वीरों के हृदय साहस-शून्य न हुए। सबने प्रतिज्ञा की कि प्राण रहते प्यारी जन्मभूमि मेवाड़ को कभी विधर्मियों के अधिकार में न जाने देंगे। क्षत्रियों ने अनुपम वीरता से युद्ध किया, परंतु लगातार ५० वर्षों से मुग़ल साम्राज्य के असंख्य सैनिकों का मुक़ाबला करते करते मेवाड़ के बहुतसे सरदार काम आ चुके थे और संपूर्ण प्रदेश निर्जन एवं निर्धन हो गया था। अतः विवश होकर राजकुमार कर्णसिंहजी की सम्मति से महाराणा अमरसिंहजी ने बादशाह से मित्रता की संधि करली।

महाराणा अमरसिंहजी का बादशाह जहांगीर से संधि करना

संधि के नियमानुसार जब महाराजकुमार कर्णसिंहजी बादशाह जहांगीर से मिलने अजमेर पधारे तब ठाकुर मनमनदासजी भी उनके साथ थे। इग्लैंड के बादशाह प्रथम जेम्स का प्रसिद्ध राजदूत सर टॉमस रो उस समय अजमेर में शाही दरबार में उपस्थित था। उसने बड़े ही कौतुक और गौरव के साथ राजकुमार कर्णसिंहजी का अवलोकन किया। बादशाह ने राजकुमार के साथ बहुत ही प्रतिष्ठा का व्यवहार किया

कुंवर कर्णसिंहजी का बादशाही दरबार में उपस्थित होना

और अनेक बार बहुमूल्य खिलअतें तथा बेशक़ीमती घोड़े, रत्नजटित आभूषण और बड़े बड़े क़ीमती शस्त्र आदि विविध वस्तुएं इनको उपहार में प्रदान कीं। इसी प्रकार ठाकुर मनमनदासजी अपने कतिपय पुत्रों सहित महाराणा अमरसिंहजी के पौत्र भंवर जगत्सिंहजी के साथ भी शाही दरबार में उपस्थित हुए थे। इस अवसर पर आगरे जाते हुए वि० सं० १६७५ माघ कृष्णा ११ (ई० स० १६१६ ता० १ जनवरी) को इन्होंने सोरूंजी (शूकरतीर्थ) में गंगास्नान किया था, जैसा कि गंगा-गुरु के पास के एक प्रामाणिक दानपत्र से विदित होता है। इसी प्रकार दूसरे वर्ष शीत-ऋतु में जब भंवर जगत्सिंहजी पुनः बादशाह के दरबार में पधारे उस समय भी ठाकुर मनमनदासजी और सादड़ी राजराणा हरिदासजी झाला आदि कतिपय सरदार भंवरजी की सेवा में उपस्थित थे।

महाराणा अमरसिंहजी का स्वर्गवास

वि० सं० १६७६ माघ शुक्ला २ (ई० स० १६२० ता० २६ जनवरी) को महाराणा अमरसिंहजी का देहान्त हो गया और मेवाड़ के राज्यासन पर महाराणा कर्णसिंहजी विराजमान हुए। इस वृत्तान्त को सुनकर बादशाह जहांगीर ने राजकुमार जगत्सिंहजी और उनके साथ के प्रतिष्ठित सरदारों को शोक निवारणार्थ शिरोपाव प्रदान किये और उनको उदयपुर जाने की आज्ञा दी, जिससे कुंवर जगत्सिंहजी के साथ ठाकुर मनमनदासजी आदि सरदार भी वापस उदयपुर चले आये।

ठाकुर मनमनदासजी की मृत्यु

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है देलवाड़े के ठिकाने के अधिकार से वंचित हो जाने पर शत्रुशालजी तो जोधपुर चले गये और उनके कनिष्ठ भ्राता कल्याणजी और आसकरणजी ने कुछ समय तक चीरवा नामक, ब्राह्मणों के, शासन ग्राम में रहकर अपने कष्ट के समय को व्यतीत किया। महाराणा प्रतापसिंहजी के स्वर्गारोहण के पश्चात् महाराणा अमरसिंहजी के समय में बादशाही सेनाओं से मेवाड़ में जो अनेक युद्ध हुए, उनमें कल्याणजी झाला ने बड़ी वीरता से युद्ध करके महाराणा अमरसिंहजी को पूर्णरूप से संतुष्ट किया। अतः प्रसन्न होकर महाराणा ने कल्याणजी को किसी जागीर के दिये जाने का हुक्म दिया। उस अवसर पर कल्याणजी झाला ने महाराणा की सेवा में निवेदन किया कि हमारा पैतृक ठिकाना देलवाड़ा ही

वापस बख्शा दिया जावे। इसपर महाराणा अमरसिंहजी ने फ़रमाया कि ठाकुर मनमनदासजी के जीवनकाल में देलवाड़ा उन्हीं के अधिकार में रहेगा। उनके देहान्त होने के पश्चात् आपको थीदांजीराज (महाराणा प्रतापसिंहजी) की आज्ञानुसार अवश्य प्रदान कर दिया जावेगा। इस बात को सुनकर झालों को ठाकुर मनमनदासजी के जीवन से बड़ी ही ईर्षा उत्पन्न हो गई और वे उनको किसी प्रकार मारने का उपाय सोचने लगे, जिससे कि देलवाड़े का अधिकार शीघ्र ही उनको प्राप्त हो जावे। पन्ना नामक एक झाला राजपूत ने स्त्री का वेश धारण करके इनपर चूक किया अर्थात् असावधानी की अवस्था में अचानक शस्त्रप्रहार किया। हमारे राणीमंगों की ख्यात से ऐसा भी विदित होता है कि कल्याणजी झाला का पुरोहित संन्यासी का वेष धारण करके देलवाड़े गया और वहां लोगों के ऊपर प्रभाव डालकर एक सिद्ध महात्मा प्रसिद्ध हो गया। धींगा गणगोर के दिन[1] हाथी पर विराजकर ठाकुर मनमनदासजी सवारी में पधारे तब उस पुरोहित ने भांग में ज़हर मिलाकर इनको पिला दिया। पुरोहित तो भाग गया और ठाकुर मनमनदासजी की महलों में पधारते ही मृत्यु हो गई। इन दोनों वृत्तान्तों में से कौनसा सत्य है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता तथापि ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि इनका झालों ने ही किसी कपट-कृत्य-द्वारा प्राणापहरण किया था। यह दुर्घटना वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में हुई। ठाकुर मनमनदासजी के साथ इनकी तृतीय पत्नी झालीजी सती हुईं। महाराणा कर्णसिंहजी ने इनकी शोचनीय मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर बहुत शोक किया और झालों को इस दुष्कर्म के निमित्त बड़ा उपालम्भ दिया। ठाकुर मनमनदासजी की १२ स्तम्भों की छत्री इनके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी ठाकुर सांवलदासजी ने वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) में देलवाड़े में निर्माण कराई, जो आजतक मौजूद है। यह छत्री देलवाड़े के श्मशान में कुटिला नदी के वाम तट पर बनी हुई है।

ठाकुर मनमनदासजी बड़े प्रसिद्ध वीर और स्वामिभक्त सरदार थे। इन

(१) देलवाड़े में धींगा गणगोर का दरीख़ाना महलों के समीप ही सांडयाव के तट पर है। इसके समीप ही एक सुंदर कुंड बना हुआ है।

के समय में मेवाड़ राज्य को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा था,

ठाकुर मनमनदासजी का व्यक्तित्व

परन्तु मनमनदासजी सदैव अपने स्वामी की सेवा में प्रगाढ़ भक्ति के साथ तत्पर रहे और अनेक आपत्तियों के होने पर भी पूर्ण धैर्य के साथ मेवाड़-राज्य के गौरव की रक्षार्थ लगातार युद्ध करते रहे। ठाकुर मनमनदासजी पर, इनकी अलौकिक वीरता के कारण महाराणा प्रतापसिंहजी की विशेष कृपा थी इसी से कुंवरपदे की अवस्था में ही देलवाड़ा जैसा बड़ा ठिकाना इनको पृथक्तः श्रीमान् मेदपाटेश्वरों ने प्रदान किया था। इनके पिता ठाकुर मुकुन्ददासजी के देहान्त के बाद बदनोर की राजगद्दी पर विराजने पर भी देलवाड़ा इन्हीं के अधिकार में रहा। इस प्रकार बदनोर और देलवाड़ा जैसे दो बड़े एवं महत्व-पूर्ण ठिकानों के एक कालिक अधिकार प्राप्त करने का विशेष गौरव और सौभाग्य ठाकुर मनमनदासजी को ही प्राप्त हुआ। ठाकुर मनमनदासजी ने लगभग ६३ वर्ष की आयु पाई और अनुमान ३० वर्ष तक राज्य किया, जिनमें १९ वर्ष अपने पिता की जीविताबस्था में देलवाड़े पर और ११ वर्ष अपने पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् देलवाड़े और बदनोर इन दोनों स्थानों पर।

ठाकुर मनमनदासजी बड़े हृष्टपुष्ट शरीर के थे। इनका चेहरा बड़ा रोबवाला और वक्षःस्थल बहुत चौड़ा था।

हमारे भाट और राणीमंगों की ख्यात के अनुसार ठाकुर मनमनदासजी के निम्नलिखित ७ राणियां थीं—

१—नागोर के खंगारोत जगमालजी की पुत्री (आज कल इनके वंशजों के अधिकार में जयपुर राज्यान्तर्गत डिग्गी का ठिकाना है)।

२—शेखावत राजकुंवरी-सीकर के रावराजा सामन्तसिंहजी की पुत्री।

३—झाली सुजानकुंवरी-देलवाड़ा के राजराणा मानसिंहजी की पुत्री।

४—रंगकुंवरी-देवलिया प्रतापगढ़ के दीवान जोगीदासजी की पुत्री।

५—पुंवार सुखकुंवरी-श्रीनगर के मानसिंहजी की पुत्री।

६—राजावत रूपकुंवरी-कालवाड़ के महाराज फतेसिंहजी की पुत्री

७—राजावत रूपकुंवरी-झिलाय के ठाकुर श्यामसिंहजी की पुत्री

ठाकुर मनमनदासजी के ३ राजकुमारियां हुईं।

ठाकुर मनमनदासजी की सन्तति

१—शुभकुंवरी—सलूंबर के रावत किशनदासजी के साथ इनका विवाह हुआ।

२—राजकुंवरी—रासेड़ के महाराज सीयाजी को व्याही गई।

३—सूरजकुंवरी—सनवाड़ के महाराज वीरमदेवजी के साथ विवाह हुआ।

आठ राजकुमार हुए, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार है—

१-सांवलदासजी—नागोर के रंगारोत जगमालजी के दोहित्र। ठाकुर मनमनदासजी के पश्चात् बदनोर की राजगद्दी पर विराजमान हुए। इनका विस्तृत वृत्तान्त अगले प्रकरण में लिखा जायगा।

२-देवीदासजी—इनको मेवाड़ में कनेचण जागीर में प्रदान किया गया था, परन्तु बाद में इस ग्राम के इनके वंशजों के अधिकार से निकल जाने पर वर्त्तमान में केवल लांबिया ग्राम में इनकी सन्तति की भौम है।

३-सुजानसिंहजी—इनका विशेष वृत्तान्त विदित न हो सका।

४-सूरसिंहजी—इनके वंशजों के अधिकार में मालवा प्रान्त में करवड़, गांगाखेड़ी और मोर नाम के ग्राम हैं तथा मेवाड़ में महासिंहजी का खेड़ा जागीर में है और लीडथा आदि गांवों में भौम है।

५-रत्नसिंहजी—इनके वंशजों की जागीर में मेवाड़ में सणोढ्या ग्राम है।

६-सबलसिंहजी—इनके वंशजों की जागीर में मेवाड़राज्यान्तर्गत टायला आदि ग्राम हैं और वरसणीवाले भी इन्हीं की संतान में हैं।

७-दलपतिसिंहजी—ये कनेचण की लड़ाई में बादशाही फौज से लड़कर काम आये। इनके वंश में विट्ठलदासजी हुए, जो शाहपुरा से वहां की गणगौर अपहरण कर बदनोर ले आये थे। वह अद्यावधि वहां मौजूद है। इनके वंशजों की जागीर में सलूंबर के सावा ज़िले में छरल्या नामक ग्राम है।

८–परशुरामजी—ये भी फनेचरण की लड़ाई में काम आये। ऐसा प्रसिद्ध है कि कुंवर दलपतिसिंहजी और परशुरामजी इन दोनों भ्राताओं के कनेचरण के युद्ध-क्षेत्र में शिरच्छेद हो जाने पर इनके रुण्ड भागों को लेकर इनके घोड़े दलपतिसिंहजी के ससुराल शाहपुरा के समीप तसवारिया नामक ग्राम में पहुंचे। उसी स्थान पर इनका अग्नि-संस्कार किया गया, दलपतिसिंहजी की स्त्री सोलङ्किनी अपने पति के साथ सती हुई। इन दोनों भ्राताओं की यादगार में तसवारिया में छत्रियां निर्माण कराई गई, जो अद्यावधि मौजूद हैं। परशुरामजी का अविवाहित दशा में ही परलोकवास हुआ था।

नवमां प्रकरण

ठाकुर सांवलदासजी

गद्दी पर विराजने के समय ठाकुर सांवलदासजी की अवस्था १४ वर्ष के लगभग थी। इनका जन्म वि० सं० १६६२ (ई० स० १६०४) में हुआ था। इनके गद्दीनशीन होने के पश्चात् देलवाड़े के पुराने अधिकारी शत्रुशालजी झाला के छोटे भाई कल्याणमलजी झाला ने महाराणा कर्णसिंहजी की सेवा में देलवाड़े के ठिकाने की पुनः प्राप्ति के निमित्त निवेदन किया। उनके इस प्रार्थना करने पर महाराणा ने देलवाड़े का परगना ठाकुर सांवलदासजी से लेकर वापस झालों को प्रदान कर दिया। बदनोर का परगना जो देलवाड़े की मौजूदगी में भी ठाकुर सांवलदासजी के अधिकार में था पूर्वानुसार उनके अधिकार में बना रहा।

ठाकुर सांवलदासजी का जन्म आदि

इनके समय में बहुत कालतक मेवाड़ में शान्ति रहने से इन्होंने अपने राजस्थान की अच्छी उन्नति की और मेर जाति के उपद्रव को शमन कर बदनोर में शान्ति स्थापित की। वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में ८ वर्ष शासन करने के उपरान्त महाराणा कर्णसिंहजी का परलोकवास हुआ और मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर महाराणा जगत्‌सिंहजी विराजमान हुए। इन महाराणा के समय में भी मेवाड़ में शान्ति स्थापित रही। इन्होंने उदयपुर में राजमहलों से थोड़ी दूर उत्तर में अपने नाम से जगन्नाथरायजी (जगदीशजी) का भव्य विष्णु का पंचायतन[1] मन्दिर बनवाया। पीछोल[*] तालाब में जगमन्दिर में, जहां महाराणा कर्णसिंहजी के राज्यकाल में शाहजादा खुर्रम[2] ने अपने पिता

(१) विष्णु के पञ्चायतन मन्दिर में मध्य का मुख्य विशाल मन्दिर विष्णु का होता है और मन्दिर के परिक्रमा के चारों कोनों में से ईशाण कोण में शंकर, अग्नि में गणपति, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य में देवी के छोटे छोटे मन्दिर होते हैं।

(२) यह शाहज़ादा अपने पिता के देहान्त के पश्चात् दिल्ली के तख़्त पर बादशाह

बादशाह जहांगीर से विद्रोही होने पर थोड़े दिनों निवास किया था, ज़नाना महल आदि बनवाकर उसका नाम अपने नाम पर 'जगमन्दिर' रक्खा।

ठाकुर सांवलदासजी का एक विवाह देवगढ़ के रावत ईशरदासजी की पुत्री से हुआ था, अतः एक बार उदयपुर से लौटते समय ये अपनी ससुराल देवगढ़ पधारे। वहां के रावत द्वारिकादासजी की छोटी अवस्था के कारण मेरों ने बड़ा उपद्रव उठा रक्खा था अतः वहां के प्रबन्धार्थ दस ग्यारह मास तक इन्होंने वहां निवास किया और मेरों से अनेक बार युद्ध करके उनकी शक्ति का नाश कर दिया। मेरों के सम्पूर्ण उपद्रव को शान्त कर उत्तम रीति से वहां का प्रबन्ध दुरुस्त किया[1]। ठाकुर सांवलदासजी ने देवगढ़ में अपने नाम से 'सांवल बाव' नाम की एक बावड़ी बनवाई जो आजतक मौजूद है। इनके देवगढ़ के प्रबन्ध को सुव्यवस्थित करने के सम्बन्ध में एक निम्नलिखित प्राचीन दोहा भी प्रसिद्ध है—

बसायो जद बसियों, देवगढ़ सांवलदास।
दवारारो ऊपर दियो, मार लियो मेवास[2] ॥

वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) में महाराणा जगत्सिंहजी के स्वर्गवास होने पर महाराणा राजसिंहजी मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। महाराणा राजसिंहजी बड़े वीर और पुरुषार्थी नरेश थे। इन्होंने अजमेर के समीपवर्ती प्रान्तों को, जो मेवाड़-राज्य से अलग हो गये थे, फिर अपने अधिकार में कर लिया और शाही मुल्क को लूटा। वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६१) में बड़ा भारी अकाल पड़ा तब अपनी अकाल-पीड़ित प्रजा की सहायतार्थ गोमती नदी को बांधकर 'राजसमुद्र' नामक एक बड़ा भारी तालाब बनवाया जो आज तक मौजूद है। इन्होंने इस झील के तट पर अपने नाम से 'राजनगर' नामक एक क़स्बा भी आबाद कराया। यह झील उदयपुर से

(महाराणा राजसिंहजी का राजसमुद्र तालाब बनवाना)

शाहजहां के नाम से बैठा। यह मुग़ल वंश में एक अत्यंत समृद्धिशाली और प्रतापी बादशाह हुआ है और अपनी मलका मुमताज़महल की यादगार में आगरे में प्रसिद्ध 'ताजमहल' बनवाकर अपना नाम अमर कर गया है।

(१) चतुर-कुल-चरित्र; प्रथम भाग; पृ० ८८।

(२) मेवास मेरों को कहते हैं; उस समय में इनका बल बहुत बढ़ा हुआ था।

४० मील उत्तर में है। इसकी लम्बाई ४ मील, चौड़ाई १$\frac{3}{4}$ मील और १९५ वर्ग मील भूमि का जल इसमें आता है। इसका प्रारम्भ महाराणा राजसिंहजी ने वि० सं० १७१८ माघ वदि ७ (ई० स० १६६२ ता० १ जनवरी) को किया, वि० सं० १७३२ माघ सुदि १५ (ई० स० १६७६ ता० २० जनवरी) को प्रतिष्ठा हुई और वि० सं० १७३५ के आषाढ़ (ई० स० १६७८ जून) तक इसका काम चलता रहा। इसका बांध धनुषाकृति में तीन मील लम्बा है और उसका राजनगर की तरफ़ का छोर, जो दो पहाड़ियों के बीच में है, २०० गज़ लम्बा और ७० गज़ चौड़ा तथा सुन्दर सीढ़ियों सहित सारा राजनगर की खान के संगमरमर का बना हुआ है। बांध के इस हिस्से पर संगमरमर के तीन सुन्दर मंडप बने हुए हैं, जिनके स्तम्भों एवं छत में कहीं सूर्य का रथ, कहीं ब्रह्मादि देवता, कहीं अप्सराओं का नृत्य, कहीं कबूतरों की लड़ाई आदि दृश्य उत्तम कारीगरी के साथ अंकित किये गये हैं। बांध के इस सुन्दर हिस्से को 'नौचौकी' कहते हैं। महाराणा राजसिंहजी ने मेवाड़ के इतिहास का भी संग्रह करवाया और तैलंग भट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ भट्ट ने उसके आधार पर 'राजप्रशस्ति' नाम का महाकाव्य लिखा, जो पाषाण की बड़ी बड़ी २५ शिलाओं पर खुदवाया जाकर नौचौकी के बांध पर अलग अलग ताकों में लगाया गया है। पहली शिला पर देवताओं की स्तुति और बाक़ी की २४ शिलाओं पर उक्त काव्य के २४ सर्ग खुदे हैं, जिनमें इस झील के सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन भी है। शिलाओं पर खुदी हुई अबतक कई पुस्तकें मिली हैं, परन्तु इतनी बड़ी और कोई नहीं है[1]। वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) में महाराणा राजसिंहजी ने अपनी माता जनादे (कर्मेती) के, जो मेड़तिया राठोड़ राजसिंहजी की पुत्री थी, नाम से उदयपुर से पश्चिम के बड़ी गांव के पास 'जनासागर' तालाब बनवाया[2]। इन्होंने उदयपुर में 'सर्वऋतुविलास' नामक राजमहल और अम्बामाता का मन्दिर भी बनवाया। देबारी के प्रसिद्ध घाटे का कोट और दरवाज़ा भी महाराणा राजसिंहजी ने बनवाया था।

(१) म० गौ० ओ०, उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ६०७।
(२) म० गौ० ओ०, राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड; पृ० ८८५।

इन दिनों दिल्ली का सिंहासन बादशाह औरंगज़ेब के, जो वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) में अपने पिता बादशाह शाहजहां को क़ैद तथा अपने भाइयों को क़त्ल कर बादशाह बन बैठा था, अधिकार में था। उसका हिन्दू धर्म से अत्यन्त द्वेष था और इसलाम के मज़हब का उतना ही अधिक पक्षपात था। इस धर्म द्वेष के कारण ही बादशाह ने न्यायविरुद्ध हिन्दुओं पर जज़िया नामक कर लगाया था। इसका हिन्दुपति महाराणा राजसिंहजी ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में एक उत्तेजनात्मक पत्र बादशाह को लिखकर विरोध किया[1]। बादशाह ने हिन्दुओं के समस्त मन्दिरों तथा मूर्तियों को तुड़वाने की भी आज्ञा दी थी। इसके लिये उसने स्थान स्थान पर अधिकारी नियत किये और उनके कार्य का निरीक्षण करने के लिए एक उच्च अधिकारी भी नियत किया। जब बादशाह ने वल्लभ संप्रदाय की मुख्य मूर्तियों को तोड़ने की आज्ञा दी तब द्वारकाधीशजी की मूर्त्ति मेवाड़ में लाई गई और कांकड़ोली में स्थापित की गई। गोवर्धन स्थित श्रीनाथजी की मूर्त्ति को भी उसके गोसाईं लेकर बूंदी, कोटा, पुष्कर, किशनगढ़ तथा जोधपुर गये, परन्तु किसी भी राजा ने औरंगज़ेब के भय से उस मूर्त्ति को अपने राज्य में रखना स्वीकार न किया। तब गोसाईं दामोदरजी के काका गोपीनाथजी महाराणा राजसिंहजी के पास आये। महाराणा ने उनसे कहा कि आप प्रसन्नतापूर्वक श्रीनाथजी को मेवाड़ में पधरावें मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कटने पर ही औरंगज़ेब श्रीनाथजी की मूर्त्ति को हाथ लगा सकेगा। यह आश्वासन पाकर वह मूर्त्ति मेवाड़ में लाई गई और सीहाड़ (नाथद्वारा) गांव में उसकी प्रतिष्ठा कराई गई[2]।

श्रीनाथजी की मूर्ति का मेवाड़ में आना

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी से बादशाह औरंगज़ेब बहुत डरता था, कई बार उनको मरवाने का भी प्रयत्न बादशाह ने किया परन्तु सफल मनोरथ न हुआ[3]। उनको दूर रखने के विचार से बादशाह ने उनको

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८२६।

(२) वही; पृ० ८५७।

(३) टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृ० ४२।

महाराजा जसवंतसिंहजी का जमरूद के थाने पर नियत होना और उनकी मृत्यु

जमरूद (अफ़ग़ानिस्तान) के थाने पर नियत किया। पीछे से बादशाह ने उनके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंहजी को दरबार में बुलाकर बहुत नरमी व आदर सम्मान का व्यवहार किया तथा एक बढ़िया ख़िलअत बख़्शी। महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी वह ख़िलअत धारणकर अपने स्थान पर लौट आये, परन्तु वहां पहुंचते पहुंचते ही उनकी तबियत ख़राब होने लगी और बड़े कष्ट में उनका प्राणान्त हो गया। उनके देहान्त का कारण वही ज़हरीली ख़िलअत, जो बादशाह ने उनको प्रदान की थी, मानी जाती है[1]। जब यह वृत्तान्त महाराजा जसवन्तसिंहजी को विदित हुआ तब पुत्र-शोक से उनका भी वि० सं० १७३५ (ई० स० १६७८) में अफ़ग़ानिस्तान ही में देहान्त हो गया।

महाराजा के साथ के राजपूत उनकी राणियों को लेकर मारवाड़ की तरफ़ चले और मार्ग में लाहौर पहुंचने पर उनकी एक राणी से अजीतसिंहजी का जन्म हुआ। यह ख़बर सुनकर औरंगज़ेब ने अपनी पहले की नाराज़गी के कारण मारवाड़ को ख़ालसे कर लिया और महाराजा अजीतसिंहजी को सीधा दिल्ली ले आने की आज्ञा दी। इस आज्ञा के अनुसार राठोड़ दुर्गादासजी आदि सरदार उन्हें लेकर दिल्ली आये और रूपनगर (किशनगढ़) की हवेली में ठहरे। बादशाह ने कोतवाल को आज्ञा दी कि महाराजा जसवन्तसिंहजी की राणियों और पुत्र को नूरगढ़ में ले आवे और यदि कोई सामना करे तो उसे सज़ा देवे। यह समाचार ज्ञात होने पर राठोड़ बहुत क्रुद्ध हुए और कितने ही महाराजा अजीतसिंहजी को युक्तिपूर्वक वहां से निकालकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गये। पीछे बचे हुए राजपूत राणियों को मारकर मुग़ल सेना से लड़े, कई मरे और कई घायल हुए। जब कोतवाल को महाराजा अजीतसिंहजी न मिले तब उसने उसी अवस्था के किसी और लड़के को शहर से प्राप्तकर बादशाह के सुपुर्द किया। बादशाह ने उसे अपनी बेटी ज़ेबुन्निसा बेगम को परवरिश के लिए सौंपा और उसका नाम 'मोहम्मदीराज' रक्खा।

अजीतसिंहजी का जन्म आदि

(१) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ४० ।

राठोड़ दिल्ली से महाराजा अजीतसिंहजी को साथ लेकर मारवाड़ की तरफ़ गये, परन्तु सम्पूर्ण जोधपुर राज्य पर बादशाह का अधिकार हो जाने से महाराजा के सम्बन्ध की चिन्ता रहने के कारण वीरवर राठोड़ दुर्गादासजी, सोनिंगजी आदि ने महाराणा राजसिंहजी को अर्ज़ी लिखकर महाराजा अजीतसिंहजी को अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करने पर वे महाराजा अजीतसिंहजी को महाराणा राजसिंहजी के पास ले गये और महाराणा को सब ज़ेवर सहित एक हाथी, ११ घोड़े, एक तलवार, रत्नजटित कटार, दस हज़ार दीनार (चांदी का सिक्का) नज़र किये। महाराणा ने उनको १२ गांव सहित केलवे का प्रान्त निर्वाहार्थ देकर वहां रक्खा और दुर्गादासजी आदि से कहा कि बादशाह सीसोदियों और राठोड़ों के सम्मिलित सैन्य का मुक़ाबला आसानी से नहीं कर सकता, आप निश्चिन्त रहिये[1]। जब बादशाह ने महाराजा अजीतसिंहजी के, जिन्हें वह कृत्रिम[2] समझता था, महाराणा के पास पहुंचने की ख़बर सुनी तब उसने महाराणा से कई बार फरमान लिखकर अजीतसिंहजी को मांगा, परन्तु महाराणा ने उसपर ध्यान न दिया इससे बादशाह विशेष क्रुद्ध हुआ। इस अवसर पर महाराजा अजीतसिंहजी की सहायता समस्त राठोड़ों तथा मेड़तिया सरदारों ने, जिनमें ठाकुर सांवलदासजी मुख्य थे, पूर्ण रूप से की।

बालक अजीतसिंहजी का मेवाड़ में रहना

इन सब कारणों से बादशाह औरंगज़ेब महाराणा राजसिंहजी से अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और मेवाड़ पर हमला करने का हुक्म दे दिया। वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में शाहज़ादा आज़म को बंगाल से और शाहज़ादा मोअज़्ज़म को दक्षिण से बुलाकर अत्यन्त विशाल सेना सहित, जिसके साथ

महाराणा राजसिंहजी की औरंगज़ेब के साथ की लड़ाई

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८६४-८६५।

(२) बादशाह औरंगज़ेब महाराजा अजीतसिंहजी को कृत्रिम ही समझता रहा; परन्तु जब महाराणा जयसिंहजी ने अपने छोटे भ्राता कुंवर गजसिंहजी की पुत्री का विवाह वि० सं० १७५३ (ई० स० १६९६) में उनके साथ किया, तभी मेवाड़ के राजवंश में उनका विवाह होने के कारण बादशाह का संशय दूर हुआ। (म० गौ० ओ०, राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८८८।

यूरोपियन अफसरों की अध्यक्षता में तोपखाना भी था[1], मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए बादशाह औरंगज़ेब अजमेर पहुंचा। शाही आज्ञा के अनुसार सेनापति तहव्वरखां ७०००० सैनिकों सहित उपस्थित हुआ। महाराजा अजीतसिंहजी का साथ देने के कारण मेड़तियों को भी दण्ड देने का हुक्म हुआ। पुष्कर क्षेत्र में श्री वाराहजी के मन्दिर के सामने शाही सेना के साथ मेड़तिया राठोड़ों का घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध में बहुत बड़ी संख्या में मेड़तिया वीर बड़ी वीरता से लड़कर काम आये[2]। अजमेर से सम्पूर्ण सेना साथ लेकर बादशाह मेवाड़ में प्रविष्ट हुआ। पुर, माण्डलगढ़ और चित्तौड़ पर अपने थाने नियत कर बादशाह मेवाड़ की राजधानी उदयपुर की ओर बढ़ा। ठाकुर सांवलदासजी उस अवसर पर परिवार सहित महाराणा के पास पर्वतों में चले गये थे अतः बदनोर पर भी सहज ही में बादशाह का अधिकार हो गया।

बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई का हाल सुनकर महाराणा राजसिंहजी ने अपने सब सामन्तों और मंत्रियों को सलाह के लिए एकत्रित किया। पुरोहित गरीबदासजी ने निवेदन किया कि शत्रु के पास सेना बहुत है इसलिए उससे बराबरी के तौर पर युद्ध करना नीतिसंगत नहीं। महाराणा प्रतापसिंहजी बादशाह अकबर के आक्रमण करने पर समतल प्रदेश को छोड़ पहाड़ों में चले गये और समय समय पर शत्रुओं पर छापा मारते और शाही सेना को नष्ट करते रहे, जब शाही फौज आती तब घाटियों में घेरकर उससे लड़ते इसलिए बादशाह अकबर ने सफलता न पाई और उसको विवश होकर मेवाड़ से पीछा हटना पड़ा। अब आप भी उसी नीति का अनुसरण कर पहाड़ों की सहायता से शत्रु पर विजय प्राप्त करें। घाटियों में घेरकर शत्रुओं का नाश करें और शाही मुल्क को लूटें। महाराणा राजसिंहजी को यह सलाह पसन्द आई और अपनी सेना[3], सामन्तों तथा उनके और अपने परिवार सहित पहाड़ी प्रदेश

---

(१) गौ० ही० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८२६।

(२) टॉड; राजस्थान; जिल्द २, पृ० ४३।

(३) राजपूत सेना में बीस हजार सवार और २५००० पैदल थे।

(राजविलास; विलास १०, पद्य ८१)

में चले गये। पहला मुक़ाम उदयपुर से चार कोस दक्षिण में देबीमाता के पहाड़ों में किया। दूसरा मुक़ाम भोमट के ज़िले में कठिन पहाड़ों के बीच 'नेणवारा' गांव में हुआ। इसी जगह मेवाड़ व मारवाड़ के राजपूतों के बालबच्चे और दोनों देश की प्रजा रही। इन सब की रक्षा का भार स्वयं महाराणा ने अपने पर लिया। इनके साथ बदनोर के कुमार यशवंतसिंहजी और प्रसिद्ध राठोड़ वीर दुर्गादासजी प्रभृति अनेक सरदार भी शत्रुसंहार के लिए उपस्थित थे।

महाराजकुमार जयसिंहजी तेरह हज़ार सवारों सहित चारों तरफ़ की सैन्य की सहायतार्थ अरवली पर्वत पर नियत हुए। ठाकुर सांवलदासजी, देसूरी के विक्रमादित्यजी सोलंकी तथा घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया देसूरी, घाणेराव और बदनोर तक के पहाड़ी प्रदेश की रक्षार्थ नियत किये गये। प्रधान साह दयालदासजी को मालवे की फ़ौज़ों के हमले रोकने का कार्य सौंपा गया। राजकुमार भीमसिंहजी की अध्यक्षता में पश्चिम की तरफ़ गुजरात के घाटों को रोकने के लिए सेना भेजी। ओगना, पानड़वा, जवास, सादड़ी वग़ैरह के भील और सरदारों को हुक्म हुआ कि अपने ज़िले के भीलों समेत तीरकमान लेकर घाटों और नाकों का बन्दोबस्त करो और शत्रु का ख़ज़ाना तथा रसद लूटकर हमारे पास पहुंचाओ। इस समय धनुषबाण वाले पचास हज़ार भील युद्ध में सम्मिलित होने के लिए एकत्रित हुए। महाराणा की आज्ञानुसार उन्होंने दस दस हज़ार के झुंड बनाकर घाटों का बन्दोबस्त किया[1]।

बादशाह ने मेवाड़ में प्रवेश कर चित्तोड़, पुँर, मांडल, मांडलगढ़, बैराट (बदनोर के पास), भैंसरोड़, दशपुर (मन्दसोर), नीमच, जीरन, ऊंटाला, कपासन, राजनगर और उदयपुर में थाने नियत किये[2]। मुसलमानों की फ़ौज जब देवारी के घाटे में पहुंची तब महाराजकुमार जयसिंहजी और ठाकुर सांवलदासजी ने तत्काल देवारी पहुंचकर शाही सेना पर आक्रमण किया और बड़ी वीरता से युद्ध कर शत्रुओं को बहुत क्षति पहुंचाई। हमारे वंश की ख्यातों में लिखा है कि देवारी के इस युद्ध में ठाकुर सांवलदासजी ने आश्चर्यजनक

(१) कवि मानकृत राजविलास; विलास १०, पद्य १०—१७।

(२) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८७६।

पराक्रम प्रदर्शित किया। इस संग्राम में दोनों ही पक्ष के बहुत योद्धा मारे गये और ठाकुर सांवलदासजी स्वयं भी अत्यन्त घायल हुए। इनके भाई बेटे और सरदार भी अनुमान १२५ इस लड़ाई में काम आये जिनकी छत्रियां देबारी के घाटे में बनाई गईं।

उदयपुर को खाली कर महाराणा के पहाड़ों में चले जाने का समाचार सुनकर बादशाह ने शाहज़ादा आज़म के साथ खानेजहां, यक्का ताजखां तथा रुहल्लाखां को उदयपुर भेजा। उन्होंने उदयपुर को खाली पाया अतः कुछ मन्दिरों को तोड़ते हुए वह वापस लौट गये।

बादशाह औरंगज़ेब ने हसनअलीखां को बड़े सैन्य के साथ महाराणा राजसिंहजी का पीछा करने के लिए पहाड़ों में भेजा। वह उदयपुर से पश्चिमोत्तर के पहाड़ी प्रदेश में गया था, परन्तु कई दिनों तक उसका कोई समाचार बादशाह को न मिला, जिससे शाही सेना में भय छा गया और राजपूतों के डर के मारे कोई भी उसका पता लगाने के लिए जाने को तैयार नहीं होता था[1]। हसनअलीखां सेना समेत १२ कोस तक पहाड़ों में गया। वहां पर बेगूं के रावत महासिंहजी, सलूंबर के रावत रत्नसिंहजी और पारसोली के राव केसरीसिंहजी चौहान ने भीषण आक्रमण कर उसको परास्त कर दिया। इस युद्ध के पश्चात् भयभीत होकर हसनअलीखां वापस बादशाह के पास लौटा, जो उस समय उदयसागर की पाल पर था। उसने बादशाह से निवेदन किया कि शक्तिशाली हिन्दू जगह जगह झुंड बांधे हुए अपने देश में हैं। हम पहाड़ों में जहां जाते हैं वहीं राजपूत हमें मारते हैं इसलिए यहां से चित्तोड़ चला जाना चाहिये। इस सलाह के अनुसार बादशाह ने सेना सहित चित्तोड़ को प्रस्थान कर दिया[2]।

उदयपुर से एकलिंगजी की तरफ़ जाते हुए चीरवे के घाटे के पास, जहां शाहज़ादा अकबर और सेनापति तहव्वरखां ठहरे हुए थे, कर्कट (करगेट) के झाला प्रतापसिंहजी ने छापा मारा और शाही फ़ौज के दो हाथी ले जाकर महाराणा के नज़र किये। भदेसर के वल्लों ने भी शाही फ़ौज पर हमलाकर हाथी, घोड़े

(१) म० गौ० श्रो०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खण्ड; पृ० ८८७।
(२) राजविलास; विलास १३।

तथा ऊंट छीनकर महाराणा के नज़र किये[1]। कोठारिये के रावत रुक्मांगदजी के पुत्र उदयभानजी और अमरसिंहजी चौहान ने केवल २५ सवारों के साथ उदयपुर के थाने पर आक्रमण कर बहुतसे मुसलमानों को मार डाला। कुंवर उदयभानजी की इस वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उनको १२ गांव प्रदान किये[2]।

इसी प्रकार घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया और देसूरी के विक्रमादित्यजी सोलंकी ने बड़ी बहादुरी के साथ इस्लामखां रूमी को, जो बारह हज़ार फ़ौज लिये आता था, रोका और देसूरी के घाटे में घुसने न दिया। बड़े प्रचण्ड संग्राम के अनन्तर मुसलमानों की पराजय हुई[3]।

महाराणा राजसिंहजी ने भी पहाड़ों से निकलकर यवन सेना पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। बादशाह को विवश होकर अजमेर जाना पड़ा, परन्तु इन पराजयों से हताश न होकर उसने फिर मेवाड़ पर चढ़ाई की। इस अवसर पर भी वीरवर ठाकुर सांवलदासजी ने चित्तोड़ और अजमेर के बीच में ही शाही सेना से युद्ध करके उसको परास्त कर दिया। ठाकुर सांवलदासजी के रणकौशल को देखकर स्वयं औरंगज़ेब भी भयभीत हो गया और युद्ध का भार शाहज़ादे आज़म और अकबर को सौंपकर खुद अपनी अङ्गरक्षक सेना के साथ अजमेर लौट गया[4]। वहां पहुंचकर बारह हज़ार सेना के साथ

---

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग २२; श्लोक १६–२२।

(२) राजविलास; विलास १२।

(३) राजविलास; विलास ११।

(४) कर्नल जेम्स टॉड ने वीरवर ठाकुर सांवलदासजी के युद्धकौशल की प्रशंसा करते हुए बादशाह औरंगज़ेब की दुर्दशा और रुहल्लाखां की पराजय का वर्णन बड़े प्रभावशाली शब्दों में किया है वह पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है। इसका भावार्थ हिन्दी में ऊपर मूल में आचुका है अतः यहां पर इसका भाषानुवाद नहीं दिया गया।

"Meanwhile the activity of Sawuldas (descended from the illustrious Jeimul) cut off the communication between cheetore and Ajmer, and alarmed the tyrant for his personal safety. Leaving, therefore, this perilous warfare to his sons Azim and Akber, with instructions how to act till reinforced, foiled in his vengeance and personally disgraced, he abandoned Mewar, and at the head

रूहिल्लाखां नामक प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष को ठाकुर सांवलदासजी के विरुद्ध रवाना किया। पुर, मांडल के समीप ठाकुर सांवलदासजी का इस सेना से मुक़ाबला हुआ। इस वार भी यवन-सेना का ही पराजय हुआ। मुसलमानों के अधिकांश सैनिक इस युद्ध में मारे गये और अवशिष्ट प्राण लेकर अजमेर की तरफ़ भागे। इस युद्ध का अत्यन्त ओजस्वी व प्रभावशाली वर्णन कवि मानकृत 'राजविलास' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध होता है, जिनमें से कुछ पद्य पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

दोहा—नायक सब रुहिलानि में, नाम रूहिल्लाखान।
लंबी तेग लिये रहैं, आसुर जंग अमान॥
द्वादस सहस तुरंग दल, नेजा बंध नवाब।
मदिरा मत्त सुरत्त मुँह, जिह तिह देत न ज्वाब॥

कवित्त—सुनि इह सांवलदास मरद मेरतिया महिपति।
खीजि खलनि पयकरन थान उत्थपन अरिन थिति॥
सजि सिताब हय गय तुबाह सन्नाह सपक्खर।
कवच करी भंकुरत कुंत झलमलत सूरकर॥
बजि बंब नगारनि घोष बहु घरन वरन धज नेज घनि।
चढ़ि चले फौज चहुं फेर घन उदधि जानि उलट्यो अवनि॥

छन्द त्रोटक—हय चंचल सांवलदास चढ़े। कर गैन उभारिय खग्ग कढ़े।
जुरि जोध विजोध बजे जरके। कटि टोप कटक्कि करी करके॥
धज नेज झंझोरिय जोरि घनं। टक चार ढंढोरिय दान घनं।
कमधज्ज मदा बलि जैति बगी। भय मंनि रुहिल्लनि फौज भगी॥

---

of his guards repaired to Ajmer. Thence he detached Khan Rohilla, with twelve thousand men, against Sawuldas, with supplies and equipments for his sons. The Rathore, joined by the troops of Marwar, gave him the meeting at Poorh Mandel, and defeated the Imperialists with great loss, driving them back on Ajmer."

टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृ० १०६-१०० ।

तजि थानहि तंबु तुपार तई। रथ कंचन वाहन वस्तु नई।
निशि ही निशि भग्गि हैरान भए। गतिहीन है साहि के पास गए॥
दोहा—इहि परि थान उथप्पि के रक्ख्यो जस रट्ठौर।
स्वामि धर्म पन सच्चयो सकल सुर सिरमौर[1]॥

इस समय शाही सेना केवल मेवाड़वालों से ही नहीं लड़ रही थी, किन्तु मारवाड़ (जोधपुर) को ख़ालसा कर जगह जगह शाही थाने बिठाने के कारण राठोड़ भी मौक़ा पाकर उधर शाही थानों पर हमला करते थे। मारवाड़ में भी शाही सेना को मेवाड़ से अधिक सफलता न मिली। मेवाड़ और मारवाड़ के शाही थाने एक दूसरे से बहुत दूर थे, जिनके बीच में अरवली की पर्वत-श्रेणी आगई थी जिसके सर्वोच्च भाग पर महाराणा का अधिकार था, जहां से वे अकस्मात् पूर्व या पश्चिम में मुग़ल सेना पर आक्रमण कर उसका नाश कर सकते थे। मुग़ल सेना को यह सुविधा न थी, क्योंकि चित्तोड़ से मारवाड़ तक जाने के लिए उसे बदनोर, ब्यावर और सोजत होकर लम्बा मार्ग तय करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त महाराणा को एक और सुविधा यह थी कि मेवाड़ का पर्वतीय प्रदेश उदयपुर से पश्चिम में कुम्भलगढ़ तक और राजसमुद्र से दक्षिण में सलूम्बर तक एक प्रकार से वृत्ताकार अजेय दुर्ग के समान था। उसमें प्रवेश करने के लिए केवल तीन घाटे (नालें, मार्ग) उदयपुर, राजसमुद्र और देसूरी थे[2]।

बादशाही सैन्य की लगातार पराजय होने से राजपूतों का उत्साह बहुत बढ़ गया। वे पहाड़ों से निकलकर शाही मुल्क को लूटने और मुग़लों के थानों पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट करने लगे। राजकुमार भीमसिंहजी ने प्रबल वेग से गुजरात पर हमला कर आसपास के प्रदेश को लूटा और बहुत सा द्रव्य लेकर वापस लौट आये। इन्होंने देवमन्दिरों को गिराने के बदले में अहमदनगर में एक बड़ी मस्जिद और तीन सौ छोटी मस्जिदों को तोड़ा। मंत्रीवर साह दयालदासजी ने भी मालवे प्रान्त पर आक्रमण कर कई

(१) राजविलास; विलास १६।
(२) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८७१।

स्थानों को लूटा, बहुत सी मस्जिदों को गिराया और कई ऊंट सोने से भरकर लाये[1]।

बानसी के रावत केसरीसिंहजी शक्तावत के पुत्र कुंवर गंगदासजी ने भी ५०० सवारों के साथ चित्तोड़ के पास ठहरी हुई शाही सेना पर आक्रमण किया और उसके १८ हाथी, २ घोड़े और कई ऊंट छीनकर महाराणा राजसिंहजी के नजर किये, जिसपर महाराणा ने उनको कुंवर की पदवी, सोने के ज़ेवर सहित उत्तम घोड़ा और गांव देकर सम्मानित किया[2]।

महाराजकुमार जयसिंहजी ने बहुत से उमराव सरदारों सहित चित्तोड़ ज़िले में जाकर शाहज़ादा अकबर की सेना पर रात के समय भीषण आक्रमण किया। इस युद्ध में शाही सेना का बहुत नुक़सान हुआ और शाहज़ादा परास्त होकर अजमेर की तरफ़ भागा। राजपूतों ने ५० शाही घोड़े, हाथी निशान और नक्कारा छीन लिया और तम्बू तोड़ डाले। शाहज़ादा अकबर चित्तोड़ को छोड़कर नाडोल में ठहरा तब राजकुमार भीमसिंहजी ने घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया और विक्रमादित्यजी सोलंकी (बीकाजी, रूपनगर के) सहित देसूरी के घाटे से निकलकर घाणेराव के पास शाहज़ादा अकबर और सेनापति तहव्वरखां की १२००० सेना से भीषण युद्ध कर शाही ख़ज़ाना लूट लिया। ऐसी दशा देखकर बादशाह ने महाराणा से संधि की बातचीत शुरू की[3], परन्तु दैववशात् उसी समय महाराणा राजसिंहजी का वि० सं० १७३७ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १६८० ता० २२ अक्टोबर) को देहान्त हो गया।

महाराणा राजसिंहजी का स्वर्गवास

इनके पश्चात् इनके उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंहजी ने भी राज्यासन पर आरूढ़ होकर बड़े प्रचंड वेग से युद्ध को जारी रक्खा। बादशाह ने दिलावरखां (दिलेरखां) नामक अपने प्रसिद्ध सेनापति को एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ की तरफ़ भेजा। वह

महाराणा जयसिंहजी से दिलावरख़ां की लड़ाई

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड, पृ० ८७७।

(२) वही; पृ० ८७८।

(३) वही; पृ० ८७९।

मेवाड़ के पहाड़ों की तरफ़ बढ़ा, परन्तु सलूम्बर के रावत रत्नसिंहजी चूंडावत ने अद्भुत रणकौशल के द्वारा उसको गोगूंदे की घाटी में घेर लिया जहां से वह किसी भी प्रकार न निकल सकता था। जब दिलावरखां बहुत प्रयत्न करने पर भी वहां से न निकल सका तब एक ब्राह्मण को एक हज़ार रुपये देकर रास्ता पूछा और उसकी सहायता से रातोंरात घाटी से बाहर चला गया। रावत रत्नसिंहजी चूंडावत ने निकलते हुए उसपर आक्रमण किया, परन्तु वह हानि सहता हुआ निकल ही गया। इस तरह छल से बचकर वह सीधा शाहज़ादे आज़म के पास पहुंचा और उसने कहा कि राणा ने मेरा पीछा कर बहुतसे सिपाही मार डाले और भोजन के अभाव से भी वहां चार सौ आदमी रोज़ मरते थे, इसलिए मैं वहां से निकल आया'। वीरवर ठाकुर सांवलदासजी ने भी समय समय पर शाही थानों पर आक्रमण कर उनको नष्ट किया तथा उनका सामान लूटा।

राठोड़ वीर दुर्गादासजी ने बुद्धिमत्ता से शाहज़ादा अकबर को बादशाह बना देने का लोभ देकर अपने पक्ष में कर लिया। वि० सं० १७३७ माघ वदि ७ (ई० स० १६८१ ता० १ जनवरी) को शाहज़ादा अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया और अपने अनुयायी मुसलमानों व राजपूतों की एक लाख अश्वारोही सेना एकत्रित कर अपने पिता बादशाह औरंगज़ेब पर चढ़ाई करने के लिए अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ।

शाहज़ादे अकबर की औरंगज़ेब पर चढ़ाई

बादशाह औरंगज़ेब के पास उस समय बहुत ही थोड़ी सेना थी, अतः उसको अपनी रक्षा के निमित्त बहुत ही चिन्ता उपस्थित हुई; परन्तु वह बड़ा चतुर था; उसने कपट से शाहज़ादा अकबर के नाम इस आशय का पत्र लिखा कि तुम्हारी बुद्धि की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूं; इन राजपूतों को तुम खूब धोखा देकर फंसा लाये हो; युद्ध के समय तुम्हारी व यहां की सेनाएं दोनों ही मिलकर राजपूतों का सर्वनाश कर देंगी। यह पत्र बादशाह ने दुर्गादासजी के डेरे में डलवा दिया। इस पत्र को पढ़ते ही सरल स्वभाव राजपूतों को शाहज़ादा अकबर पर

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ८६३। राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक १६-३०।

अविश्वास हो गया और उन्होंने तत्काल उसका साथ छोड़ दिया[1]। इस कपट-कृत्य से बादशाह राजपूतों से अपनी रक्षा कर सका और शाहज़ादा अकबर को हताश होकर तुरन्त वहां से भागना पड़ा।

राजपूतों की लगातार विजय होने से बादशाही सेना में आतङ्क छा गया। औरंगज़ेब के तमाम सेनापति भयभीत हो गये। कोई भी पहाड़ों में जाकर महाराणा के साथ युद्ध करने का साहस न कर सका। जब से हसनअलीख़ां का सैन्य उदयपुर से पश्चिम के पहाड़ों में कई दिन तक लापता रहा और दिलावरख़ां के सैन्य को गोगूंदे की घाटी में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तब से ही शत्रुसेना की हिम्मत बिलकुल टूट गई थी। इतने में शाहज़ादा अकबर विद्रोही हो गया और दक्षिण में मरहटों ने उपद्रव करना आरम्भ किया। ऐसी स्थिति में विवश होकर बादशाह औरंगज़ेब ने महाराणा जयसिंहजी से संधि करनी चाही। महाराणा ने भी उपयुक्त अवसर देखकर अपने देश को ऊजड़ होने से बचाने के लिए संधि कर लेना उचित समझा[2]।

बादशाह औरंगज़ेब की महाराणा जयसिंहजी से संधि

महाराणा जयसिंहजी राजसमुद्र नामक तालाब के किनारे शाहज़ादा आज़म से मिलने के लिए पधारे। शाहज़ादा ने बड़े सम्मान से महाराणा का स्वागत करके ख़िलअत, जड़ाऊ तलवार, जमधर, फूलकटारा और सोने चांदी के सामान सहित हाथी घोड़े भेंट किये और इसके अतिरिक्त ठाकुर सांवलदासजी प्रभृति बड़े बड़े सरदारों को, जो महाराणा की सेवा में उपस्थित थे, १०० सिरोपाव, ४० घोड़े और कुछ शस्त्र प्रदान किये गये।

यद्यपि इस संधि के पीछे मेवाड़ में शान्ति स्थापित हो गई, परन्तु जज़िया नामक कर अदा करना महाराणा ने किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं किया। इस सबब से पुर, माण्डल और बदनोर के परगनों पर शाही थाने स्थापित कर दिये गये। इस कारण से बदनोर का अधिकार ठाकुर सांवलदासजी को प्राप्त न हो सका, केवल आकड़सादा और कांवलयां तथा उनके समीपवर्ती कतिपय

(१) टॉड; राजस्थान; जिल्द १, पृ० ३०८।

(२) म० म० ओ०; राजपूताने का इतिहास; द्वितीय खण्ड, पृ० ८९६।

ग्राम इनके क़ब्ज़े में रहे। ऐसा भी सुनने में आता है कि बदनोर पर शाही अधिकार होने के कारण महाराणा ने इनको विजयपुर का प्रान्त निर्वाहार्थ प्रदान किया। बदनोर की पुनः प्राप्ति का उद्योग इन्होंने बराबर जारी रक्खा, परन्तु इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी। केवल थोड़ासा प्रान्त ही इनके अधिकार में रह जाने से इनको निर्वाह करने में बड़ी कठिनता पड़ती थी तब मारवाड़ के राठोड़ों से मिलकर इन्होंने शाही मुल्क में लूटमार करना आरम्भ किया। वि० सं० १७३८ (ई० स० १६८१) में मारवाड़ के राठोड़ों ने सम्भवतः ठाकुर सांवलदासजी की ही सम्मति तथा सहायता से पुर, माण्डल पर चढ़ाई की और अनेक मनुष्यों को मारकर बहुत सा धन लूट ले गये। इसी प्रकार किशनगढ़ के राजा मानसिंहजी से जो, बादशाह की तरफ़ से इन प्रान्तों के हाकिम नियत किये गये थे तथा बदनोर का प्रान्त भी दलपतजी बुंदेला की जागीर से उतारकर बादशाह ने इनको दे दिया था,[1] ठाकुर सांवलदासजी की खटपट होती रही, परन्तु बदनोर में इनका अधिकार स्थापित नहीं हो सका और अन्त समय तक इस मनोरथ के पूर्ण न होने का इनको संताप ही रहा।

चतुरकुलचरित्र नामक रूपाहेली के इतिहास में ठाकुर सांवलदासजी का देहान्त वि० सं० १७३८ में होना अनुमान किया गया है, परन्तु यह शुद्ध नहीं है, क्योंकि यहां पर ठाकुर सांवलदासजी के नाम महाराणा साहब की तरफ़ से आये हुए खास रुक्कों का जो संग्रह मौजूद है, उसमें अन्तिम खास रुक्का वि० सं० १७४३ कार्तिक (ई० स० १६८६ अक्टोबर) मास का है, और (श्रावणादि गणना की रीति से) इसी संवत् के ज्येष्ठ मास में महाराणा साहब की तरफ़ से ठाकुर यशवंतसिंहजी के नाम बख्शा हुआ खास रुक्का विद्यमान है। इससे यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है कि ठाकुर सांवलदासजी का देहान्त वि० सं० १७४३ के कार्तिक और ज्येष्ठ इन दो मासों के मध्य में किसी समय हुआ।

ठाकुर सांवलदासजी का स्वर्गवास

ठाकुर सांवलदासजी बड़े दानी[2], वीर और उदार सरदार थे। इन्होंने

(१) मुन्शी देवीप्रसादजी; औरंगज़ेबनामा; भाग २; पृ० १२३।
(२) इनके ब्राह्मणों को प्रदान की हुई भूमि के दानपत्र देखने में आये हैं।

अपने पिता की यादगार में वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) में देलवाड़ा में १२ स्तंभों की एक छत्री बनवाई जो अद्यावधि विद्यमान है। बदनोर में 'सांवलमहल' (दो गेट का, गुम्बजदार) और 'सांवलबाव'[1], आकड़सादे में एक गढ़[2] और कांवल्यां में एक पक्की बावड़ी और एक महल अपने नाम से बनवाये। मृत्यु-समय इनकी अवस्था ८१ वर्ष के लगभग थी। इन्होंने ६६ वर्ष पर्यन्त राज्य किया। इतने दीर्घ काल तक इस वंश में अद्यावधि किसी ने भी शासन नहीं किया है। ठाकुर सांवलदासजी बड़े स्वामिभक्त सरदार थे। इनकी समस्त आयु सच्चे दिल से स्वामी की सेवा करते ही व्यतीत हुई। वि० सं० १७०५ वैशाख वदि अमावास्या (ई० स० १६४८ ता० १२ अप्रेल) को ठाकुर सांवलदासजी ने बदनोर के राजगुरु को स्थापित किया, जिसका वृत्तान्त उनके दानपत्र से पाया जाता है।

ठाकुर सांवलदासजी का व्यक्तित्व

हमारे भाट राणीमंगों की ख्यात के अनुसार ठाकुर सांवलदासजी के ५ राणियाँ थीं—

१-चूंडावत अजबकुंवरी—मदारिया के रावत ईश्वरदासजी[3] की पुत्री।

२-झाली विनयकुंवरी—ताणेराज आसकरणजी की पुत्री।

३-कछवाही अमृतकुंवरी—जयपुर राज्य के ठिकाने ईसरदे के ठाकुर मानसिंहजी की पुत्री।

४-राणावत सूर्यकुंवरी—शाहपुरा के राजाधिराज सूरजमलजी की पुत्री।

५-शक्तावत गंगकुंवरी—सावर महाराज गोकलदासजी की पुत्री।

---

(१) यहां पर अजयसागर तालाब में कुछ थोड़ा ज़मीन है जो 'सांवलबाव' कहलाती है। कुछ वयोवृद्ध मनुष्य इसको 'सांवलबाग़' भी कहते हैं। अनुमान किया जाता है कि यहीं पर ठाकुर सांवलदासजी ने अपने नाम पर सांवलबाव बनवाकर उससे समीपवर्ती ज़मीन में सिंचाई करके बाग़ लगवाया हो; बाद में जब ठाकुर अजयसिंहजी ने 'अजयसागर' तालाब बनवाया तब उसके अन्तर्गत आ जाने से 'बाव' तथा बाग़ नष्ट हो गये।

(२) यह गढ़ भग्नावस्था में है।

(३) देवगढ़वालों के पूर्वज।

ठाकुर सांवलदासजी के निम्नलिखित तीन राजकुमारियां और ८ राजकुमार हुए, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे निर्देश किया जाता है—

ठाकुर सांवलदासजी की संतति

१-फूलकुंवरी—इनका विवाह बिजोलिया के राव दुर्जनसालजी से हुआ।

२-मानकुंवरी—इनका विवाह बड़ख्याल महाराज फतेहसिंहजी से हुआ।

३-विजयकुंवरी—इनका विवाह बेगूं के रावत महासिंहजी से हुआ।

१-भगवंतसिंहजी—ठाकुर सांवलदासजी के उत्तराधिकारी। इनका वृत्तान्त अगले प्रकरण में निर्दिष्ट किया जावेगा।

२-भीमसिंहजी—इनको भटेड़ा ग्राम प्रदान हुआ जो अद्यावधि इनके वंशजों के अधिकार में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त अमरपुरा (भदेसर में), बोरतलाई (भींडर में), तख्तपुरा और मानपुरा (बान्सी में), बड़दसिंहजी का खेड़ा (बागोर ज़िले में), कल्याणपुरा (मालवा प्रान्त के कुशालगढ़ ज़िले में) तथा कोटड़ी (हुरड़ा ज़िले में) इन ग्रामों में इनकी संतति की भोम है।

३-केशरीसिंहजी—इनके वंशजों की भीमड़यास में भोम है तथा मोटरास और बलदरखा के ग्राम जागीर में हैं।

४-रायसिंहजी—इनको १२ ग्रामों सहित आमेसर प्रदान हुआ। वर्तमान में इनके वंशजों के अधिकार में आमेसर, बड़ला और मोतीपुर ग्रामों में भोम है तथा भोम पर बसा हुआ सूरजपुरा ग्राम भी इनके अधिकार में है। मालवे में कालूंडा ग्राम भी इन्हीं के वंश में है। रायसिंहजी के पुत्र इन्द्रसिंहजी ने हथूण में मेरों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया, जिसमें वह बहुत ज़ख्मी हो गये थे। महाराणा साहब ने इनकी वीरता से अत्यन्त संतुष्ट होकर एक ग्राम प्रदान किया।

५-अमरसिंहजी—इनको कई ग्रामों सहित नींभेड़ा मिला और बत्तीसों में

अर्थात् मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के सरदारों में अन्तर्गत कर इनको तदनुरूप प्रतिष्ठा प्रदान की गई। इनकी जागीर में आसींन्द भी सम्मिलित था, परन्तु बाद में आसींन्द इनके अधिकार से निकल गया। यह और इनके पुत्र अक्षयसिंहजी दोनों बड़ी वीरता से युद्ध करके हथूण में काम आये। इनकी दाहक्रिया बदनोर में हुई जहां चार स्तम्भों की एक छत्री अभी तक मौजूद है। इनके वर्तमान वंशज काका मोड़सिंहजी हैं। इनके कुंवर गोवर्धनसिंहजी तथा भंवर (पौत्र) भी हैं।

६–कुशलसिंहजी—इनको पहले ग्राम करजेला मिला था। वर्तमान में निम्नलिखित ग्रामों में इनके वंशजों की भोम है—सीडयास, हिरण्या, जवास्या, बख्तसिंहजी का खेड़ा, दोट्टा और देवरी।

७–अर्जुनसिंहजी—इनकी संतति का निवास कासोले में था।

८–साहबसिंहजी—इनको कई ग्रामों सहित बड़ी रूपाहेली मिली और बत्तीसों में अर्थात् मेवाड़ के द्वितीय श्रेणी के सरदारों में गणनाकर तदुचित सम्मान प्रदान किया गया। इन्होंने अनेक युद्धों में बड़ी वीरतापूर्वक भाग लिया। इनके वर्तमान वंशज रूपाहेली के ठाकुर चतुरसिंहजी बड़े विद्वान् और योग्यता सम्पन्न हैं। इनको इतिहास विद्या से पूर्ण अनुराग है। बड़े परिश्रम और शोध के साथ इन्होंने अपने वंश का इतिवृत लिखकर उसको 'चतुरकुलचरित्र' के नाम से प्रकाशित किया है। इनके ज्येष्ठ कुंवर लक्ष्मणसिंहजी तथा उनके पुत्र भंवर प्रतापसिंहजी हैं।

दसवां प्रकरण

ठाकुर यशवंतसिंहजी

ठाकुर यशवंतसिंहजी की गद्दीनशीनी

ठाकुर यशवंतसिंहजी ठाकुर सांवलदासजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि० सं० १७४३ (ई० स० १६८६) में आकड़सादे में गद्दी पर विराजमान हुए। बदनोर पर उस समय शाही अधिकार होने के कारण इनके अधिकार में विजयपुर का परगना तथा बदनोर प्रान्त के कतिपय ग्राम थे। ये शाहपुरा के राजा सुजानसिंहजी के दौहित्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६८४ के माघ (ई०स० १६२८ जनवरी) मास में हुआ था। कुंवरपदे की अवस्था में ही मुगल बादशाह औरंगज़ेब के विरुद्ध युद्ध करके इन्होंने अपनी प्रकाण्ड वीरता का पूर्ण परिचय दे दिया था। राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने बदनोर को हस्तगत करने के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु कितने ही कारणों से सफलता प्राप्त न हो सकी।

ठाकुर यशवंतसिंहजी का बदनोर प्राप्ति के लिए उद्योग

वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में महाराणा जयसिंहजी की आज्ञानुसार बदनोर की पुनः प्राप्ति का उद्योग करने के लिए ठाकुर यशवंतसिंहजी मथुरा होकर दिल्ली गये। वहां जाकर इन्होंने अपने पैतृक स्थान की प्राप्ति के निमित्त बहुत उद्योग किया, परन्तु बादशाह के मंत्री असदखां ने स्पष्टरूप से यह उत्तर दे दिया कि जब तक महाराणा जज़िया की रक़म अदा करना स्वीकार न करेंगे तब तक पुर, माण्डल और बदनोर पर से शाही अधिकार उठना असंभव है। इसपर इन्होंने उदयपुर वापस आकर संपूर्ण वृत्तान्त महाराणा की सेवा में निवेदन किया। जज़िया अदा करना तो महाराणा जयसिंहजी ने स्वीकार न किया, परन्तु उपर्युक्त परगनों पर शाही अधिकार स्थापित रहने से ठाकुर यशवंतसिंहजी को इन्हीं की बुद्धि के अनुसार उचित उपायों का अवलंबन कर किसी प्रकार से इन तीनों परगनों को शाही अधिकार से मुक्त कराने का आदेश दिया। इस मरतबा महाराणा के अन्य कर्मचारियों के साथ अपने ज्येष्ठ

कुमार जोगीदासजी को दिल्ली भेजा। इन्होंने बादशाह के मंत्री से मिलकर पुर, माण्डल और बदनोर के परगनों से शाही अधिकार उठाने का बहुत उद्योग किया, परन्तु शाही वज़ीर असदखां ने जज़िया की रक़म हासिल किये बिना इन परगनों को शाही अधिकार से मुक्त करना स्वीकार न किया। यह देखकर पूर्ण बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता से इन परगनों पर से किसी प्रकार बादशाह के अधिकार को हटाने के लिए इन प्रान्तों को एक लाख रुपये में मुकाता करा लिया। बदनोर प्रान्त में पैंसठ हज़ार रुपये वार्षिक नियत हुए, जिसकी खातिरी महाराणा जयसिंहजी ने वि० सं० १७४६ कार्तिक कृष्णा ६ (ई० स० १६९२ ता० २४ अक्टोबर) को कर दी जो अभी तक विद्यमान है। नियत समय पर अजमेर में इस रक़म को जमा कराने का निश्चय हुआ। अपने पैतृक स्थान की पुन: प्राप्ति से ठाकुर यशवन्तसिंहजी को असीम हर्ष हुआ, परन्तु अजमेर में रुपया जमा न कराने के कारण इन परगनों पर से शाही थाने नहीं उठाये गये जैसा कि हमारे संग्रह के उस समय के महाराणा जयसिंहजी के ठाकुर यशवंतसिंहजी के पास जलनगर से भेजे हुए कतिपय खासरुक्कों से विदित होता है।

महाराणा जयसिंहजी और कुंवर अमरसिंहजी में विरोध

कई कारणों से महाराणा जयसिंहजी तथा उनके ज्येष्ठ-पुत्र राजकुमार अमरसिंहजी के वैमनस्य उत्पन्न हो गया। इसपर अप्रसन्न होकर राजकुमार अमरसिंहजी अपने ननिहाल बूंदी चले गये। उनके पक्ष में मेवाड़ के कतिपय प्रतिष्ठित सरदार भी थे[1]। बूंदी से रुपये तथा सैन्य की सहायता प्राप्तकर राजकुमार ने मेवाड़ में अमल जमाना शुरू किया। यह सुनकर महाराणा फेलवाड़ा होते हुए घाणेराव पहुंचे। वहां पर उनकी सहायतार्थ वीरवर राठोड़ दुर्गादासजी भी मारवाड़ के समस्त राठोड़ सरदारों सहित तीस हज़ार सेना लेकर उपस्थित हुए। इस समय महाराणा के पक्ष में घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया, सलूंबर के रावत कांधलजी, डोडिया ठाकुर हरिसिंहजी आदि कई प्रतिष्ठित सरदार थे। महाराणा ने समस्त सेना सहित देसूरी के घाटे के नीचे मुकाम किया। राजकुमार अमरसिंहजी भी अपने सैन्य सहित राजनगर

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६००।

होते हुए जीलवाड़े पहुंचे। उभय पक्षवालों को यह चिन्ता हुई कि इस परस्पर के विरोध से सिवा हानि के कोई लाभ नहीं। यह सोच कर घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया, डोडिया ठाकुर हरिसिंहजी आदि सरदारों ने पिता-पुत्र के इस कलह को शान्त करने का विचार कर महाराणा जयसिंहजी से अर्ज़ की कि यदि आज्ञा हो तो राजकुमार को समझाया जावे, क्योंकि आपस में लड़कर मेवाड़ के शक्तिहीन होने से देश में मुसलमानों का दखल पड़ जावेगा, और यदि इस युद्ध में राजकुमार मारे गये तो भी आपको दुःख होगा। महाराणा की सम्मति पाकर इन्होंने यही सब बातें राजकुमार को लिख भेजीं। रावत महासिंहजी सारंगदेवोत और रावत गंगदासजी शक्तावत आदि राजकुमार के सहायक सरदारों ने भी उनको ऐसी सलाह दी और महाराणा से अर्ज़ कराई कि कुंवर का अपराध क्षमा किया जावे। अन्त में यह निश्चय हुआ कि राजकुमार अमरसिंहजी तीन लाख वार्षिक आय की जागीर लेकर राजनगर में रहें, महाराणा के राज्य-कार्य्य में वह किसी प्रकार का दखल न दें और महाराणा कुंवर के पट्टे में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार दोनों तरफ़ के सरदारों के प्रयत्न से वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) के अन्त के आसपास इस गृह-कलह की शान्ति हुई[1]।

महाराणा जयसिंहजी और कुंवर अमरसिंहजी के वैमनस्य के समय पारसोली के राव केसरीसिंहजी चौहान राजकुमार के मुख्य सहायक थे और परस्पर संधि होने पर भी वह राजकुमार के ही पास रहे। इससे महाराणा जयसिंहजी उनसे बहुत अप्रसन्न हो गये और उनको मरवाना चाहा। इसके लिए उन्होंने सलूंबर के रावत कांधलजी चूण्डावत को उद्यत किया। महाराणा ने खास रुक्का भेजकर राव केसरीसिंहजी को राजनगर से बुलाया और बादशाह के सम्बन्ध की सलाह की। एक दिन महाराणा ने फ़रमाया कि बादशाह औरंगज़ेब ने संधि करते समय जज़िया माफ़ करके पुर, माण्डल और बदनोर के परगने वापस देने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अभी तक परगने वापस नहीं दिये, इस बारे में ठाकुर गोपीनाथजी, राव केसरीसिंहजी और रावत कांधलजी

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६०१।

सलाह कर अपनी सम्मति दें। सलाह करने का स्थान थूर का तालाव निश्चित हुआ। रावत कांधलजी और राव केसरीसिंहजी वहां पहुंचे और ठाकुर गोपीनाथजी मेड़तिया की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में अवसर पाकर रावत कांधलजी ने अपनी कटार निकालकर उनकी छाती में मारा और कहा कि महाराणा आपसे नाराज़ हैं। राव केसरीसिंहजी ने भी गिरते गिरते अपनाकटार निकालकर रावत कांधलजी पर वार किया और बोले कि महाराणा आपसे भी राज़ी नहीं हैं। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये[1]।

महाराणा जयसिंहजी का जयसमुद्र तालाव बनवाना।

महाराणा जयसिंहजी ने अपने नाम पर उदयपुर से ३२ मील दक्षिण पूर्व में ढेबर नामक नाके को बांधकर जयसमुद्र नामक एक बड़ा भारी तालाव बनवाया। इसके भरने पर इसकी अधिक से अधिक लम्बाई ६ मील से कुछ ऊपर और चौड़ाई ६ मील से कुछ अधिक हो जाती है। इसके भीतर कुछ वर्गमील विस्तार के तीन टापू हैं जिनपर मीणे, साधु आदि लोग बसते हैं। इन टापुओं पर रहनेवाले लकड़ी के बने हुए भेलों पर भील से बाहर आते हैं तथा उन्हीं पर अपने पशुओं को भी बाहर ले जाते और लाते हैं। इसका बांध दो पहाड़ों के बीच संगमरमर का बना हुआ है, जो १००० फुट लंबा और ६५ फुट ऊंचा है। इस तालाव का प्रारंभ वि० सं० १७४४ में हुआ और १७४८ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६९१ ता० २२ मई) को इस तालाव की प्रतिष्ठा हुई। मनुष्य के बनाये हुए तालावों में यह दुनियां

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ९०१।

राव केसरीसिंहजी और रावत कांधलजी के आपस में एक दूसरे को मारने के सम्बन्ध में ये प्राचीन दोहे बड़े प्रसिद्ध हैं—

पंथी जाय संदेसड़ा, राण अगाँ कहियाह।
चूंडो ने चंदवारियो, रण भेला रहियाह॥१॥

केहर कांधल मारवे, रही सदा जग रीत।
कांधल केहर मारियो, रीत किना विपरीत॥२॥

कांधल केहर मारने, दियो दुधारां हत्थ।
चूंडा चढ़ुवायां चर्ली, सतियां केहरा साथ॥३॥

में सब से बड़ा तालाब माना जाता है[1]। महाराणा ने जयसमुद्र के बांध पर सुन्दर खुदाई के कामवाला थीनर्मदेश्वर नामक शिवालय भी बनवांना शुरू किया जो उनके समय में पूरा न हो सका। इसके अतिरिक्त उन्होंने जयसमुद्र के बांध के पहाड़ पर गुम्बजदार महल भी बनवाया तथा थोड़ी दूरवाली जल में गई हुई पहाड़ी की चोटी पर अपनी राणी के निमित्त ज़नाना महल भी बनवाया। जयसमुद्र के विस्तार का अनुमान बांध पर से नहीं किन्तु इस महल पर से ही होता है। महाराणा ने जयसमुद्र के पास ही 'जसनगर' नामक एक नगर भी बसाया था और विशेषकर वे वहीं रहते थे, परन्तु बाद में आबादी न रहने के कारण वह वीरान हो गया।

वि० सं० १७५५ आश्विन वदि १४ (ई० स० १६९८ ता० २३ सितंबर) को महाराणा जयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। उनके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने मेवाड़ के राज्यसिंहासन को सुशोभित किया। महाराणा के गद्दीनशीन होने पर पहले के अनुसार डूंगरपुर के रावल खुमानसिंहजी, बांसवाड़े के रावल अजबसिंहजी और देवलिये के रावल प्रतापसिंहजी ने उपस्थित होकर टीके का दस्तूर पेश नहीं किया, जिससे अप्रसन्न होकर महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने उनको दंड देने के लिये उनपर सेना भेजी। युद्ध में परास्त होने पर इन्होंने टीके का दस्तूर भेजा। इन्होंने इस बारे में बादशाह औरंगज़ेब से महाराणा की शिकायत की। बादशाह महाराणा से बहुत क्रुद्ध हुआ, परन्तु दक्षिण की लड़ाई में फंसे रहने के कारण सिर्फ इस बात को दर्याप्त करने का हुक्म दिया[2]।

महाराणा जयसिंहजी का स्वर्गवास

बादशाह औरंगज़ेब ने बदनोर, पुर और मांडल के तीन परगने महाराणा जयसिंहजी से संधि करते समय पीछा देने की प्रतिज्ञा करने पर भी उनपर से अपना अधिकार नहीं उठाया। बाद में वे परगने बादशाह ने राठोड़ सुजानसिंहजी के पुत्र जुझारसिंहजी और कर्णसिंहजी को दे दिये। महाराणा अमरसिंहजी

महाराणा अमरसिंहजी का शाहीमुल्क को लूटने के लिए सेना एकत्रित करना

(१) देवनाथजी पुरोहित; उदयपुर; पृ० १६३।

(२) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ९०६।

(द्वितीय) को इन परगनों पर इनका अधिकार रहना पसन्द न हुआ, क्योंकि खालसा में रहने से इनके दुवारा प्राप्त होने की आशा हो सकती थी, परन्तु किसी दूसरे की जागीर में रहने के कारण उसमें अनेक विघ्न होते, अतः परस्पर विरोध खड़ा हुआ। राठोड़ जुझारसिंहजी के भतीजे (कृष्णसिंहजी के पुत्र) राजसिंहजी ने वहां रहकर मेवाड़ के राजपूतों और विशेषतः चूंडावतों से छेड़छाड़ शुरू की। उन्होंने कई चूंडावतों को मारकर पुर के समीप की पहाड़ की गुफा—'अधरशिला' में डाल दिया और आमेट के रावत दूलहसिंहजी के चार भाइयों को पकड़कर ले गये। महाराणा ने यह समाचार सुनकर मंगरोप के महाराज जसवंतसिंहजी को उनपर आक्रमण करने की आज्ञा दी। जसवंतसिंहजी ने अपने भाइयों सहित पुर पर आक्रमण किया। राजसिंहजी युद्ध में परास्त होकर मांडल की तरफ़ भागे, परन्तु जसवंतसिंहजी ने उनका पीछा कर वहां से भी उनको निकाल दिया[1]।

राठोड़ जुझारसिंहजी ने यह सुनकर बादशाह औरंगज़ेब को लिखा कि महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) सेना इकट्ठीकर शाही मुल्क पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। इसी तरह महाराणा ने भी बादशाह को लिखा कि ये राठोड़ फसाद किया करते हैं इसलिए इनसे परगने छीनकर पहले के अनुसार खालसे में शामिल किये जावें। इसपर राठोड़ जुझारसिंहजी को ताकीद की गई कि महाराणा के इलाक़े में दखल न दें।

वि० सं० १७५६ (ई० स० १६९९) में महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) शाही मुल्क लूटने के इरादे से सेना एकत्रित कर अपने ननिहाल बूंदी पहुंचे, परन्तु उपयुक्त अवसर न देखकर वे वहां से लौट आये। उन्होंने खयाल किया कि बादशाह औरंगज़ेब वृद्ध है, उसके मरने पर उसके पुत्रों में अवश्य सल्तनत के लिए झगड़ा खड़ा होगा[2], उस समय गये हुए परगनों पर आसानी से अधिकार किया जा सकेगा।

---

(१) म० म० ओझा; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ९०७।

(२) बादशाह औरंगज़ेब की जीवितावस्था में ही उसके शाहज़ादे राज्य के लिए प्रयत्न करने लगे थे। बड़े शाहज़ादे अकबर ने राज्य पाने के लिए विद्रोह किया था। शाहज़ादा मुअ-

इसी समय के आसपास रामपुरे के राव गोपालसिंहजी के पुत्र रत्नसिंहजी ने बादशाह की सहायता से अपने पिता से विद्रोह कर रामपुरे पर अपना अधिकार कर लिया। इसपर राव गोपालसिंहजी महाराणा के पास चले आये और शाही मुल्क में लूट मार करने लगे। महाराणा के इशारे से मलकावाजणा के जागीरदार उदयभानजी शक्तावत ने उनको सहायता दी[1]। रतलाम के राठोड़ों ने भी इस समय पर उनकी सहायता की।

महाराणा अमरसिंहजी को सिरोही आदि मिलना

इन कारणों से बादशाह औरंगज़ेब महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) से बहुत अप्रसन्न हुआ, परन्तु उस समय बादशाह दक्षिण की लड़ाई में फंसा हुआ था और ८० वर्ष से भी अधिक वृद्धावस्था में था, उसके पुत्र अलग बादशाहत के लिए प्रयत्नशील थे, इसलिए राजपूताने में दुबारा आग भड़क उठने की आशंका से उसने इन बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, अपने वज़ीर असदख़ां को महाराणा से दोस्ती रखने तथा खानगी हिदायत करने के लिए कहा। वज़ीर असदख़ां ने महाराणा को लिखा कि दक्षिण में शाहज़ादा आज़म के पास एक हज़ार सवारों की सेना भेजने पर गये हुए परगने वापस मिलेंगे। इसमें मस्लहत देखकर वि० सं० १७५६ (ई० स० १७०२) में महाराणा ने मालवे में स्थित शाहज़ादे के पास सेना भेज दी। यद्यपि सवार एक हज़ार से बहुत कम थे, तो भी जुल्फ़िक़ारख़ां ने एक हज़ार सवारों की रसीद लिख दी, जिसके बदले में महाराणा को सिरोही और आबूगढ़ का परगना मिला। महाराणा ने सिर्फ सिरोही से सन्तुष्ट न होकर पुर, मांडल और बदनोर तथा दूसरे कई परगने, जो पहले मेवाड़ में थे, देने के लिए भी बादशाह को लिखा कि

ज़्ज़म और कामबख्श भी बादशाहत के लिए उद्योग कर रहे थे। छोटे शाहज़ादे आज़म ने भी महाराणा जयसिंहजी से गुप्त संधि की थी कि बादशाहत मिलने पर बदनोर, फूलिया, माण्डलगढ़, बसार, गयासपुर, परधा इत्यादि जो परगने मेवाड़ से निकल गये थे वह फिर बहाल कर दिये जावेंगे। इनके अतिरिक्त सिरोही, ईडर, रामी, मसूदा, जहाजपुर, मन्दसोर, खैराबाद, टोंक, सावर, टोडा, मालपुरा इत्यादि बहुतसे परगने भी महाराणा को विशेष दिये जावेंगे तथा बांसवाड़ा, देवलिया, डूंगरपुर इत्यादि परगनों पर भी महाराणा का आधिपत्य स्वीकार किया जावेगा।

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ९०८।

सिरोही का परगना केवल एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपये) का है, बाक़ी दो करोड़ दाम (पांच लाख रुपये) की एवज़ में और परगने मिलने चाहियें[1] ।

वि० सं० १७६२ के कार्तिक (ई० स० १७०५ अक्टोबर) मास में मगरा मेरवाड़ा के मेरों ने तथा भाग, अथूण और चांग के खान हाज़ीख़ां ने बहुत उपद्रव उठाया इसपर इनको दंड देने के लिए उदयपुर से महाराणा ने नगजी धाभाई के अधिकार में सेना भेजी, परन्तु मेर परास्त न हो सके । यह देखकर ठाकुर यशवंतसिंहजी ने अपनी सेना लेकर मेरों पर चढ़ाई की । कालिंजर में इनका मेरों के साथ बड़ा प्रचंड संग्राम हुआ, जिसमें मेरों को परास्त होकर युद्धक्षेत्र से भागना पड़ा । इस युद्ध में बदनोर के भी बहुतसे क्षत्रिय मारे गये थे और ठाकुर यशवंतसिंहजी के भी अनेक लोह लगे थे । इसी वर्ष फिर हाजीख़ां ने सर उठाया और हुरड़ा के हाकिम को पकड़कर मगरे में ले गया । इस दुर्घटना का समाचार पाते ही ठाकुर यशवंतसिंहजी ने पुनः हाजीख़ां पर आक्रमण किया और उसको मारकर उक्त हाकिम को छुड़ा लाये । चांग के क़िले को तोड़कर वहां पर मेवाड़ का आधिपत्य स्थापित किया । महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने ठाकुर यशवंतसिंहजी के इन प्रकांड वीरता के कार्यों से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर समय समय पर इनके पास खास रुक्के भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की ।

खान हाजीख़ां का उपद्रव

वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०७) में बादशाह औरंगज़ेब का दक्षिण में ही अहमदनगर के पास देहान्त हो गया। औरंगज़ेब की हिन्दू-विद्वेषिणी नीति ने देश में चारों तरफ़ हिन्दुओं को उत्तेजित कर दिया था । उसके जीवनकाल में ही दक्षिण में छत्रपति शिवाजी ने तथा उनके पश्चात् उनके पुत्र तथा अनुयायी महाराष्ट्र वीरों ने और राजपूताने में महाराणा राजसिंहजी तथा राठोड़ों ने मुग़ल शक्ति का विरोध किया था। उसके राज्य के अन्तिम दिन मरहटे, राजपूत आदि स्वतन्त्र होना चाहते थे। मरहटों के साथ के दीर्घकाल के युद्ध ने उसके सारे कोष और सैन्य शक्ति को समाप्त कर दिया था । औरंगज़ेब की मृत्यु के साथ ही साथ अकबर द्वारा स्थापित और जहांगीर तथा

बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु

(१) म० गौ० ओ०, राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ६१६ ।

शाहजहां-द्वारा दृढ़ किया हुआ मुग़लों का विशाल साम्राज्य भी उसके धर्म-द्वेष के कारण खंड खंड होकर जर्जरित हो गया और मुग़लों की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई[1]। बादशाह औरंगज़ेब के मरने पर उसके पुत्रों-शाहज़ादा मुअज्जम और आज़म-में राज्य के लिए युद्ध हुआ, जिसमें आज़म मारा गया और शाहज़ादा मुअज्ज़म ने 'शाहआलम बहादुरशाह' के नाम से बादशाह का पद धारण किया। इस बखेड़े में महाराणा ने शाहज़ादा मुअज्ज़म का पक्ष ग्रहण किया था[2]।

बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु का समाचार सुनते ही महाराजा अजीतसिंहजी ने भी जोधपुर पर आक्रमण करके वहां के सूबेदार ज़फ़रकुलीख़ां को निकालकर अपना अधिकार कर लिया, इसपर बादशाह शाहआलम ने अप्रसन्न होकर मेहराबख़ां को भेजकर जोधपुर पर पीछा अधिकार कर लिया[3]। शाहज़ादा मुअज्ज़म और आज़म जब राज्य के लिए लड़े तब जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी ने आज़म का पक्ष ग्रहण किया था और उनके छोटे भाई विजयसिंहजी ने मुअज्जम का। शाहज़ादा मुअज्ज़म ने बादशाह होने पर उसका बदला लेने के लिए वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में जयपुर पर आक्रमण कर आंबेर को खालसे कर लिया और विजयसिंहजी को वहां का राजा बनाया। वहां से बादशाह जोधपुर की ओर बढ़ा और मेड़ते पहुंचा। वहां पर महाराजा अजीतसिंहजी भी उसके पास आये। बादशाह को अपने भाई कामबख़्श का विद्रोह शान्त करने के लिए शीघ्र दक्षिण को जाना था, अतः उसने महाराजा को प्रसन्न करने के लिए ख़िलअत, 'महाराजा' का ख़िताब, साढ़े तीन हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार का मनसब दिया। इसके बाद वह विद्रोही कामबख़्श के दमनार्थ दक्षिण को गया। राठोड़ वीर दुर्गादासजी सहित महाराजा अजीतसिंहजी और महाराजा सवाई जयसिंहजी भी अपने राज्य पाने की आशा में बादशाह के साथ ही रहे। वे दोनों इस आशा में मण्डेश्वर (मंडलेश्वर, नर्मदा के तट पर) तक बादशाह

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ३११।

(२) वही, पृ० ३११। कर्नल टॉड; राजस्थान; प्रथम भाग, पृ० ३१९।

(३) वही, पृ० ३१३।

के साथ रहे, परन्तु जब देखा कि राज्य मिलने की कोई आशा नहीं तब बिना सूचना दिये ही वे बादशाह का साथ छोड़कर उदयपुर की ओर चले और महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) को अपने आने की सूचना दी[1]। महाराणा वि० सं० १७६५ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १७०८ ता० २६ अप्रैल) को उदयपुर से जाकर उदयसागर की पाल पर ठहरे। दूसरे दिन वे उनके स्वागत के लिए गड़वा गांव तक पधारे, जहां महाराजा अजीतसिंहजी, महाराजा जयसिंहजी, ठाकुर दुर्गादासजी राठोड़ और ठाकुर मुकुन्ददासजी भी पहुंचे। महाराणा उनसे मिलकर उनको साथ ले उदयपुर पधारे। महाराजा अजीतसिंहजी कृष्णविलास में और महाराजा जयसिंहजी सर्वर्तुविलास में ठहराये गये। इसी अवसर पर महाराणा ने महाराजा जयसिंहजी के साथ अपनी पुत्री चन्द्रकुंवरी का विवाह किया[2]।

जयपुर और जोधपुर के राजाओं का महाराणा की सहायता से अपने राज्यों पर अधिकार होना

अब हमेशा यह सलाह होने लगी कि मुसलमानों को हिन्दुस्तान से निकालकर महाराणा को बादशाह बनाया जाय, परन्तु यह सलाह महाराजा अजीतसिंहजी को न रुची तब तीनों रियासतों के सलाहकार सम्मति देने के लिए बुलाये गये। जोधपुर के पक्षवालों ने निम्नलिखित दोहा कहा—

व्रज देशां चन्दन वडां, मेरु पहाड़ां मोड़।
गरुड़ खगां लंका गढ़ां, राजकुलां राठौड़॥

यह सुनकर मेवाड़वालों ने अपने समर्थन में यह दोहा कहा—

व्रज वासण गिरि नख धरण, चन्दन दियण सुगन्ध।
गरुड़ चढण लंका लियण, रघुवंशी राजन्द॥

---

(१) म० म० ओ०; राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड; पृ० ६१३।

(२) इस विवाह का परिणाम अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि इस विवाह के प्रसंग में महाराणा और जोधपुर एवं जयपुर के महाराजाओं के बीच एक अहदनामा हुआ था, जिसमें एक शर्त यह थी कि उदयपुर की राजपुत्री का पुत्र छोटा होने पर भी युवराज माना जावे। महाराजा जयसिंहजी के देहान्त के पश्चात् प्रचलित रीति के अनुसार उनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंहजी जयपुर के अधिकारी हुए, परन्तु उक्त शर्त के अनुसार महाराणा ने अपने भानजे माधवसिंहजी को राज्य दिलाना चाहा, जिसके परिणाम-स्वरूप उदयपुर और जयपुर

महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने इस आपस के झगड़े को देखकर फ़रमाया कि हम हिन्दुस्तान की बादशाहत नहीं चाहते क्योंकि इससे आपस में फूट और फ़साद बढ़ेंगे, जिससे राजपूतों की शक्ति क्षीण हो जाने से मुसलमानों का प्रभाव फिर बढ़ जावेगा। हम तो यही चाहते हैं कि आप दोनों के गये हुए राज्य आपको मिल जावें, इसके लिए हम आपकी सहायता करने को तैयार हैं। इस विचार के अनुसार महाराणा ने उनके साथ अपना सैन्य देकर उनको विदा किया। उन्होंने पहले जोधपुर पर आक्रमण कर उसको विजय किया। वहां से सम्मिलित सैन्य ने आंबेर पर चढ़ाई कर उसको अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार दोनों राज्यों पर उन राजाओं का फिर से अधिकार हो गया[1]।

ठाकुर यशवंतसिंहजी की मृत्यु

वि० सं० १७६६[2] (ई० स० १७०६) को ठाकुर यशवंतसिंहजी ने पुर, मांडल के मुग़ल शासक फीरोज़खां पर आक्रमण किया। फीरोज़खां को बहुत हानि उठाकर अजमेर भागना पड़ा, परन्तु अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि इस युद्ध में ठाकुर यशवंतसिंहजी भी शत्रुओं का संहार करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए[3]।

इसी समय बादशाह बहादुरशाह दक्षिण से लौटा। महाराणा ने विचार

राज्य में युद्ध ठन गया और राजपूताने पर मरहटों का प्रभाव बढ़ता गया, जिससे दोनों राज्यों को बहुत हानि उठानी पड़ी। इसका विशेष वर्णन आगे प्रसंग आने पर किया जायगा।

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६१६।

(२) टॉड और वीरविनोद में इस युद्ध का बादशाह औरंगज़ेब के मरते ही होना लिखा है लेकिन पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इरविन के आधार पर सं० १७६६ दर्ज किया है।

(३) वही; पृ० ६१६। इस युद्ध के विषय में कर्नल टॉड साहब (राजस्थान; जिल्द 1, पृ० ३१८) तथा लेटर मुग़ल्स (Later Moguls) नामक इतिहास के रचयिता मिस्टर विलियम इरविन ने लिखा है—"राणा की फौज के एक अफ़सर सांवलदासजी ने पुर, माण्डल के फौजदार फीरोज़खां पर चढ़ाई की, फीरोज़खां को बहुत हानि उठाकर लाचारी के साथ अजमेर भागना पड़ा और सांवलदास इस युद्ध में काम आया।" इन दोनों ही ग्रन्थकारों ने यशवंतसिंहजी के स्थान में सांवलदासजी का नाम भ्रम से लिख दिया है। सांवलदासजी का देहान्त तो २३ वर्ष पूर्व वि० सं० १७४३ में ही हो चुका था। इस भ्रम का हो जाना इस प्रकार से बहुत संभव है कि यशवंतसिंहजी के सांवलदासोत कहलाने से मुसलमान लेखकों ने, जिनके आधार पर उक्त लेखकों ने ग्रन्थ रचना की है, उनको सांवलदासोत न लिखकर सांवलदास ही लिख दिया।

किया कि महाराजा अजीतसिंहजी और जयसिंहजी को सहायता देने और पुर, मांडल पर अधिकार कर लेने के कारण बादशाह अवश्य अप्रसन्न हुआ होगा, अतः सेना लेकर पहाड़ों में जाने का विचार किया[1]। बादशाह को शीघ्र ही सिक्खों का विद्रोह दमन करने के लिए पंजाब जाना था, इसलिए उसने वज़ीर असदखां से तसल्ली का पत्र लिखवाकर महाराणा के पास भिजवाया और स्वयं पूर्व निश्चित चित्तोड़ के मार्ग को छोड़कर मुकन्दरा के घाटे से हाड़ोती में होता हुआ लौट गया[1]।

ठाकुर यशवंतसिंहजी का व्यक्तित्व

ठाकुर यशवंतसिंहजी बड़े ही वीर, स्वामिभक्त और राजनीति विशारद थे। बादशाह औरंगज़ेब और महाराणा राजसिंहजी के युद्ध के समय कुंवरपदे में अपने पिता ठाकुर सांवलदासजी के साथ रहकर इन्होंने शाहज़ादा मुअज़्ज़म और आज़म से कई युद्ध करके अनुपम वीरता प्रदर्शित की थी। इनके पराक्रम और पुरुषार्थ का तो सब से बड़ा प्रमाण यही है कि ८१ वर्ष की आयु हो जाने पर भी इन्होंने फीरोज़खां को परास्त करके शत्रुओं का संहार करते हुए रणभूमि में ही अमरत्व को प्राप्त किया। इन्होंने २३ वर्ष तक राज्य किया।

हमारे भाट और राणीमंगों की ख्यात के अनुसार ठाकुर यशवंतसिंहजी के ६ राणियां थीं—

१–राणावत सरसकुंवरी—केर्यां के महाराज गरीबदासजी की पुत्री।
२–चौहान जसकुंवरी—कोठारिया के रावतजी की पुत्री।
३–गौड़ रूपकुंवरी—राजगढ़ के पहाड़सिंहजी की पुत्री।
४–चूंडावत रामकुंवरी—आमेट के रावत मानसिंहजी की पुत्री।

(१) इस अवसर पर महाराणा ने एक ख़ास रुक्का राठोड़ रायसिंहजी सांवलदासोत (ठाकुर यशवंतसिंहजी के छोटे भाई, इनके वंशजों के अधिकार में इस समय 'आमेसर' है) के पास इस आशय का भेजा—

"अपने चारों तरफ़ जितने गांव हैं उन सबको उजाड़ दो। तुम्हारे परिवार के रहने के लिए दूसरी जगह मिलेगी। विशेष समाचार जानने के लिए चूंडावत दौलतसिंह से मिलो। हमारी आज्ञा का पालन करो।"

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड, पृ० ६१७।

५-शक्तावत रंगकुंवरी—दामटी के विजयसिंहजी की पुत्री।

६-हाड़ी हरकुंवरी—इंद्रगढ़ के महाराज गोपालदासजी की पुत्री।

ठाकुर यशवंतसिंहजी के दो राजकुमारियाँ और छः राजकुमारों ने जन्म लिया, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे निर्देश किया जाता है—

ठाकुर यशवंतसिंहजी की संतति

१-बख्तावरकुंवरी—सलूंबर के रावत कुबेरसिंहजी से विवाह हुआ।

२-सूरजकुंवरी—भींडर महाराज अमरसिंहजी के ज्येष्ठ कुमार पृथ्वीसिंहजी के साथ व्याही गई। पृथ्वीसिंहजी का मरहटों के विरुद्ध युद्ध करते हुए दक्षिण में कुंवरपदे ही में स्वर्गवास होगया।

१-जोगीदासजी—ये राजगढ़ के भानजे थे। इनका कुंवरपदे ही में देहान्त हो जाने से ठाकुर यशवंतसिंहजी के उत्तराधिकारी इनके ज्येष्ठ पुत्र जयसिंहजी हुए।

२-नगजी—इनको थरएया आदि गांव मिले।

३-रणधीरजी—महाराणा कर्णसिंहजी के कनिष्ठ राजकुमार गरीबदासजी के दौहित्र थे। इनकी संतति का निवास जालखेड़ा में है।

४-गजसिंहजी—इनका विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका।

५-जोरावरसिंहजी—इनकी सन्तान दांता व बलेव में है।

६-हिम्मतसिंहजी—इनकी संतान चैनपुरे व ठूंमे में है।

किया कि महाराजा अजीतसिंहजी और जयसिंहजी को सहायता देने और पुर, मांडल पर अधिकार कर लेने के कारण बादशाह अवश्य अप्रसन्न हुआ होगा, अतः सेना लेकर पहाड़ों में जाने का विचार किया[1]। बादशाह को शीघ्र ही सिक्खों का विद्रोह दमन करने के लिए पंजाब जाना था, इसलिए उसने वज़ीर असदख़ाँ से तसल्ली का पत्र लिखवाकर महाराणा के पास भिजवाया और स्वयं पूर्व निश्चित चित्तौड़ के मार्ग को छोड़कर मुकन्दरा के घाटे से हाड़ोती में होता हुआ लौट गया[2]।

ठाकुर यशवंतसिंहजी का व्यक्तित्व

ठाकुर यशवंतसिंहजी बड़े ही वीर, स्वामिभक्त और राजनीति विशारद थे। बादशाह औरंगज़ेब और महाराणा राजसिंहजी के युद्ध के समय कुंवरपदे में अपने पिता ठाकुर सांवलदासजी के साथ रहकर इन्होंने शाहज़ादा मुअज़्ज़म और आज़म से कई युद्ध करके अनुपम वीरता प्रदर्शित की थी। इनके पराक्रम और पुरुषार्थ का तो सब से बड़ा प्रमाण यही है कि ८१ वर्ष की आयु हो जाने पर भी इन्होंने फीरोज़ख़ां को परास्त करके शत्रुओं का संहार करते हुए रणभूमि में ही अमरत्व को प्राप्त किया। इन्होंने २३ वर्ष तक राज्य किया।

हमारे भाट और राणीमंगों की ख्यात के अनुसार ठाकुर यशवंतसिंहजी के ६ राणियां थीं—

१–राणावत सरसकुंवरी—केयों के महाराज गरीबदासजी की पुत्री।

२–चौहान जसकुंवरी—कोठारिया के रावतजी की पुत्री।

३–गौड़ रूपकुंवरी—राजगढ़ के पहाड़सिंहजी की पुत्री।

४–चूंडावत रामकुंवरी—आमेट के रावत मानसिंहजी की पुत्री।

---

(१) इस अवसर पर महाराणा ने एक ख़ास रुक्का राठोड़ रायसिंहजी सांवलदासोत (ठाकुर यशवंतसिंहजी के छोटे भाई, इनके वंशजों के अधिकार में इस समय 'आसेसर' है) के पास इस आशय का भेजा—

"अपने चारों तरफ़ जितने गांव हैं उन सबको उजाड़ दो। तुम्हारे परिवार के रहने के लिए दूसरी जगह मिलेगी। विशेष समाचार जानने के लिए चूंडावत दौलतसिंह से मिलो। हमारी आज्ञा का पालन करो।"

(२) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड, पृ० ६१७।

५–शक्तावत रंगकुंवरी—दामटी के विजयसिंहजी की पुत्री।

६–हाड़ी हरकुंवरी—इंद्रगढ़ के महाराज गोपालदासजी की पुत्री।

ठाकुर यशवंतसिंहजी के दो राजकुमारियों और छः राजकुमारों ने जन्म लिया, जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे निर्देश किया जाता है—

ठाकुर यशवंतसिंहजी की संतति

१–बख्तावरकुंवरी—सलूंबर के रावत कुबेरसिंहजी से विवाह हुआ।

२–सूरजकुंवरी—भींडर महाराज अमरसिंहजी के ज्येष्ठ कुमार पृथ्वीसिंहजी के साथ व्याही गई। पृथ्वीसिंहजी का मरहटों के विरुद्ध युद्ध करते हुए दक्षिण में कुंवरपदे ही में स्वर्गवास होगया।

१–जोगीदासजी—ये राजगढ़ के भानजे थे। इनका कुंवरपदे ही में देहान्त हो जाने से ठाकुर यशवंतसिंहजी के उत्तराधिकारी इनके ज्येष्ठ पुत्र जयसिंहजी हुए।

२–नाथजी—इनको चरणया आदि गांव मिले।

३–रणधीरजी—महाराणा कर्णसिंहजी के कनिष्ठ राजकुमार गरीबदासजी के दौहित्र थे। इनकी संतति का निवास जालखेड़ा में है।

४–गजसिंहजी—इनका विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका।

५–जोरावरसिंहजी—इनकी सन्तान दांता व चलेव में है।

६–हिम्मतसिंहजी—इनकी संतान चैनपुरे व ठूमे में है।

ग्यारहवां प्रकरण

कुंवर जोगीदासजी

कुंवर जोगीदासजी का जन्म[1] वि० सं० १७०५ के चैत्र (ई० स० १६४८ मार्च) मास में हुआ था। ये बड़े वीर और राजनीतिज्ञ थे। इनके पराक्रम और स्वामिभक्ति से संतुष्ट होकर महाराणा राजसिंहजी ने इनको 'छोटा जयमल' की उपाधि प्रदान की थी। वास्तव में ये वीर-शिरोमणि राव जयमलजी के अनुरूप वंशधर थे।

कुंवर जोगीदासजी का जन्म

वि० सं० १७१६ (ई० स० १६६२) में मगरे के भीलों ने बड़ा उपद्रव मचाया, जिसको दबाने के लिए महाराणा राजसिंहजी ने सेना भेजने की आज्ञा दी। खास इनके-द्वारा कुंवर जोगीदासजी भी उदयपुर बुलाये गये। फ़ौज के साथ कुंवर जोगीदासजी तथा मेवाड़ के अन्य भी कतिपय सरदार भेजे गये। इन्होंने वहां पर बड़ी वीरता से युद्ध किया और भीलों को परास्त कर सब उपद्रव शान्त किया। इनके इस युद्ध में अनेक लोह लगे। १४ वर्ष की अल्प अवस्था में ही इनकी ऐसी वीरता था साहस देखकर महाराणा राजसिंहजी इनसे बहुत प्रसन्न हुए और इसी अवसर पर इनको 'छोटा जयमल' का उपनाम उपाधिरूप में प्रदान किया। कुंवर जोगीदासजी जैसे वीर थे वैसे ही राजनीति और लोकव्यवहार में भी पूर्ण कुशल थे। दिल्ली जाकर बदनोर से शाही अधिकार को उठवाने का इन्होंने बहुत उद्योग किया, परन्तु इसमें सफलता प्राप्त न होती देखकर इन्होंने बदनोर प्रान्त का जैसा कि पूर्व प्रकरण में भी वर्णन किया गया है ६५००० रुपये में मुकाता करा लिया। इस प्रकार अपने पैतृक स्थान बदनोर को पुनः प्राप्त करके इन्होंने अपनी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता का पूर्ण परिचय दिया, परन्तु बड़े दुःख का विषय है कि ऐसे होनहार कुंवर का इनके पिताजी की जीवितावस्था में ही देहान्त हो गया। यदि इनका स्वर्गवास कुंवरपद में न हुआ होता तो अवश्य ही इनके शासनकाल में बदनोर के राजस्थान की विशेष उन्नति होती।

मगरे के भीलों पर कुंवर जोगीदासजी का भेजा जाना

---

(१) हस्तलिखित पुस्तक "गोविन्दकुल रत्नाकर", जिसमें बदनोर का ऐतिहासिक वर्णन है, उसके आधार पर जन्म का संवत् दर्ज किया गया।

इनका स्वर्गवास वि० सं० १७५२ ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १६६५ ता० १८ मई) को हुआ जैसा कि एक गंगा-गुरु के लेख से प्रामाणिक रूप से विदित होता है, जहां इनकी अस्थि-प्रवाह के निमित्त भेजी गई थी।

कुंवर जोगीदासजी का स्वर्गवास

हमारे भाट राणीमंगों की ख्यात के अनुसार कुंवर जोगीदासजी ने निम्नलिखित ४ विवाह किये—

१—शक्तावत केसरकुंवरी—विजयपुर के गोपालसिंहजी की पुत्री।

२—शेखावत सुखकुंवरी—खंडेले के राजा सौभाग्यसिंहजी की पुत्री।

३—पंवार विनयकुंवरी—बंभोरी के नरपालजी की पुत्री।

४—चूंडावत सुरहकुंवरी—करेड़ा के राजबहादुर हरिसिंहजी की पुत्री।

हमारी वंशावलियों के अनुसार कुंवर जोगीदासजी के दो राजकुमारियां और ६ राजकुमार हुए, जिनका वृत्तान्त नीचे निर्देश किया जाता है—

कुंवर जोगीदासजी की सन्तति

१—मामकुंवरी—इनका विवाह देवगढ़ के रावत संग्रामसिंहजी से हुआ।

२—रामकुंवरी—इनका विवाह आमेट के रावत पृथ्वीसिंहजी के साथ हुआ।

१—जयसिंहजी—ये अपने पितामह ठाकुर यशवंतसिंहजी के पीछे बदनोर की गद्दी पर विराजमान हुए। ये विजयपुर के शक्तावत गोपालसिंहजी के दौहित्र थे। इनका वृत्तान्त आगे निर्देश किया जायेगा।

२—बख्शीरामजी—इनका विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका।

३—जगतसिंहजी—इनको निर्वाह के लिये जीवार ग्राम मिला था।

४—जोधसिंहजी—इनका भी विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हुआ।

५—संग्रामसिंहजी—इनको पहले जागीर में संग्रामगढ़ प्रदान किया गया था। इस स्थान के इनके अधिकार से निकल जाने पर इनको जगपुरा दिया गया, जो अद्यावधि इनके वंशजों के कब्जे में है। इनकी संतति के पास भदेसर में भी गुढ़ा नामक एक ग्राम है।

६—बहादुरसिंहजी—इनका विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका।

बारहवां प्रकरण

ठाकुर जयसिंहजी

ठाकुर जयसिंहजी की गद्दीनशीनी

वि० सं० १७६६ में ठाकुर यशवंतसिंहजी का स्वर्गवास होने पर उनके पौत्र ठाकुर जयसिंहजी बदनोर[1] की गद्दी पर विराजमान हुए। यद्यपि मांडलगढ़, पुर, मांडल और बदनोर के परगनों को महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने बादशाह औरंगज़ेब के मरने के पश्चात् मेवाड़ में मिला लिये थे[2], परन्तु बादशाह बहादुरशाह की इनके संबंध में अभीतक नियमानुसार स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई थी। इनके निमित्त उद्योग हो ही रहा था कि वि० सं० १७६७ पौष सुदि १ (ई० स० १७१० ता० १० दिसम्बर) को महाराणा अमरसिंहजी[3] (द्वितीय) का स्वर्गवास हो गया।

---

(१) ठाकुर यशवंतसिंहजी ने पुर, मांडल के मुग़ल शासक फ़ीरोज़ख़ां पर भीषण आक्रमण किया जिसमें उसको परास्त होकर भागना पड़ा और ठाकुर यशवंतसिंहजी भी वीरतापूर्वक लड़कर काम आये। इस युद्ध के पश्चात् यह प्रांत महाराणा के अधिकार में आने से बदनोर पर पुनः हमारे पूर्वजों का अधिकार हो गया।

(२) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ११०।

(३) महाराणा अमरसिंहजी द्वितीय बड़े वीर और प्रबन्धकुशल नरेश हुए। यद्यपि उनके गद्दी पर विराजने के समय मेवाड़ की स्थिति विशेष अच्छी नहीं थी तथापि वे बादशाह से समय समय पर विरोध करते ही रहे और महाराजा अजीतसिंहजी और महाराजा जयसिंहजी को अपने यहां रखकर उन्हें सहायता दी। उन्होंने मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति को सुधारने का स्तुत्य प्रयत्न किया। सरदारों के दर्जों का विभाग-सोलह (प्रथम श्रेणी के) और बत्तीस (द्वितीय श्रेणी के)-नियत कर उनकी जागीरें निश्चित कर दीं तथा जागीरदारों के नियम बनाकर उन्हें स्थिर कर दिया, परगनों का प्रबन्ध, दरबार का तरीक़ा, सरदारों की बैठक और ताज़ीम के दस्तूर क़ायम किये, चौकरी, छटूंद, जागीर आदि के नियम बनाये। दफ़्तर और कारख़ानों की सुव्यवस्था की गई। सरदारों की तलवारबन्दी के नियम भी बने। अपने नाम के ख़रीते, परवाने और ख़ास रुक्के लिखने का क़ायदा जो पहले से चला आता था, उसे उन्होंने सुव्यवस्थित किया। अमरशाही पगड़ी, जो अभी तक ख़ास ख़ास प्रसंग पर पहनी जाती है, उक्त महाराणा की योजना है। (म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड, पृ० ११८)

महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) के पश्चात् महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने मेवाड़ के राज्याधिकार को ग्रहण किया। इन्होंने भी उपर्युक्त तीनों परगनों के मेवाड़-राज्य के अन्तर्गत किये जाने की बादशाह से स्वीकृति प्राप्त करने के उद्योग को पुनः जारी कराने का विचार किया, परन्तु इन्हीं दिनों बादशाह बहादुरशाह के वज़ीर खानखाना मुनअय्यमखां का, जो देशी राज्यों के साथ अनुकूलता रखता था, इन्तिकाल हो गया। उसके स्थान में वज़ीर के पद पर ज़ुल्फिक़ारखां नियत किया गया। यह वज़ीर भूतपूर्व मंत्री मुनअय्यमखां का पूर्ण विरोधी था। उसके बनाये हुए सब कामों को बिगाड़ देना ही इसका मुख्य लक्ष्य था। इसी दुरभिप्राय से इसने बादशाह से अर्ज़ करके पुर, मांडल और बदनोर के परगने मेवाती रणबाजखां को और मांडलगढ़ का परगना नागोर के राव इन्द्रसिंहजी को जागीर में लिखवा दिये। शाहज़ादा अज़ीमुश्शान ने बादशाह को बहुत कुछ समझाया कि पंजाब में तो बग़ावत बढ़ ही रही है, इस जागीर के देने से राजपूताने में भी विद्रोह होने का पूरा अन्देशा है, परन्तु शाहज़ादा मुईज़ुद्दीन और मन्त्री ज़ुल्फिक़ारखां ने बादशाह को उल्टा सीधा समझाकर जागीर का फ़रमान लिखवा दिया। नागोर के राव इन्द्रसिंहजी ने तो प्रारम्भ में ही समझ लिया था कि इस जागीर को प्राप्त करने में प्राणों का भय है अतः उन्होंने तो इधर आने का ही विचार न किया, परन्तु शाहज़ादा मुईज़ुद्दीन और ज़ुल्फिक़ारखां की सहायता के बल पर गर्वित होकर पुर, मांडल और बदनोर की जागीर पर कब्ज़ा करने के लिए रणबाज़खां लगभग ७००० शाही सैनिकों को साथ लेकर दिल्ली से रवाना हुआ। शाही सैनिकों के अतिरिक्त रणबाज़खां की खास जमीयत भी उसके साथ थी। रणबाज़खां के आने का समाचार पाकर महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने अपने सरदारों को एकत्रित कर परामर्श किया तो सबने एकमत होकर युद्ध करने की ही सलाह दी। महाराणा ने सेना तैयार करने की आज्ञा प्रदान की इस सेना में बदनोर के ठाकुर जयसिंहजी, देवगढ़ के रावत संग्रामसिंहजी, शाहपुरे के कुंवर उम्मेदसिंहजी, बाठरड़ा के रावत महासिंहजी, बानसी के रावत गङ्गदासजी तथा सलूम्बर के रावत केसरीसिंहजी

महाराणा संग्रामसिंहजी (दूसरे) की रणबाजखां से लड़ाई

के भाई सामन्तसिंहजी आदि मेवाड़ के बहुत से सरदार सम्मिलित थे।

बेगूं के रावत देवीसिंहजी किसी कारण से इस युद्ध के अवसर पर स्वयं उपस्थित न हो सके और अपने कामदार कोठारी के साथ ठिकाने की जमियत युद्ध में भेजी। उक्त कामदार को देखकर सब राजपूत सरदारों को हंसी आई और बानसी के रावत गङ्गदासजी ने कहा—'कोठारीजी ! यहां आटा नहीं तोलना है'। तब कोठारी ने उत्तर दिया—'मैं दोनों हाथों से आटा तोलूं, उस वक्त देखना'। खारी नदी के उत्तर की तरफ़ बांधनवाड़ा के समीप दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। बेगूं के कामदार ने घोड़े की बाग को कमर से बांध ली और दोनों हाथों में तलवारें लेकर मेवातियों की सेना पर टूट पड़ा। उसके साहस की सरदारों ने भी बड़ी प्रशंसा की।

मेवाड़ की सेना में क़रीब बीस हज़ार सैनिक थे। इन्होंने एकदम आक्रमण कर मुसलमानों की फ़ौज को चारों तरफ़ से घेर लिया रणबाज़खां अपने भाई नाहरखां तथा अन्य भाई बन्धुओं के सहित युद्धक्षेत्र में काम आया। रणबाज़खां के भाई ज़ोरावरखां का नायब दीनदारखां और उसका पुत्र ज़ख़्मी होकर अजमेर पहुंचे। इस युद्ध में शाही फ़ौज में से बहुत कम सैनिक जीवित बचे। मेवाड़ के राजपूत भी बहुत काम आये। रावत महासिंहजी इस युद्ध में वीरतापूर्वक लड़कर काम आये। बेगूं का कामदार भी बहादुरी से लड़कर मारा गया। ठाकुर जयसिंहजी और सलूम्बर के रावत केसरीसिंहजी के भाई सामंतसिंहजी के इस संग्राम में अनेक लोह लगे।

ठाकुर जयसिंहजी ने इस युद्ध में अलौकिक वीरता प्रदर्शित की। रावत महासिंहजी के काम आजाने पर ठाकुर जयसिंहजी ने बड़े प्रचण्ड वेग से आक्रमण कर रणबाज़खां को मार डाला और उसके साथ का नक्कारा, निशान तथा उसकी ढाल और तलवार छीनकर बदनोर ले आये, जो अब तक वहां मौजूद है। यह तलवार ख़ासी लम्बी है और इसकी मूंठ तथा म्यान पर सुनहरी काम किया हुआ है। ढाल के ऊपर के हिस्से में ४ खंडों में अली की प्रशंसा है और भीतर के चार खंडों में अली, मुहम्मद, हसन और हुसैन की प्रशंसा फारसी लिपि में लिखी गई है। ऊपर और नीचे के किनारे के वृत्तों में ईश्वर की महिमा का वर्णन है।

इस युद्ध के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्राचीन दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनसे ठाकुर जयसिंहजी का रणबाज़खां को मारना भलीभाँति प्रमाणित होता है—

दोहा

बांधनवाड़ा बीच में जबर करी जैसींग।
घडंग मार रणबाज़खां धजबड़ राखी धींग ॥ १ ॥
रण मान्यो रणबाज़खां यूं आखे संसार।
तिण माथे जैसींग दे, तैं वाही तरवार ॥ २ ॥

ठाकुर जयसिंहजी के अनुपम साहस तथा वीरतापूर्वक लड़कर रणबाज़खां को मार डालने का वृत्तान्त सुनकर महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) बहुत सन्तुष्ट व प्रसन्न हुए। उन्होंने वि० सं० १७६८ ज्येष्ठ सुदि २ (ई० स० १७११ ता० ८ मई) को एक ख़ास रुक्का भेजकर हाथी और सिरोपाव प्रदान किया[1]। इसके पश्चात् एक और खास रुक्का, जो अद्यावधि विद्यमान है, भेजकर अपनी विशेष प्रसन्नता प्रकट की और उन्होंने उसमें अपने हस्ताक्षरों से यह लिखा-'इण मोसर घणो ही आछो दिखायो सो सुख पायो'। इन सब प्रमाणों से रणबाज़खां का ठाकुर जयसिंहजी के ही हाथ से मारा जाना दृढ़ता से प्रमाणित होता है। यह लड़ाई वि० सं० १७६८ वैशाख सुदि ७ शनिवार (ई० स० १७११ ता० १४ अप्रैल) को हुई[2]।

राव जयमलजी के समय से लेकर ठाकुर जयसिंहजी के समय तक दिल्ली के प्रतापशाली मुग़ल बादशाहों के साथ हमेशा युद्ध होते रहने के कारण जिनमें सदैव हमारे वीराग्रणी पूर्वजों ने अद्वितीय स्वामिभक्ति और अनुपम वीरता के कार्यों से मेवाड़ की अतुलनीय सेवाएं सम्पादित कर तत्कालीन महाराणाओं को सन्तुष्ट किया। बदनोर, पुर, माण्डल आदि अजमेर के समीपवर्ती प्रान्त कभी शाही अधिकार में हो जाते थे तथा कभी महाराणाओं के। बादशाह के अधिकार में होने पर वह उनको अपने किसी सेनापति को जागीर में यह प्रांत दे दिया करता था, परन्तु हमारे पूर्वज उनको कभी चैन से न बैठने देते

(१) म० गौ० ओ; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६२४।
(२) वही; पृ० ६२४।

थे और उनपर आक्रमण करके अपना राज्य वापस छीन लेते थे। बदनोर प्रांत पर शाही अधिकार होने के समय हमारे पूर्वजों को महाराणा की तरफ़ से दूसरी जागीरें भी निर्वाहार्थ मिलती रहती थीं और जब उक्त प्रांत पर पुनः महाराणा का अधिकार हो जाता उस समय बदनोर उनको फिर प्रदान कर दिया जाता जैसा कि तत्कालीन महाराणा के भेजे हुए कतिपय ख़ास रुक्कों से विदित होता है। बदनोर के अधिकार से निकल जाने पर भी इस प्रांत का कुछ भाग हमेशा हमारे पूर्वजों के क़ब्ज़े में रहा है। ठाकुर जयसिंहजी के पश्चात् विशेष उथल पुथल न होने के कारण बदनोर का प्रांत लगातार हमारे वंश के अधिकार में चला आता है।

बादशाह फर्रुख़सियर का मारा जाना

वि० सं० १७६६ (ई० स० १७१२) में बादशाह बहादुरशाह मर गया। उसके पीछे जहांदारशाह गद्दी पर बैठा, परन्तु उसके भतीजे मुहम्मद फर्रुख़सियर ने उसको सैयद-बन्धुओं की सहायता से मार डाला और वि० सं० १७६६ माघ वदि १० (ई० स० १७१३ ता० १० जनवरी) को दिल्ली का राज्याधिकार ग्रहण किया। उस समय सैयद-बन्धुओं ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उदयपुर से अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया और मेवाड़ के निकले हुए प्रांत बहाल कर दिये। सैयद-बन्धुओं ने हिन्दू राजाओं को अपना सहायक बनाने के लिए बादशाह फर्रुख़सियर से कहकर जज़िया उठवा दिया, परन्तु बाद में मक्का के हाकिम के लिखने पर बादशाह ने पुनः जज़िया जारी किया। इस आज्ञा से फिर हिन्दुस्तान में फ़साद की बुनियाद क़ायम हुई और अन्त में फर्रुख़सियर के क़ैद होकर मारे जाने पर रफ़ीउद्दरजात बादशाह बनाया गया, तब महाराजा अजीतसिंहजी, कोटा के महाराव भीमसिंहजी और सैयद अब्दुल्लाख़ां आदि की सलाह से उसने जज़िया मुआफ़ कर दिया[1]।

रामपुरे के राव गोपालसिंहजी चन्द्रावत अपने पुत्र रत्नसिंहजी के विद्रोही होने पर महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) के पास आ रहे थे। रत्न-

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० १२४-२५।

रामपुरे के इलाके का फिर मेवाड़ में मिलना

सिंहजी के मालवे के सूबेदार के साथ की लड़ाई में मारे जाने के पश्चात् राव गोपालसिंहजी ने महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) की सहायता से रामपुरे पर पुनः कब्ज़ा कर लिया। महाराणा ने रामपुरे का कुछ हिस्सा उन्हें देकर बाक़ी का इलाक़ा अपने राज्य में मिला लिया। राव गोपालसिंहजी उनके पोते संग्रामसिंहजी तथा उनके सरदारों ने महाराणा को वि० सं० १७७४ भाद्रपद सुदि २ (ई० स० १७१७ ता० २७ अगस्त) को एक इक़रारनामा लिख दिया, जिसमें महाराणा की अधीनता और दूसरे सरदारों की तरह नौकरी करना स्वीकार किया। इस प्रकार रामपुरे का इलाक़ा, जो अकबर के समय से मेवाड़ से अलग हो गया था, फिर मेवाड़ में मिल गया[1]।

राठोड़ दुर्गादासजी का मारवाड़ से निकाला जाना

महाराज अजीतसिंहजी के जोधपुर पर अधिकार करने के बाद वीरवर राठोड़ दुर्गादासजी भी उनके साथ वहीं रहने लगे। उनकी सच्ची स्वामिभक्ति, वीरता तथा राज्य की उत्तम सेवा के कारण उनकी प्रतिष्ठा राठोड़ सरदारों तथा अन्य राजाओं आदि में बहुत कुछ बढ़ी हुई थी, जिसको सहन न कर महाराजा अजीतसिंहजी ने बुरे लोगों की बहकावट में आकर अपने और अपने राज्य के रक्षक ठाकुर दुर्गादासजी को मारवाड़ से निकाल दिया[2], जिससे महाराजा की बड़ी बदनामी हुई[3]। वीरशिरोमणि ठाकुर दुर्गादासजी राठोड़ जोधपुर छोड़कर महाराणा की सेवा में आ रहे। महाराणा ने उनको विजयपुर की जागीर और १५००० रुपये मासिक देकर अपने पास बड़े सम्मान के साथ रक्खा और पीछे से उनको वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में रामपुरे का हाकिम नियत किया[4]। कुछ समय पश्चात् ठाकुर दुर्गादासजी उदयपुर से तीर्थयात्रा के निमित्त उज्जैन पहुंचे।

वहां पर उनका वि० सं० १७७८ ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० १७२१ ता० ११ मई) को देहान्त हो गया और उनकी दाहक्रिया[1] क्षिप्रा नदी के तट पर हुई जहां पर उनकी स्मृति में एक छत्री बनाई गई थी, जो अब तक 'राठोड़ की छत्री' के नाम से प्रसिद्ध है। राठोड़ दुर्गादासजी बड़े ही वीर और स्वामि-भक्त थे। उन्होंने अपने बाहुबल, पराक्रम तथा बुद्धिबल से यवनों के त्रास से मारवाड़ राज्य का उद्धार किया था। उनके विषय में निम्नलिखित प्राचीन दोहा बड़ा प्रसिद्ध है—

ऐ! माता पूत ऐसा जण जैसा दुर्गादास।
बन्द मूरदरा राखियो, बिन थम्भा आकास॥

वि० सं० १७८१ आषाढ़ सुदि १३ (ई० स० १७२४ ता० २३ जून) को महाराजा अजीतसिंहजी को उनके ज्येष्ठ कुंवर अभयसिंहजी के आदेशानुसार कुंवर बख्तसिंहजी ने मार डाला[2] और अभयसिंहजी जोधपुर के राजा हुए तब उनके इस कृत्य से बहुत से सरदार अप्रसन्न होकर उनके भाई आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी से जा मिले। उन दोनों भाइयों ने उनकी सहायता से ईडर पर अधिकार कर लिया जो बादशाह ने महाराजा अभयसिंहजी को दे दिया था। जयपुर के महाराजा जयसिंहजी की सलाह से महाराजा अभयसिंहजी ने ईडर का प्रान्त इस शर्त पर महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) को दे दिया कि वे उन दोनों भाइयों को मार डालें। महाराणा ईडर को अपने अधिकार में करना चाहते थे अतः उन्होंने भींडर के महाराज जैतसिंहजी शक्तावत की अध्यक्षता में ईडर पर सेना भेजी। आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी महाराणा की शरण में आ गये, महाराणा ने ईडर का कुछ इलाक़ा उनको दे दिया और शेष मेवाड़ में मिला लिया[3]।

ईडर राज्य का मेवाड़ में मिलाया जाना

वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में महाराणा की आज्ञानुसार ठाकुर जयसिंहजी ने मेरवाड़े के रावतों पर, जिन्होंने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था,

(१) भण घर वाही रीत, दुर्गो सफरां दागियो। (प्राचीन पद्य)
(२) वही; पृ० १६३।
(३) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६२८।

ठाकुर जयसिंहजी का मेरों से लड़ना

आक्रमण किया। ठाकुर जयसिंहजी ने मसूदे के ठाकुर सुलतानसिंहजी को भी कहलाया कि शामगढ़ और लूलवा के रावत आपको भी बहुत कष्ट पहुंचाते हैं अतः आप और मैं दोनों ही मिलकर उनको परास्त करें। इसपर ठाकुर सुलतानसिंहजी भी इस युद्ध में सम्मिलित हो गये। ठाकुर जयसिंहजी ने इस युद्ध में अनुपम साहस और शौर्य प्रदर्शित किया। शत्रुओं का भयङ्कर संहार किया। मसूदे के ठाकुर सुलतानसिंहजी इस युद्ध में पूर्ण पराक्रम और वीरता से लड़कर काम आये। अनेक शस्त्रप्रहार से ठाकुर जयसिंहजी भी युद्ध में मूर्च्छित होकर गिर पड़े, परन्तु अंत में मेरों को परास्त करके ही लौटे। इस वृत्तान्त को सुनकर महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने ठाकुर जयसिंहजी को बड़ी प्रीति के साथ एक हाथी, सिरोपाव, मोतियों की कंठी तथा अन्य भी उत्तम पुरस्कार प्रदान किये। ठाकुर सुलतानसिंहजी के उत्तराधिकारी को भी इसी प्रकार पुरस्कार रूप में अनेक बहुमूल्य वस्तुएं प्रदान की गई।

हरीखां का मारा जाना

ठाकुर जयसिंहजी ने हथूण के खान हरीखां पर भी अपने भाइयों को साथ लेकर चढ़ाई की। हरीखां के साथ ४०० आदमी रहते थे और वह मेवाड़ में बहुत लूटमार किया करता था। एक घाटे पर तो ठाकुर जयसिंहजी बैठ गये और दूसरे दो घाटों पर अपने भाई संग्रामसिंहजी और नाहरसिंहजी को भेजा। रात्रि के पिछले पहर जब कि हरीखां डाका डालकर वापस आ रहा था तब उसका इनके साथ मुक़ाबला हो गया। तीनों भाइयों ने बड़े पराक्रम से युद्ध करके उसको वहीं मार डाला।

मुग़ल सेनापति शमशेरखां का मारा जाना

इन्हीं दिनों शमशेरखां नामक एक मुग़ल सेनापति ने ७००० सैनिकों को साथ लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई की। उसका मुक़ाबला करने के लिए मेवाड़ के सेनाध्यक्ष बनाकर ठाकुर जयसिंहजी ही भेजे गये। गोडवाड़ के पास बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। नवाब शमशेरखां मारा गया और ठाकुर जयसिंहजी विजयी होकर महाराणा की सेवा में उपस्थित हुए। महाराणा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर इनको फ़रमाया कि आपका नक्क़ारा महलों में त्रिपोलिया तक सदैव बजा करेगा। शमशेरखां की मृत्यु का

बदला लेने के लिए उसके भाई जमशेदखां ने मेवाड़ पर हमला किया। उसके विरुद्ध भी लड़ने के लिए महाराणा ने ठाकुर जयसिंहजी को ही भेजा। तेजारे के घाटे में बड़ा भारी युद्ध हुआ। ठाकुर जयसिंहजी विजयश्री से विभूषित होकर बड़े आनन्द के साथ वापस पधारे।

हमारे कुलगुरु की ख्यात से विदित होता है कि जयपुर महाराज सवाई जयसिंहजी अपने सुसराल जोधपुर जाते समय अजमेर प्रांत के गांव शिकराणी में आकर ठहरे और मगरे मेरवाड़े पर अपना आधिपत्य जमाने लगे। तब ठाकुर जयसिंहजी ने उनसे कहलाया कि मैंने तो तीसरे मुल्क में आकर राज्य प्राप्त किया है, आप हमारे जंवाई होकर मेरे इलाक़े में ही थाने स्थापित करने का अनुचित कार्य क्यों करते हैं। जब जयपुर महाराज ने इनके कथन को नहीं माना तब इन्होंने महाराणा की सेवा में सब वृत्तान्त निवेदन कराया। वहां से आज्ञा मिलने पर ठाकुर जयसिंहजी ने ५००० सेना सहित मार्ग रोककर युद्ध किया। बदनोर के १५० मनुष्य काम आये और लगभग इतने ही जयपुर के भी सैनिक मारे गये। सवाई जयसिंहजी को विवश होकर दूसरे रास्ते से जोधपुर जाना पड़ा।

जयपुर महाराज सवाई जयसिंहजी का ठाकुर जयसिंहजी से हारकर जोधपुर जाना

ठाकुर जयसिंहजी का देहान्त वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) में हुआ। ये बड़े ही वीर और बुद्धिमान शासक थे। इन्होंने अनेक युद्धों में अनुपम वीरता प्रदर्शित करके विजय प्राप्त की और बड़ी स्वामिभक्ति के साथ यावज्जीवन महाराणा साहब की सेवा में तत्पर रहे। इन्होंने बदनोर में चीनी-महल नामक प्रासाद निर्माण कराया तथा बदनोर के समीप 'छाछेला' नामक एक तालाब बनवाया और अपने नाम से 'जयसिंहपुरा' नामक एक ग्राम भी बसाया।

ठाकुर जयसिंहजी का देहान्त और व्यक्तित्व

हमारे भाट और राणीमंगों की ख्यात के अनुसार ठाकुर जयसिंहजी के निम्नलिखित ५ राणियां थीं—

१—चौहान जैतकुंवरी—कोठारिया के भाइयों में चौहान सूरजमलजी की पुत्री।
२—राठौड़ चंद्रकुंवरी—खैराबाद के कीर्तिसिंहजी की पुत्री।

३—चूंडावत गुमानकुंवरी—लुयारे के दौलतसिंहजी की पुत्री।

४—राणावत सुरेहकुंवरी—जामोली के संग्रामसिंहजी की पुत्री।

५—चूंडावत रत्नकुंवरी—तलोली के कर्णसिंहजी की पुत्री।

ठाकुर जयसिंहजी की संतति ठाकुर जयसिंहजी के तीन कुमारियां और ५ राजकुमार हुए—

१-उम्मेदकुंवरी—सलूंबर के रावत कुबेरसिंहजी के साथ विवाह हुआ।

२—तख्तकुंवरी—चानसी के रावत हरीसिंहजी के साथ विवाह हुआ।

३-कुन्दनकुंवरी—सावर के महाराज जगतसिंहजी के साथ पाणिग्रहण हुआ।

१-सुलतानसिंहजी-ठाकुर जयसिंहजी के उत्तराधिकारी। ये कोठारिया के भाणेज थे।

२-खुमाणसिंहजी-इनकी संतान का निवास घोरखेड़े में था। जाल्या ग्राम में भी इनके वंशजों की कुछ भौम है।

३-सरदारसिंहजी-इनको ग्राम लाम्या मिला।

४-उम्मेदसिंहजी-इनको १२ ग्रामों सहित जागीर में कटार मिला था, परन्तु अब केवल ग्राम कटार ही है। इनकी संतति के कब्जे में सुराज ग्राम भी है।

५-बुधसिंहजी—ये जगपुरे गोद गये।

तेरहवां प्रकरण

ठाकुर सुलतानसिंहजी

ठाकुर सुलतानसिंहजी की गद्दीनशीनी

ठाकुर सुलतानसिंहजी का जन्म वि० सं० १७५३ आश्विन सुदि ८ (ई० स० १६९६ ता० २४ सितम्बर) को हुआ था। इनके पिता ठाकुर जयसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात् वि० सं० १७८९ (ई० स० १७३२) में ये बदनोर की गद्दी पर विराजमान हुए।

शक्तावत जयसिंहजी का शाहूजी के पास भेजा जाना

महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने मुग़लों की अवनति और मरहटों की उन्नति देखकर मरहटों से मेलजोल बढ़ाने के लिए पीपलिया के शक्तावत बाघसिंहजी के पुत्र जयसिंहजी को अपने वकील के तौर पर छत्रपति शाहूजी के पास भेजा। शाहूजी भी मेवाड़ के वंशधर होने के कारण उनका बहुत सम्मान करते थे[1]।

महाराणा संग्रामसिंहजी का स्वर्गवास

महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने नाहरमगरे के महल, उदयपुर के महलों में चीनी की चित्रशाली (जिसकी दीवारों में पोर्चुगीज़ों की लाई हुई रंगीन चीनी की ईंटें लगी हुई हैं), सहेलियों की बाड़ी, त्रिपोलिया और अगड (हाथियों के लड़ने के स्थान के मध्य में खड़ी की हुई आड़) आदि बनवाये[2]। ये महाराणा बड़े वीर, प्रबन्ध-कुशल, बुद्धिमान् और योग्य शासक थे। वि० सं० १७९० माघ वदि ३ (ई० स० १७३४ ता० ११ जनवरी) को इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पश्चात् मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर महाराणा जगतसिंहजी (द्वितीय) विराजमान हुए।

नादिरशाह का दिल्ली पर हमला

महाराणा जगतसिंहजी (द्वितीय) के समय में मुग़ल साम्राज्य खंड खंड हो गया। बादशाह फर्रुख़सियर के सात वर्ष राज्य करने के पश्चात् रफ़ीउद्दरज़ात और रफ़ीउद्दौला नाममात्र के बादशाह हुए। अनुमान सात मास में दोनों के मर जाने पर मुहम्मदशाह

(१) म० गौ० ओ० राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड, पृ० ६२९।

(२) वही; पृ० ६२९-३०।

वि० सं० १७७६ (ई० स० १७१६) में बादशाह बना. उसके राज्यकाल में उसके सेनापति हैदराबाद में, अवध में, बंगाल में और रुहेलखंड में अपने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने लगे। मुहम्मदशाह नाममात्र का बादशाह रह गया। उसके समय में मरहटों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी और दिल्ली के राज्य पर भी उनकी धाक जम गई थी। मुग़ल साम्राज्य की ऐसी अवनत दशा में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण कर हज़ारों लोगों का वध किया और दिल्ली का ख़ज़ाना, कोहेनूर तथा तख़्त ताऊस लेकर लौट गया[1]।

दिल्ली के साम्राज्य की दुर्दशा देखकर मरहटों ने दक्षिण से उत्तर की ओर अपना राज्य बढ़ाना शुरू किया। मालवे पर भी मरहटों ने अपना अधिकार कर लिया। मरहटों का प्राबल्य देखकर राजपूताने के राजाओं को चिन्ता उत्पन्न हुई। मुग़लों का बल क्षीण देखकर महाराणा तथा जयपुर और जोधपुर के महाराजा अपना अपना राज्य बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हुए। इस विचार से हुरड़ा में उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, कोटा, बीकानेर, किशनगढ़, नागोर आदि के राजा एकत्र हुए। वहांपर सब राजाओं की सम्मति से एक अहदनामा लिखा गया, जिसमें यह स्थिर हुआ कि सब राजा एक दूसरे की सहायता करें। महाराणा मुखिया बनाये गये। यह अहदनामा वि० सं० १७९१ श्रावण वदि १३ (ई० स० १७३४ ता० १७ जुलाई) को लिखा गया। इस सन्धि का जैसा परिणाम होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ, क्योंकि आपस की फूट व स्वार्थवश इसपर किसी ने अमल न किया[2]।

राजपूताने के राजाओं का हुरड़ा में एकत्र होना

मरहटों से मेलजोल बढ़ाने के लिए महाराणा ने बाबा वख़्तसिंह को भेजकर बाजीराव पेशवा को उदयपुर बुलाया। चंपाबाग़ के पास डेरा हुआ। दूसरे दिन महाराणा से पेशवा की मुलाक़ात हुई। यह क़रार पाया कि मरहटे महाराणा को छत्रपति शाहूजी की जगह अपना मालिक जान हुक्म की तामील करते रहेंगे। दूसरे दिन पेशवा को जगमन्दिर दिखाने का विचार हुआ तब उसे किसी ने कहा कि राजपूत आपको वहां

बाजीराव पेशवा को उदयपुर आना

(१) म० गौ० ओ० राजपूताने का इतिहास तीसरा खंड पृ० ६३६।
(२) वही पृ० ६३१।

लेजाकर मारना चाहते हैं। इसपर पेशवा बहुत क्रुद्ध हुआ और महाराणा से सात लाख रुपये लेकर चला गया[1]। यहां से पेशवा जयपुर की तरफ़ गया और दिल्ली तक लूट मार मचाई।

जयपुर के महाराजा जयसिंहजी ने कुछ समय पूर्व बूंदी के राव बुधसिंहजी को हटाकर दलेलसिंहजी को बूंदी का स्वामी बनाया। बुधसिंहजी के कुंवर उम्मेदसिंहजी ने कोटा के महाराव दुर्जनसालजी के द्वारा बूंदी का राज्य पीछा प्राप्त करने के लिए महाराणा से सहायता चाही। फिर बूंदी के पुरोहित दयारामजी ने कुँवर उम्मेदसिंहजी के छोटे भाई दीपसिंहजी को एक जागीर दिलाने के लिए महाराणा से अर्ज़ करवाई, परन्तु महाराणा ने स्वीकार न किया। तब निराश होकर वह महाराजकुमार प्रतापसिंहजी के पास गया, जिन्होंने उनको २५०००) रु० सालाना आय का लाखोला का पट्टा लिख दिया। इसपर महाराणा महाराजकुमार से बहुत अप्रसन्न हुए और उन्हें दंड देने के लिए क़ैद करना चाहा। महाराजकुमार प्रतापसिंहजी बहुत बलवान् और हृष्ट-पुष्ट थे। किसी की हिम्मत उनको पकड़ने की न हुई। एक दिन महाराणा के भाई नाथसिंहजी ने महाराणा की आज्ञानुसार धोखे से पीछे से आकर उनको पकड़ लिया और कर्णविलास महल में नज़रक़ैद रक्खा। यह सुनकर शक्तावत सूरतसिंहजी के पुत्र उम्मेदसिंहजी, जो कुँवर के पक्षपाती थे, हाथ में तलवार लिए वहां पहुंचे। महाराणा के पास उस समय उन्हीं के चाचा तथा पिता सूरजसिंहजी थे। महाराणा ने पहले उनके चाचा को उन्हें रोकने के लिए भेजा, परन्तु उम्मेदसिंह ने आते ही उनको मार डाला। फिर महाराणा की आज्ञानुसार उनके पिता सूरतसिंहजी आगे बढ़े। अपने पिता को आते हुए देखकर उम्मेदसिंहजी ने अपने हाथ से तलवार फेंक दी, परन्तु उससे पहिले ही स्वामि-भक्त सूरतसिंहजी वार कर चुके थे, जिससे उम्मेदसिंहजी मारे गये। महाराणा ने सूरतसिंहजी से कहा कि तुम दोनों बाप बेटों ने अच्छी तरह हक़ नमक अदा किया और प्रसन्न होकर उनको जागीर देना चाहा, परन्तु अपने भाई व पुत्र के मर जाने से उनका दिल टूट चुका था, जिससे

Margin note: महाराणा और महाराजकुमार में विरोध

(१) म० गौ० ओ०, राजपूताने का इतिहास, तीसरा खंड, पृ० ६९१।

उन्होंने जागीर लेने से इन्कार कर दिया। महाराजकुमार प्रतापसिंहजी ने गद्दी पर बैठते ही उनके पोते और उम्मेदसिंहजी के पुत्र अर्थसिंहजी को रावत की पदवी और दारू की जागीर देकर अपने उपकार का बदला चुकाया[1]।

वि० सं० १७९८ (ई० स० १७४१) में मरहटों ने बागड़ में होते हुए मेवाड़ में प्रवेश किया और वहां वे उपद्रव मचाने लगे। महाराणा ने यह खबर सुनकर कानोड़ के रावत पृथ्वीसिंहजी (सारङ्गदेवोत) आदि सरदारों को ससैन्य उनसे लड़ने के लिए भेजा। उन्होंने जाकर मरहटों को वहां से निकाल दिया[2]।

बादशाह औरंगज़ेब के समय में मुसलमानों के भीषण अत्याचारों को देखकर राजपूत सरदारों को बहुत ही दुःख और क्रोध उत्पन्न हुआ। अतः उन्होंने

जयपुर के कुंवर माधवसिंह को रामपुरा मिलना

आपस में एकता करके बादशाह के विरुद्ध आन्दोलन करने का विचार किया। बादशाह बहादुरशाह के समय में जयपुर और जोधपुर के नरेशों ने मुग़लों के अत्याचारों का दमन करने के लिये महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) से पारस्परिक एकता की संधि की। महाराणा ने जयपुर और जोधपुर के अधिपतियों से अपनी राजकुमारियों का विवाह करना इस शर्त पर स्वीकार किया कि उदयपुर की महाराजकुमारी से जो राजकुमार उत्पन्न हो वे अन्य राजकुमारों की अपेक्षा अवस्था में छोटे होने पर भी राज्य के उत्तराधिकारी हों। इस शर्त को जोधपुर और जयपुर के महाराजाओं ने हर्ष से स्वीकार कर लिया, क्योंकि उदयपुर की राजकुमारियों के साथ विवाह करने में वे अपनी बड़ी प्रतिष्ठा समझते थे। इस प्रकार इस नियम के स्वीकृत हो जाने पर महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) ने अपनी राजकुमारी चन्द्रकुंवरी का विवाह बड़े समारोह के साथ जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजी के साथ किया। इस राजकुमारी से वि० सं० १७८४ पौष वदि १२ (ई० स० १७२७ ता० २८ नवम्बर) को महाराज जयसिंहजी के एक राजकुमार उत्पन्न हुए, जिनका नाम माधवसिंहजी रक्खा गया। इन राजकुमार के जन्मग्रहण करने से महाराजा जयसिंहजी को बड़ी चिन्ता उपस्थित हुई, क्योंकि इनके दूसरी राणी से राजकुमार ईश्वरीसिंहजी पहले ही

---

(१) म० गौ० ओ०; राजपूताने का इतिहास; तीसरा खंड; पृ० ६४२-४३।

(२) वही; पृ० ६४३।

उत्पन्न हो चुके थे। महाराज सवाई जयसिंहजी बड़ी चिन्ता में पड़ गये, क्योंकि न तो वे अपने ज्येष्ठ राजकुमार को उनके न्यायोचित अधिकार से वंचित रखना चाहते थे और न महाराणा साहब को अप्रसन्न करने का साहस करते थे। अन्य कोई उपाय न देखकर महाराजा जयसिंहजी तुरन्त उदयपुर आये और वि० सं० १७८५ आश्विन सुदि १० से कार्तिक वदि ५ (ई० स० १७२८ ता० १ अक्टोबर से ता० १२ अक्टोबर) तक रहकर माधवसिंहजी को जागीर में रामपुरे का परगना दिलाने का उद्योग किया। महाराजा जयसिंहजी के बार बार अनुरोध करने पर महाराणा संग्रामसिंहजी ने रामपुरे का परगना नौकरी की शर्त पर जागीर में भाणेज कुंवर माधवसिंहजी को प्रदान कर दिया। वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में जयपुर नरेश सवाई जयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। उनके पश्चात् जयपुर के राज्याधिकार को महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने ग्रहण किया। महाराजकुमार माधवसिंहजी, जो उनके पिता की पूर्व प्रतिज्ञानुसार राज्य-प्राप्ति का अधिकार रखते थे, गद्दी से वंचित रहे।

कुंवर माधवसिंहजी को टोंक का परगना मिलना

वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में महाराणा जगत्सिंहजी (द्वितीय) ने अपने भाणेज कुंवर माधवसिंहजी को राज्य दिलाने के लिए जयपुर पर चढ़ाई की। इस युद्ध में महाराणा ने ठाकुर सुलतानसिंहजी को साथ लिया। कोटा के महाराव दुर्जनशालजी भी अपनी सेना सहित महाराणा के पक्ष में सम्मिलित थे। महाराणा ने शाहपुरे से रवाना होकर जहाज़पुर के ज़िले के गांव जामोली में मुक़ाम किया। महाराज ईश्वरीसिंहजी भी विशाल सेना लेकर मुक़ाबले के लिए रवाना हुए। इस अवसर पर दोनों सेनाओं में अवश्य बड़ा भयङ्कर युद्ध होता, परन्तु जयपुर के मन्त्री राजामल खत्री ने महाराणा की सेवा में बहुत कुछ अरज़ मारूज़ करके सुलह करादी और जयपुर राज्य में से ५ लाख रुपये सालाना आमदनी का टोंक का परगना माधवसिंहजी को दिला दिया। महाराणा जगत्सिंहजी ने यद्यपि इस अवसर पर जयपुर से सन्धि करली थी, परन्तु अपने भाणेज को जयपुर का राज्य दिलाने की वांछा उनके हृदय में पूर्ववत् बनी ही रही और उसकी पूर्ति के निमित्त अनेक उपायों का विचार करने लगे। इस कार्य में

महाराणा साहब ने मल्हारराव हुल्कर को अपना सहायक बनाना चाहा। हुल्कर ने अपने पुत्र खांडेराव को फौज और तोपखाने सहित महाराणा की सेवा में भेज दिया। कोटा के राव दुर्जनसालजी ने भी महाराणा की सहायतार्थ अपने प्रधान की अध्यक्षता में सेना भेजी। जयपुर से महाराजा ईश्वरसिंहजी भी रवाना होकर राजमहल के पास पहुंचे। इसी स्थान पर दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ। यहां प्रचण्ड संग्राम हुआ। उभयपक्ष के सहस्रशः योद्धा बड़ी वीरता से लड़कर काम आये। ठाकुर सुलतानसिंहजी ने भी इस युद्ध में अपनी असीम वीरता का पूर्ण परिचय दिया। जयपुर की सेना के पैर उखड़ने ही वाले थे, परन्तु महाराजकुमार माधवसिंहजी के झंडे को देखकर जो जयपुर के झंडे के ही अनुसार था, मेवाड़ के सैनिकों को सन्देह होगया कि जयपुरवाले हमारी फौज में आ घुसे। इससे मेवाड़ के सैनिकों का उत्साह कुछ शिथिल हो जाने से वे विजय प्राप्त न कर सके।

दूसरे वर्ष महाराणा ने फिर कोटे के राव दुर्जनसालजी तथा खांडेराव हुल्कर की सहायता से जयपुर पर चढ़ाई की। महाराणा सम्पूर्ण सेना लेकर

महाराणा की जयपुर पर चढ़ाई

खारी नदी के किनारे पहुंचे। महाराजा ईश्वरीसिंहजी भी अपने सैन्य सहित उस नदी के किनारे आ गये। मेवाड़ के सरदारों ने युद्ध में अनुपम शौर्य प्रदर्शित किया। महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने माधवसिंहजी को टोड़ा का परगना तथा उम्मेदसिंहजी को बूंदी देना स्वीकार कर महाराणा से संधि कर ली[1]।

महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने महाराणा के साथ की गई अपनी प्रथम संधि के विरुद्ध टोंक पर पीछा अधिकार कर लिया, जिससे माधवसिंहजी की सहा-

बगरू गांव की लड़ाई

यतार्थ हुल्कर, बूंदी और मेवाड़ के सम्मिलित सैन्य ने जयपुर पर आक्रमण किया। जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी ने भी इनकी सहायतार्थ दो हज़ार सवारों सहित रीयां के ठाकुर मेड़तिया शेरसिंहजी को भेजा। जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंहजी ने भी भरतपुर के राजा सूरजमलजी जाट को बराबरी का रुतबा देने की प्रतिज्ञा कर अपना सहायक

(१) म० गौ० ओ० राजपूताने का इतिहास; तीसरा खण्ड; पृ० ९४७।

ठाकुर सुलतानसिंहजी की संतति

ठाकुर सुलतानसिंहजी के एक कुमारी उत्पन्न हुई, जिनका नाम गुलाबकुंवरी था। इनका विवाह बेगूं के रावत प्रतापसिंहजी के साथ किया गया।

हमारी वंशावलियों के अनुसार ठाकुर सुलतानसिंहजी के ६ पुत्र थे, जिनके नाम नीचे निर्दिष्ट किये जाते हैं:—

१—अक्षयसिंहजी
२—श्यामसिंहजी
३—ज़ालिमसिंहजी
४—सालिमसिंहजी
५—सूरजसिंहजी
६—मोहकमसिंहजी

ठाकुर सुलतानसिंहजी के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र अक्षयसिंहजी बदनोर की गद्दी पर विराजमान हुए।

(१) पूर्व प्रकरणों में यथास्थान यहां के कनिष्ट कुमारों का भी संक्षिप्त वृत्तान्त निर्दिष्ट किया गया है, परन्तु आगे यहां के कनिष्ट कुमारों का (जिनको मेवाड़ राज्य के खालसे से तथा कुछ को यहां से जागीरें प्रदान की गई) विस्तारभय से विवरणात्मक परिचय न देकर केवल नामावली ही दर्ज की जावेगी। वृत्तान्त केवल उन्हीं का निर्दिष्ट किया जायगा, जिन्होंने कोई विशेषतः प्रतिष्ठित जागीर प्राप्त की हो अथवा जिनके सम्बन्ध की कोई उल्लेखनीय घटना होगी।